

2

વિરાટ પુરુષ

સમાજશાસ્ત્રી નાનાજી



વિરાટ
પુરુષ



સમાજશાસ્ત્રી
નાનાજી

विशद पुरुष
समाजशास्त्री
नानाजी

विशद पुरुष समाजशास्त्री नानाजी



दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली



प्रभात प्रकाशन, दिल्ली

ISO 9001:2008 प्रकाशक

प्रकाशक • प्रभात प्रकाशन
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002
सर्वाधिकार • सुरक्षित
संस्करण • 2017
मूल्य • चार सौ रुपए
मुद्रक • ग्राफिक वर्ल्ड, नई दिल्ली

VIRAT PURUSH SAMAJSHASTRI NANAJI ₹ 400.00

Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road,
New Delhi-110002 • e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with Deendayal Research Institute
7-E, Swami Ramtirth Nagar, Rani Jhansi Road, New Delhi-55
e-mail: dridelhi1@gmail.com
Vol. 2 ISBN 978-93-5186-077-8
Set of 6 Vols. ISBN 978-93-5186-082-2 • Price: ₹ 2000.00

आमुख

एक समरस, संस्कारित, सुदृढ़, सबल, सशक्तीकृत समाज, नानाजी के विचारों व कर्तृत्व के केंद्र में था। एकात्म मानव ऐसे ही समाज का हिस्सा बनकर एक स्वस्थ, समृद्ध व शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। उनका स्पष्ट मत था कि सरकार भी समाज की अनुगामी होनी चाहिए। उनकी दृष्टि में सरकार तो समाज के सामने गौण है। उनके सभी विचार व कर्तृत्व इसी धारणा के इर्द-गिर्द घूमते रहे।

वे अपनी बातों में, अपने भाषणों में, लेखों में, पत्रों में सामाजिक पुनर्रचना के विविध आयामों पर बार-बार चर्चा किया करते थे, उन्हें रेखांकित किया करते थे। नानाजी द्वारा स्थापित सभी प्रकल्पों में इस विचार को हम आकार लेते हुए देख सकते हैं। इन सभी प्रकल्पों की कल्पना व रूपरेखा, जो नानाजी स्वयं लिखा करते थे, वह मूल रूप में ही इस खंड में दी जा रही है। सामाजिक जीवन में परस्परपूरकता व सहजीवन नानाजी के लिए सामाजिक पुनर्रचना के मूलमंत्र थे। इन बिंदुओं पर इन खंडों में बार-बार, अलग-अलग संदर्भ में जोर पढ़ने को मिलेगा। उनके विचारों की व्यापकता इन प्रकल्पों की रूपरेखा से समझ आ सकती है। देशज मूल्यों के प्रति नानाजी का आग्रह, वर्तमान युग को समझने की उनकी ललक और दोनों में तालमेल बिटाने का जज्बा नानाजी को अन्य महापुरुषों से अलग करता है।

कार्यकर्ताओं को अपने उद्बोधन में वे समसामयिक विषयों पर बातचीत के अंदाज में संबोधित किया करते थे। उदाहरण उबाऊ न हों बल्कि रोचक हों, जानकारीयों से परिपूर्ण हों, सुबह के अखबारों में पढ़ी खबर के आधार पर अपना स्वतःस्फूर्त भाषण देना उनकी विशिष्ट कला थी। वर्तमान स्थिति पर चिंता व्यक्त करते थे, लेकिन कार्यकर्ताओं का मनोबल टूटने न पाए और उन्हें अधिक काम के लिए प्रेरित करना, इसका उन्हें पूरा भान रहता था। नानाजी के लेखों, पत्रों, उद्बोधनों में विचारों से अधिक व्यवहार पर आग्रह स्पष्ट देखा जा सकता है।

‘समाजशिल्पी दंपती योजना’ नानाजी द्वारा प्रतिपादित अनूठी योजना है। संघ के संस्कारों में पले-बढ़े नानाजी ने स्वयं प्रचारक जीवन का बेहद ईमानदारी से पालन किया। लेकिन उन्हें लगने लगा कि भविष्य में समय की मांग होगी कि नवविवाहित दंपती प्रचारकों की भांति काम करें तो उनके लिए गांवों में काम करना और पारिवारिक वातावरण व मानसिकता को समझना अधिक सरल होगा। इसलिए उन्होंने समाजशिल्पी दंपती का प्रयोग किया, जो आज भी सफलता के साथ चल रहा है।

विराट् पुरुष

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अधिकांश प्रचारकों की भांति नानाजी के पत्र-लेखन का दायरा बहुत ही वृहद् था। बाकी खंडों में अन्य विषयों पर भी उनके पत्र पढ़ने को मिलेंगे, लेकिन सामाजिक पुनर्रचना से संबंधित नानाजी के चुनिंदा पत्र इस खंड में प्रकाशित किए जा रहे हैं।

पुनरावृत्ति को टालने का भरपूर प्रयास किया गया है। लेकिन कहीं-कहीं अपवादस्वरूप यह दिख सकती है, ताकि संदर्भ ओझल न हो जाए। इसी क्रम में ढेरों पत्र प्रकाशित भी नहीं किए जा रहे। नानाजी जब किसी का अभिनंदन करते थे अथवा शुभकामना देते थे तो आम तौर पर साथ में एक संदेश भी होता था। ऐसे कुछेक पत्र इस खंड में शामिल किए गए हैं। अगर किसी पत्र का उत्तर देने में उन्हें देरी हो जाती थी तो नानाजी उसका कारण बताते हुए क्षमा-याचना अवश्य किया करते थे। आम तौर पर यह विलंब नानाजी के प्रवास पर होने के कारण हुआ होता था। इस भाग को प्रकाशित नहीं किया जा रहा है। इसी तरह पत्र के अंतिम भाग में नानाजी के आगामी कार्यक्रमों का उल्लेख रहता था अथवा वे परिवार के अन्य सदस्यों या सहकर्मियों का कुशलक्षेम पूछा करते थे। उस भाग को भी पत्रों में संपादित कर दिया गया है।

कार्यकर्ताओं का प्रबोधन और समय-समय पर उत्साहवर्धन, अपने नाते-रिश्तेदारों का मार्गदर्शन, सभी की चिंता नानाजी के पत्रों में बहुतायत में देखने को मिलेगी। वे ममतामयी थे लेकिन अपनी बात दृढ़ता से कहने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था। अपने ध्येय से समझौता करने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था।

इस खंड में सामाजिक पहलुओं के छूते हुए नानाजी के पत्रों के अलावा उनके द्वारा विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखे व प्रकाशित हुए चुनिंदा लेखों को भी सम्मिलित किया जा रहा है।

विराट् पुरुष

नाना देशमुख

जिन दिनों प्रस्तुत वाङ्मय का संकलन व संपादन चल रहा था, उन्हीं दिनों अंग्रेजी की एक उपन्यास शृंखला चर्चा में आई—शिव ट्रायोलॉजी। एक युवा भारतीय लेखक अमीश ने उसमें भगवान् शिव की एक मनुष्य-रूप में कल्पना कर उनकी स्तुति की है। बहुत खूबसूरत वर्णन है। देवों के देव महादेव का उन्होंने दुष्टता का नाश करनेवाले, प्रचंड प्रेमी, महान् योद्धा, नृत्यकला में निपुण, एक करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, परम शक्तिशाली लेकिन फिर भी सब प्रकार के दोषों से मुक्त, अद्भुत वाक्पटु, पूरे ब्रह्मांड को कंपा देनेवाला गुस्सा, लेकिन विशाल, दया व करुणा से भरपूर हृदय, ऐसे व्यक्तित्व के रूप में चित्रण किया है।

लेखक का संभवतः नानाजी से परिचय नहीं रहा होगा। वरना वे नानाजी को सामने रखकर भी एक जीवंत उपन्यास की रचना कर सकते थे—देवताओं के सभी गुणों से परिपूर्ण, राजनीति में दुष्ट लोगों को साफ-साफ खरी-खोटी सुनानेवाले और उन्हें राजनैतिक तौर पर ही नष्ट करनेवाले, स्वयं ब्रह्मचारी लेकिन गृहस्थ जीवन के कट्टर समर्थक व गृहस्थों को प्रेम का पाठ पढ़ानेवाले, महान् रणनीतिकार, ललित कलाओं के प्रेमी, करिश्माई नेतृत्व क्षमता वाले, अपने समय के सर्वाधिक शक्तिशाली राजनेताओं में से एक, लेकिन महत्वाकांक्षाओं व अहंकार से पूर्णतया मुक्त, वाक्पटुता अद्वितीय, आवश्यकता पड़ने पर गजब का गुस्सा, यानी वही सब गुण, जिनको आधार बनाकर वह उपन्यास लिखा गया।

नानाजी के निधन के पश्चात् हम सबने उनका राष्ट्रऋषि के रूप में स्मरण किया। अपने जीवनकाल में मानव कल्याण के लिए उन्होंने जो साधना की, जो तपस्या की, उसे देखते हुए तो उनके जीवित रहते हुए ही उन्हें इस रूप में संबोधित किया जा सकता था। लेकिन नानाजी को यह स्वीकार्य नहीं होता। चित्रकूट में नानाजी से मिलने व उनके काम को देखने के बाद तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम उन्हें एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति के रूप में ही संबोधित करते थे।

अपने शास्त्रों में विराट् पुरुष की जो व्याख्या की गई है, नानाजी उसके मूर्त रूप थे। आमजन के लिए तो विराट् पुरुष वह है जो चतुष्पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—सभी में संतुलन बैठा सकता हो।

विराट् पुरुष

नानाजी का समस्त जीवन, विचार व कर्तृत्व उन्हें विराट् पुरुष के फ्रेम में ही रखते हैं। जिन लोगों के बीच वे काम करते थे, जो वंचित थे, उनके लिए तो नानाजी विराट् पुरुष ही थे। नानाजी के सहयोगी रहे लोग या जिन्होंने नानाजी के साथ कुछ भी समय काम किया, वे भी उनके इस वर्णन से सहमत होंगे।

देश के स्वतंत्रता आंदोलन में अपना योगदान करने से लेकर, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के एक प्रचारक के रूप में नानाजी ने पहले राष्ट्रीय राजनीति में और बाद में सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में अपनी जो छाप छोड़ी, वह अद्वितीय है।

राजनीति में उनके विरोधी भी उनका लोहा मानते हैं। नानाजी ने देश में राजनीति की विभिन्न धाराओं को राष्ट्रहित के लिए एकजुट करने का जो अनोखा काम किया, उनके अलावा कोई अन्य राजनीतिज्ञ वैसा फिर नहीं कर पाया। यहां तक कि जिस कांग्रेस को हराने के लिए वे जीवन भर प्रयासरत रहे, समय आने पर उन्होंने उसे भी राष्ट्रहित में साथ आने का निमंत्रण देने में संकोच नहीं किया। संघ जीवनपर्यंत उनकी जीवनरेखा रहा। संघ पर जब भी कोई अनर्गल आक्षेप लगा तो नानाजी उसके सामने एक ढाल की तरह खड़े रहे, एक योद्धा के रूप में।

एकात्म मानववाद के प्रणेता पंडित दीनदयाल उपाध्याय उनके सखा व प्रेरणास्रोत थे। लेकिन जब उन्हें लगा कि बदले परिवेश में अन्य विचारों को साथ लेना भी जरूरी हो गया है तो उन्होंने डॉ. राममनोहर लोहिया और आचार्य कृपलानी जैसे लोगों को भी अपने साथ आत्मसात् करने में कोई परहेज नहीं किया। 70-80 के दशकों में ऐसा समय आया जब लोकनायक जयप्रकाश नारायण अपने राजनैतिक कार्यों के लिए पूरी तरह नानाजी पर निर्भर हो गए।

60 बरस की उम्र होने पर सक्रिय राजनीति छोड़कर सामाजिक पुनर्रचना के काम में उन्होंने स्वयं को समर्पित कर देश के राजनीतिज्ञों के लिए एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया। इसे देश का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि उनके इस कदम का बाद में किसी ने अनुकरण नहीं किया और अधिकांश राजनेता दलगत व स्वार्थपरक राजनीति में उलझे रहे। हां, उनके कुछ साथी राजनेताओं ने नानाजी के काम को आगे बढ़ाने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान अवश्य दिया।

सामाजिक कार्यों में उन्होंने समाज की पहल और उसकी भागीदारी के आधार पर जो मॉडल देश के सामने प्रस्तुत किया, उसकी सराहना देश भर में होती रही है। आज विदेशों से भी कई शोधार्थी और विद्यार्थी उस मॉडल को समझने व उसे अपने यहां दोहराने की दृष्टि से चित्रकूट आते रहते हैं। देश के तत्कालीन राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री स्वयं इस मॉडल को देखकर आने के बाद इसकी प्रशंसा ही नहीं करते रहे बल्कि इसके अनुसरण की अनुशंसा करने में भी उन्होंने कोई संकोच नहीं किया। गोंडा तो प्रारंभ से ही उनकी कर्मभूमि रहा और बाद में बीड़ व नागपुर भी।

नानाजी के बहुआयामी व्यक्तित्व को टुकड़ों में बांटकर नहीं देखा जा सकता। मानव जीवन में जिस समग्रता के वे आगही थे, उन्हें भी उसी समग्रता से देखने की आवश्यकता है। उनके जीवन के हर आयाम, हर पहलू को आनेवाली पीढ़ी के समक्ष रखने का प्रकल्प है यह नानाजी वाङ्मय। नानाजी ने अपने सार्वजनिक जीवन के सात से अधिक दशकों में बहुत कुछ बोला और लिखा। राष्ट्रहित में शायद उससे भी ज्यादा उन्होंने अपने सीने में छुपाकर रखा।

नानाजी द्वारा स्थापित दीनदयाल शोध संस्थान ने उनके निधन के पश्चात् जब 'नानाजी समग्र' प्रकाशित करने का निर्णय लिया तो उसकी संपादकीय टीम के सामने एक प्रश्न खड़ा हुआ कि नानाजी के विचारों का संकलन कैसे किया जाए? नानाजी के बहुत से सहयोगी उनसे पहले ही स्वर्गवासी हो गए थे। उनके साथ काम कर चुके या उनसे संपर्क में रहे बहुत से सहयोगियों की स्मृति काफी क्षीण हो चली थी। फिर भी लगभग दो वर्ष तक अलग-अलग स्रोतों से सामग्री जुटाने का प्रयास हुआ। संस्थान के दिल्ली व चित्रकूट कार्यालयों में काफी सामग्री मिली भी; लेकिन इमरजेंसी से पूर्व की सामग्री नहीं मिल पाई।

इस तैयारी के प्रारंभिक दिनों में कल्पना यह थी कि नानाजी ने अपने जीवनकाल में जो भी लिखा व बोला, उसे एकत्र कर कालखंड या विषयवार रूप में प्रकाशित किया जाए, ताकि आनेवाली पीढ़ियां जान सकें कि इस युग में भी एक ऋषि-तुल्य व्यक्ति ने जन्म लिया था। जिसने अपना संपूर्ण जीवन दीन-दुखियों की सेवा, मानव जीवन को सार्थक बनाने, भारतीय मूल्यों के संदर्भ में जीवन की गुणवत्ता बढ़ाने, व्यक्ति, समाज व राष्ट्र को एकात्म करने, देश की राजनीति को नई दिशा देने, विकास का देशानुकूल, परंतु साथ ही युगानुकूल प्रतिमान खड़ा करने में समर्पित कर दिया।

लगभग पांच हजार पन्नों की सामग्री को संकलित कर उन्हें नए सिरे से कंप्यूटरीकृत किया गया। इस बीच इस बात पर मंथन चलता रहा है कि समग्र को किस रूप में प्रेषित किया जाए—कालखंडानुसार, विषयानुसार अथवा विधानुसार, यानी पत्रों, भाषणों, बौद्धिकों आदि को अलग छपा जाए। यों तो समग्र को कालखंडानुसार प्रकाशित करना सर्वाधिक श्रेयस्कर होता, लेकिन नानाजी के जीवनकाल के एक बहुत बड़े हिस्से का रिकॉर्ड तो बिल्कुल ही उपलब्ध नहीं है। यह कालखंड यानी इमरजेंसी (1975) से पहले का काल।

ऐसा नहीं कि नानाजी व उनके सहयोगियों ने इससे पहले के नानाजी के भाषणों, पत्रों आदि का संग्रह नहीं कर रखा था। स्वयं नानाजी इस बारे में बताते रहे कि इमरजेंसी से पहले का उनका बहुत ही समृद्ध अभिलेखागार कहीं सुरक्षित जगह पर छिपाकर रखा गया था। क्योंकि उन परिस्थितियों में वह राजनीतिक दृष्टि से बहुत ही संवेदनशील था। जिन मित्रों के पास नानाजी की बहुत सी सामग्री थी, उनसे बीच-बीच में नानाजी की अनबन की बात समग्र में कहीं न कहीं पढ़ने को मिलेगी। लेकिन यह अनबन उनके अभिलेखागार के न मिल पाने का कारण नहीं रही होगी, ऐसा हमारा विश्वास है। बहरहाल, इस महत्त्वपूर्ण और दीर्घकालीन कालखंड की सामग्री तथा अन्य कुछ सामग्री अंत तक उपलब्ध नहीं हो पाई। दैवयोग से अगर कभी मिली, तो संस्थान उसे प्रकाशित करने में अपना सौभाग्य समझेगा।

बीते तीन बरसों में सभी संभावित और उपलब्ध स्रोतों से जो भी सामग्री एकत्र हो पाई, उसके आधार पर नानाजी समग्र को विषयवार प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। लेकिन नानाजी के कुछ वरिष्ठ सहयोगियों का मानना है कि इसे समग्र नहीं कहा जाए। क्योंकि नानाजी के जीवनकाल का एक बहुत बड़े भाग का लेखा-जोखा, जो उन्होंने स्वयं संजोकर रखा था, उपलब्ध नहीं है और उसके बिना उन्हें समग्रता से नहीं देखा जा सकता। वास्तव में, यह बहुत तकनीकी विषय है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर भी नानाजी का व्यक्तित्व समग्रता से देखा जा सकता है। बहुत से साक्षात्कारों व उनके द्वारा बाद में लिखे गए पत्रों आदि में नानाजी ने कई बार अपने उस कालखंड का विस्तार से उल्लेख किया है।

इसलिए उपलब्ध सामग्री के आधार पर ही यह नानाजी वाङ्मय तैयार करने का निर्णय लिया गया।

विराट् पुरुष

नानाजी ने जिन विषयों पर विशेष जोर दिया, उन्हें प्रमुख रूप से निम्न विषयों में विभाजित किया गया। ये हैं—

1. सामाजिक पुनर्रचना
2. स्वावलंबन
3. शिक्षा
4. लोकनीति व राजनीति
5. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

इनमें से प्रथम तीन विषय गोंडा, बीड़ और चित्रकूट प्रकल्पों से संबंधित हैं। इनमें प्रकल्पों की विस्तृत जानकारी (जो नानाजी के स्वयं के शब्दों में ही है), उनके लेख, भाषण, बौद्धिक व पत्रों का संग्रह है। सक्रिय राजनीति से दूर हो जाने के बाद भी नानाजी राजनैतिक मामलों में गहरी दिलचस्पी लिया करते थे, लेकिन दखल नहीं दिया करते थे। वस्तुतः वह राजनीति से अधिक लोकनीति थी। यह एक ऐसा विषय रहा, जिस पर अन्य लोगों की नजर नानाजी के वक्तव्यों व विचारों पर रही। इसलिए कहीं-न-कहीं राजनीति पर उनके विचार संगृहीत होते ही रहे। संघ के मामले में तो वे जीवनपर्यंत स्वयं को स्वयंसेवक ही मानते रहे, और उनका कर्तृत्व भी उसी अनुरूप रहा। संघ के स्वयंसेवकों व अन्य पाठकों के लिए यह विषय भी बहुत रोचक रहेगा।

लेकिन यह समग्र तैयार करने की अंतिम अवस्था में संपादकों को एक नई समस्या से जूझना पड़ा। पुनरावृत्ति टालने के लिए जब Process of Elimination अपनाया गया, तब महसूस हुआ कि किन्हीं खंडों में सामग्री बहुत ही कम हो गई है और किसी में अधिक। इसलिए विभिन्न खंडों में विषयों का जिस प्रकार समावेश प्रस्तावित था, उसे बदलना आवश्यक हो गया।

वैसे भी इस वाइमय को अब समग्र न कहकर 'विराट् पुरुष नानाजी के जीवन के विभिन्न आयामों के प्रतिबिंब' के रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास है। विराट् पुरुष के चारों पुरुषार्थ—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—की प्रतिमूर्ति थे नानाजी। उनके विचारों व कर्तृत्व को इन चारों विषयों में अलग-अलग तो विभाजित नहीं किया जा सकता, न ही यह संभव है, न ही वांछित। इसलिए प्रकाशन व पठनीयता की दृष्टि से इन्हें निम्न रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है—

1. साक्षात् नानाजी
2. समाजशास्त्री नानाजी
3. अर्थशास्त्री नानाजी
4. शिक्षाविद नानाजी
5. राष्ट्रध्वषि नानाजी
6. राजनीतिज्ञ नानाजी

उपलब्ध सामग्री के आधार पर उपर्युक्त छह खंड आपके सम्मुख प्रस्तुत हैं। संपादकीय टीम इनकी

विश्वसनीयता की पूरी जिम्मेदारी लेती है। यों तो प्रकाशन में किसी प्रकार की गलतियाँ न रह जाएं, इसका भरपूर प्रयास किया गया है, लेकिन फिर भी कोई गलती रह गई है तो उसके लिए संपादकीय टीम क्षमाप्रार्थी है।

इसके साथ ही सुधी पाठकों से निवेदन है कि अगर उन्हें नानाजी से संबंधित सामग्री कहीं भी उपलब्ध होने का भान होता है तो कृपया संस्थान के पते या दूरभाष पर संपादक को सूचित करने का कष्ट करें।

इस वाङ्मय के प्रकाशन में अनेकों लोगों का प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष सहयोग रहा है। संस्थान के संरक्षक व पालक माननीय मदनदासजी इसमें निरंतर रुचि लेते रहे, इसकी प्रगति की जानकारी लेते रहे, मार्गदर्शन व सुझाव देते रहे। प्रधान सचिव डॉ. भरत पाठक ने चित्रकूट में जो सामग्री थी, उसे संपादकीय टीम को उपलब्ध कराने में स्वतःस्फूर्त भूमिका निभाई। उनके नेतृत्व में चित्रकूट की टीम ने बिना किसी हस्तक्षेप के बहुत ही सटीक और व्यावहारिक सुझाव दिए। नानाजी के साथ भरतजी का लंबा अनुभव संपादकीय टीम के लिए बहुत काम आया। नानाजी के प्रति असीम भक्ति-भाव में डूबे संगठन सचिव श्री अभय महाजन को तो इसके प्रकाशन की चिंता निरंतर सताए रहती थी। उसके लिए उन्होंने कभी भी किसी भी प्रकार के संसाधनों की समस्या खड़ी नहीं होने दी। कुछ ऐसी समस्याओं के समाधान में भी उनकी भूमिका उल्लेखनीय रही, जिनका उल्लेख किया जाना वांछनीय नहीं है।

नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. देवेंद्र स्वरूपजी और श्री यादवराव देशमुख से भी प्रारंभिक काल में विस्तार से चर्चा हुई। संस्थान के सचिव तथा दीर्घकाल तक नानाजी के सहयोगी रहे डॉ. महेश चंद्र शर्मा पिछले तीन वर्षों में लगातार इसकी तैयारियों में रुचि लेते रहे। वाङ्मय का प्रथम प्रारूप उन्हीं के मार्गनिर्देशन में और सहमति से तैयार हुआ तथा उसका वर्तमान स्वरूप भी। हर कदम पर उन्होंने वाङ्मय के लिए स्वयं को प्रस्तुत किया।

श्रीमती सुमेधा मिश्रा ने इसके प्रकाशन में सूत्रधार की महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बहुत विशाल भंडार था उनके सामने। उसमें से छंटाई करना, पुनरावृत्ति को टालना, संपादन करना, संदर्भ ढूँढ़ना, सामग्री को सिलसिलेवार संजोना, सचमुच भारी-भरकम काम था। इसके लिए लगन, निष्ठा, मेहनत व तन्मयता के साथ-साथ धैर्य की भी आवश्यकता थी। इन सभी गुणों का सुमेधाजी ने खूब परिचय दिया।

संस्थान के हर काम में सहयोगी रहने वाले पत्रकार राकेश शुक्ल ने संपादन में भी एक गुणी सहयोगी की भूमिका निभाई। समय-समय पर अन्य पत्रकार मित्रों ने भी पन्नों को पलटा और अपने बहुमूल्य सुझाव दिए।

संस्थान के दिल्ली कार्यालय में उपमहाप्रबंधक और वरिष्ठ कार्यकर्ता श्री अमिताभ वशिष्ठ ने वाङ्मय के प्रकाशन के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं जुटाकर काम को आसान किया। नानाजी के साथ बरसों तक कंधे-से-कंधा मिलाकर काम करनेवाले संस्थान के महाप्रबंधक मेजर टी.आर. वर्मा इस महायज्ञ के लिए सदैव उपस्थित रहे।

बहुआयामी नानाजी के अनन्य सहायक रहे हेमंत पांडे संस्थान के हर काम में बहुपयोगी रहते हैं। नानाजी के साथ उनका लंबा अनुभव बहुत काम आया। इस वाङ्मय के प्रकाशन में भी उनकी उपयोगिता

विराट् पुरुष

हर कदम पर महसूस हुई और काम आई। ऐसे ही अंशुमान सिंह भी ऑलराउंडर हैं। हर किसी तरह के काम में मुसकराते हुए प्रस्तुत रहे। मुकेश का संस्थान या नानाजी से पहले का कोई परिचय नहीं रहा। लेकिन उन्होंने बहुत जल्दी ही पूरे काम को अच्छे से आत्मसात् कर लिया। श्री गब्बर सिंह रावत ने संस्थान के अभिलेखागार से पुरानी पुस्तकें व अन्य संदर्भ ढूँढ़ने में बहुत मदद की।

सुश्री दीपा सूद लगभग एक दशक से संस्थान के प्रकाशनों हेतु ग्राफिक व लेआउट डिजाइनिंग में जुड़ी हुई हैं। मामूली से संकेतों से ही नानाजी की पसंद, नापसंद को समझ जाती हैं और उसी के अनुरूप आउटपुट देती हैं।

प्रभात प्रकाशन किसी भी राष्ट्रवादी प्रकाशन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। नानाजी के लिए तो प्रभात कुमारजी ने स्वयं को समर्पित कर ही रखा है। उन्होंने इस वाइमय के प्रकाशन की जिम्मेदारी स्वेच्छा से ली। उनका हार्दिक साधुवाद।

इस महत्वपूर्ण प्रकाशन में सहयोग देने वाले जिन सहयोगियों के नाम यहां उल्लेख होने से रह गए हैं, उनसे करबद्ध क्षमाप्रार्थना।

युगाब्द 5116, कार्तिक शुक्ल चतुर्थी
11 अक्टूबर, 2014, नई दिल्ली

अतुल जैन
संपादक

(प्रस्तुत वाइमय में प्रकाशित सामग्री के अतिरिक्त नानाजी ने अपने जीवनकाल में एक पुस्तक 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' शीर्षक से 1979 में लिखी थी, जिसे दीनदयाल शोध संस्थान ने प्रकाशित किया था। उस समय देश भयंकर राजनैतिक झंझावात से गुजर रहा था। संघ के बहाने कुछ राजनैतिक तत्त्वों ने देश को फिर से अस्थिरता के दौर में ढकेल दिया था। इस पुस्तक में राजनैतिक दुर्भावना के शिकार संघ का विचारोत्तेजक अध्ययन अद्वितीय है। अगस्त 2011 में प्रभात प्रकाशन ने इसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया।)

विषय-सूची

आमुख

v

विराट् पुरुषः नानाजी देशमुख

vii

1. सामाजिक परिवर्तनः समग्र चिंतन से संभव	1
2. कौटुंबिक प्रबंधनः समाज की मजबूती का आधार	28
3. सामाजिक भाव बचपन में अंकुरित हो	42
4. समाजशिल्पी : युग परिवर्तन के वाहक	51
5. समाज शिल्प तप से निखरेगा	60
6. सामाजिक पुनर्चनाः पथ युगानुकूल हो	62
7. परस्परपूरकताः हिंदू दर्शन का आधार	67
8. मातृभाषाः संस्कार रचना का आधार	87
9. संस्कार निर्माण : भारत को विश्वगुरु बनाएगा	90
10. तृणमूल विकास : सबल समाज का आधार	93
11. पुनर्चना : एक सतत प्रक्रिया	115
12. नारी की प्रधानता पुनर्प्रतिष्ठित हो	118
13. समन्वय का सौंदर्य : नूतन व पुरातन का मिलन	120
14. संस्कार केंद्र : प्रतिभा विकास का माध्यम	123
15. एकात्मता का सूत्र : मूल्यों का पुनरोत्थान	125
16. मातृत्व : परिवार का विभूषण	128
17. अ-सरकारी होगा असरकारी : स्वयंसेवी संस्थाएं चुनौती स्वीकार करें	131
18. वैकल्पिक जीवन-रचनाः मानवीय मूल्यों के आधार पर तय हों	134
19. आत्मवत् सर्वभूतेषुः ग्राम्य परंपराएं सुदृढ़ करनी होंगी	139
20. मर्यादा पुरुषोत्तम रामः विश्व भर में वंदनीय अनुकरणीय	142
21. पत्र	145



सामाजिक परिवर्तन समग्र चिंतन से संभव

स्वतंत्रता पाए अर्धशताब्दी का काल बीत गया, किंतु हम अपने स्वातंत्र्य संग्राम का लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाए। ग्रामीण विकास पर हजारों करोड़ रुपए खर्च कर डाले। इसके बावजूद रोजी-रोटी के लिए ग्रामवासियों का शहरों में पहुंचने का तांता लगा हुआ है। उसमें कमी आने के लक्षण दिखाई नहीं देते। प्राकृतिक संसाधनों का मूलभूत एवं अक्षय स्रोत ग्रामीण अंचल उजड़ रहा है। शहरों की सभी व्यवस्थाएं चरमरा रही हैं। यही क्रम चलता रहा तो देश का भविष्य क्या होगा?

स्वतंत्र भारत (अब खंडित) के अनेक भूखंडों पर चीन व पाकिस्तान ने कब्जा जमा रखा है। देश में पाकिस्तानी गुप्तचर एजेंसी विध्वंस करा रही है। इसी अवधि में अपने पड़ोसी चीन ने अमरीका और रूस की भी परवाह किए बिना अपने को आत्मनिर्भर एवं शक्तिशाली बना लिया है। हम उस दृष्टि से सफल क्यों नहीं हुए? भारत में कौन सी कमी है?

देश को डाकुओं की समस्या से मुक्ति पाने में क्यों अड़चन आ रही है? देश की राजधानी दिल्ली में भी आए दिन चोरी, लूटपाट और हत्याएं होती हैं। इसकी जिम्मेदारी किसकी है? नैतिक पतन की भी सीमा नहीं रही। देह व्यापार की घटनाएं लगातार बढ़ रही हैं। देश की बालाएं विदेशों में बेची जा रही हैं। नन्ही और अबोध बालिकाओं को भी दुष्कर्म का शिकार बनाया जा रहा है। क्या स्वतंत्र भारत से यही अपेक्षा की गई थी?

बैंकों में भी हजारों करोड़ का घोटाला होना, शासकों एवं प्रशासकों का भ्रष्टाचार में लिप्त होना और उसके बावजूद लज्जा अनुभव न होना, किस दिशा का संकेत है?

उच्च शिक्षा प्राप्त संपन्न परिवारों में दहेज को लेकर नववधुओं को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़े, इसका अर्थ क्या समझा जाए? घूस के बिना कोई सरकारी काम न हो पाना आम बात बन गई है। नौकरी पाने के लिए योग्यता या निपुणता से अधिक घूस असरदार बनी है। भूमि-

आजादी मिलने के 50 साल से अधिक समय बीतने के बाद भी देश की दुर्दशा ने नानाजी को व्यथित कर दिया था। उन्हें झकझोरकर रख दिया था। वे आध्यात्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में हो रहे हास से बेहद दुःखी थे। ऐसे में कुछ करने को वे व्याकुल थे। दीनदयाल शोध संस्थान के माध्यम से उन्होंने सामाजिक पुनर्रचना का बीड़ा उठाया। दो दशक पूर्व आज की परिस्थितियों का वर्णन कोई युग-द्रष्टा ही कर सकता है। संस्थान के माध्यम से काम करने का जो संकल्प उन्होंने किया, उसकी रूपरेखा यहां नानाजी के अपने शब्दों में ज्यों-की-त्यों प्रस्तुत है।

विराट पुरुष

रिकॉर्ड्स में हेरा-फेरी गांव-गांव की समस्या बनी है। प्रचलित राजनीति एवं राजसत्ता उपयुक्त समस्याओं का निराकरण कर नहीं पा रही है। इसका मूल कारण क्या है?

भारत की धरोहर

अपना देश और समाज विश्व का सर्वाधिक पुरातन है। अलौकिक विविधता एवं अथाह प्राकृतिक संपदा के कारण उसे अधिक आक्रमणों का शिकार होना पड़ा। हर आक्रमण का पराक्रम के साथ सामना कर हमने विजय प्राप्त की थी, किंतु हारने पर हमें सैकड़ों साल पराई हुकूमत में रहना पड़ा था।

इतने लंबे काल तक राजसत्ता से वंचित होने के बावजूद सामाजिक जीवन एवं अपनी संस्कृति को हम कायम रख सके। कारण, राष्ट्र की मूलभूत शक्ति राजसत्ता में नहीं, समाज में होती है, इसकी जानकारी हमारे मनीषियों को थी। वे जानते थे कि अपने समाज ने मानवीय जीवन में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की जो अद्वितीय ऊंचाई अर्जित की थी, वह राजसत्ता की सीढ़ी द्वारा नहीं, अपितु तपस्वी जीवन से प्राप्त की थी, अन्यथा क्रूर एवं चालाक पराई हुकूमतों में अपने सामाजिक जीवन को अक्षुण्ण बनाए रखना असंभव होता। क्या स्वातंत्र्य-प्राप्ति के बाद ऐसे सामाजिक जीवन की अवहेलना करना समझदारी है?

अपने स्वातंत्र्य संग्राम के दार्शनिकों—स्वामी दयानंद, स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद और महात्मा गांधी आदि ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—“हमारा स्वातंत्र्य संघर्ष केवल स्वराज्य प्राप्ति के लिए नहीं है, अपितु पश्चिम में उपजी उपभोगवादी अमानवीय सभ्यता के चंगुल से मानव मात्र को मुक्ति दिलाने के लिए है।”

भारतीय परंपरा ने कभी भी मानव मानव में भेद नहीं माना। फलस्वरूप, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का प्रेरक भारत ही रहा है। भारतीय परंपरा केवल प्राणी मात्र को ही अपनत्व की भावना से अनुभव करने की प्रेरणा नहीं देती, अपितु चर एवं अचर के प्रति भी तादात्म्य प्रस्थापित करने की क्षमता प्रदान करती है। कठोरतम पाषाण में भी करुणामय आत्मा का दर्शन कर उसे साकार कर दिखाने का चमत्कार भारतीय परंपरा की ही उपलब्धि है।

जिस किसी से उपकार हुआ, उसके प्रति कृतज्ञता की भावना अनुभव होना अपनी परंपरा की विशेषता है। भूमाता, गंगामाता, गोमाता आदि श्रद्धास्पद शब्दों का प्रचलन उसी का परिचायक है।

भारत में कृषि उत्पादन की परंपरा पुरातनतम है। इसके बावजूद हजारों साल भूमि की उर्वरा शक्ति में किंचित् मात्र कमी न आए, इसकी चिंता करना कृतज्ञता की भावना का ही द्योतक है। हर बात का गहन अध्ययन एवं प्रयोगात्मक परीक्षणों की परंपरा भी उतनी ही पुरानी है। भूगर्भ जलस्तर न घटने पाए, अतः प्रति वर्ष वर्षा के जल का भूगर्भ जल से मिलन अबाध गति से होता रहे, इसकी व्यवस्था भी भारत की विशेषता रही है। गांव-गांव में छोटे-बड़े तालाब, बावड़ियां और कुएं इसके माध्यम रहे हैं।

चंद्रग्रहण-सूर्यग्रहण किस माह, किस दिन, किस समय लगेगा, इसकी जानकारी गांव-गांव

समाजशास्त्री

देने की पुरातन काल में भी व्यवस्था थी। उस गणित में कभी भूल नहीं होती थी, किंतु अन्य ग्रहों पर मानव आवास बनाना संभव है या नहीं, इसकी खोज करने का विस्तारवादी विचार भारत ने कभी नहीं किया। गहन अध्ययन, सतत चिंतन एवं अनंत काल से चली आई अखंड अनुभव परंपरा के फलस्वरूप अपने समाज का चरित्र सकारात्मक बना था। उसमें विस्तारवादी आकांक्षा के लिए गुंजाइश ही नहीं थी। प्रभु राम ने किष्किंधा के शासक बालि को यमसदन पहुंचाया था, किंतु किष्किंधा का राज्य बालि के बंधु सुग्रीव को ही सौंपा था। लंका पर विजय पाई, लेकिन लंका का अधिपति रावण के भाई विभीषण को ही बनाया।

गांव में किसी की भी कन्या के विवाह का मंगल-प्रसंग उपस्थित होता था तो सभी ग्रामवासी उसमें सहयोग देना अपना कर्तव्य मानते थे। कृषि कार्यों में एक-दूसरे का सहयोग करने की परंपरा चली आ रही थी। आम के बगीचे, जिनके भी हों, मालिक पचास फीसदी आम स्वयं रखकर शेष सभी ग्रामवासियों में बिना दाम लिए बांट देता था। फलस्वरूप, गांव के हर परिवार को आम खाने का वही आनंद मिलता था, जो आम के बगीचे के मालिक को उपलब्ध था।

गांवों में दूध बेचने की प्रथा नहीं थी, किंतु गांव भर में सबको मटठा पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हुआ करता था। साल में खरीफ की फसल घर में पहुंचने पर गांव भर के बैलों को सजाकर उनकी गांव में शोभा-यात्रा निकाली जाती थी। दरवाजे-दरवाजे महिलाएं बैलों की पूजा कर उन्हें गुड़ मिलाकर बनाए आटे के लड्डू खिलाया करती थीं। पूरा गांव एक कुटुंब के रूप में सानंद जीवन बिताता था।

आजादी की लड़ाई

भारत पर विदेशी आक्रमणों का तांता लगा था। भारत सफलता के साथ उनका सामना करता रहा, किंतु हम जब लड़ाई में हार गए, तब भी हमने पराई हुकूमत को कभी स्वीकार नहीं किया। स्वराज्य के लिए देश की तरुणाई ने लगातार संघर्ष चालू रखा। असंख्य बलिदान देने में कभी कमी आने नहीं दी। स्वराज्य-प्राप्ति तक देश के युवक-युवतियों ने बलिदानों की पराकाष्ठा की थी। उन्हीं बलिदानों के फलस्वरूप आज हम स्वयं को आजाद कहला पा रहे हैं। क्या उनके प्रति हमारा कोई कर्तव्य नहीं है?

‘ईस्ट इंडिया कंपनी’ के नाम से अंग्रेज भारत में व्यापार करने के लिए आए थे, लेकिन वे अवसर पाकर भारत के सम्राट बन गए। भारत में उनका साम्राज्य सर्वव्यापी बना था।

सन् 1857 में पहली बार अंग्रेजी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के लिए व्यापक स्तर पर स्वातंत्र्य संघर्ष हुआ था। उसमें स्वराज्य-प्राप्ति के लिए पूरा समाज एकजुट हुआ था। दुर्भाग्य से वह प्रयास सफल नहीं हुआ, किंतु उसने साम्राज्यवादी अंग्रेजों को सतर्क बना दिया था। तदुपरांत अंग्रेजों ने भारत के समाज को बांटने का षड्यंत्र रचना प्रारंभ किया। उसमें हिंदू-मुसलमानों में अलगाव पैदा करने का सबसे प्रमुख षड्यंत्र था। भारत में रहनेवाले इसलाम के अनुयायियों का अन्य कोई देश नहीं था। भारत ही उनका एकमेव देश था। इसका अंग्रेजों ने पूरा लाभ उठाया।

विराट पुरुष

अंग्रेजों ने कभी भी नहीं कहा था कि वे हमेशा के लिए भारत में रहेंगे, अतः उन्होंने मुसलमानों के चुने हुए नेताओं से कहा कि किसी-न-किसी दिन हम तो अपने देश चले जाएंगे। तब तुम्हारा हिंदूबहुल देश में सुख से रहना कैसे संभव होगा? वैसे भी तुम्हारी जाति हुकूमत करनेवाली है, इसलिए भी हिंदू तुम्हें सहन नहीं करेंगे, अतः तुम्हें मुसलमानों का स्वतंत्र और मजबूत संगठन खड़ा करना चाहिए तथा नई पीढ़ी को शिक्षित और सुयोग्य बनाना चाहिए। इसीलिए अलीगढ़ में मुसलमानों की शिक्षा-संस्था स्थापित कराई थी। साथ ही देश में हिंदू-मुसलमानों के बीच दंगे कराने में भी अंग्रेजों ने कम रुचि नहीं ली।

अंग्रेजों की प्रेरणा से ही 'मुसलिम लीग' की स्थापना हुई थी। अंग्रेज कांग्रेसी नेताओं से बार-बार कहते थे कि तुम लोग हिंदू-मुसलमान मिलकर भारत का काम-काज संभाल सको तो हम यह देश छोड़कर जाने के लिए तैयार हैं। एक ओर हिंदू-मुसलमानों में अलगाव बढ़ाने का षड्यंत्र रचते रहना और दूसरी ओर हिंदू-मुसलमान एकता की शर्त लगाना अंग्रेजों की चतुराई का नमूना था। दुर्भाग्य से हमारे नेतागण उसी में उलझ गए। वे आम मुसलमानों से अर्थात् गांव-गांव में संपर्क किए बिना मुसलमानों के अलगाववादी नेतृत्व को ही राजी करने में लगे रहे। कांग्रेस के ही युवा नेता कांग्रेस की रीति-नीति से असंतुष्ट थे। इसी कारण, सुभाष बाबू वेश बदलकर देश के बाहर गए और देश के बाहर से स्वराज्य-प्राप्ति का संघर्ष करने में जुट गए।

दूसरा विश्वयुद्ध व्यापक होने लगा। जापान की फौजें बर्मा और सिंगापुर तक पहुंच गईं। अंग्रेजों का साम्राज्य डगमगाने लगा। रूस और अमरीका की मदद से अंग्रेज किसी प्रकार जीत गए, किंतु उनका साम्राज्य टिकना संभव नहीं रहा। इस कारण, जिन छोटे-छोटे देशों में स्वातंत्र्य संग्राम का दबाव नहीं था, वे भी दूसरे विश्वयुद्ध के बाद आजाद होते गए। नेताजी सुभाष बाबू के कारण भारत की सेनाओं में भी अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह के संकेत प्रकट होने लगे थे, अतः भारत को आजादी दिए बिना अंग्रेजों के पास अन्य उपाय नहीं रहा। हमारे नेतागण इस वस्तुस्थिति को भांप नहीं पाए, किंतु अंग्रेज भारत को हिंदू-मुसलमान के रूप में विभाजित करने के बाद ही भारत छोड़ना चाहते थे, इस तथ्य को समझकर अखंड भारत की मांग पर हमारा थका-मांदा नेतृत्व डटा नहीं रह पाया और उनकी चालाकी में आकर राजसत्ता पाने की जल्दबाजी में मातृभूमि का विभाजन स्वीकार कर बैठा।

स्वतंत्र भारत और राष्ट्र-निर्माण

सदियों बाद सन् 1947 में खंडित भारत स्वतंत्र हुआ था। हम स्वयं अपने देश के भाग्यविधाता बने थे। विशाल भारत का शासन संभालने की जिम्मेदारी निभानी थी। नौकरशाही विदेशी शासकों की आज्ञानुसार काम करनेवाली थी। आम नागरिकों के हितों का ध्यान रखने का उन्हें अभ्यास नहीं था, अतः नौकरशाही की मानसिकता में परिवर्तन करने के लिए विशेष प्रयास करना जरूरी था।

लाखों गांवों व जंगलों में करोड़ों नागरिक रह रहे हैं। सदियों तक विदेशी हुकूमत में जीवनयापन करते रहने से वे केवल अपने पारिवारिक दायित्व निभाने के ही अभ्यस्त हैं। उन्हें सामाजिक

समाजशास्त्री

जिम्मेदारी की कल्पना ही नहीं है। ऐसी स्थिति में उन्हें बालिग मताधिकार का उपयोग देशहित में क्या और कैसे करना, इसकी जानकारी देना आवश्यक था। उपयुक्त बातों को कार्यान्वित करने को प्राथमिकता देने की ओर स्वतंत्रता मिलते ही ध्यान दिया जाना था, किंतु हमारा नेतृत्व इन बातों का ध्यान रखने के मूड में ही नहीं था।

हम सब लोग सन् 1947 तक स्वातंत्र्य संघर्ष में ही लगे रहे। आंदोलन चलाने की कला में हम निपुण थे। लोगों को उत्तेजित करना, चल रहे कामों में रोड़े अटकाना, चक्का जाम करना, धरना देना, हड़ताल एवं प्रदर्शन कराना और जोरदार भाषण देना आदि में हम माहिर थे, किंतु निर्माण कार्य से वंचित होने के कारण हमें नए-नए जनकल्याण के काम खड़े करने का अभ्यास करना आवश्यक था। तभी सदियों बाद प्राप्त स्वतंत्रता का सदुपयोग राष्ट्र नवनिर्माण के लिए करते।

स्वतंत्रता पाने के बाद देश में अणु शक्ति के सफल प्रयोग हुए। मिसाइलें बनीं, उपग्रहों की कला में भी हमने स्थान बना लिया, युद्धों में आश्चर्यजनक सफलताएं मिलीं। इनमें से यदि तकनीकी विशेषज्ञों के कर्तव्य को या सेनानायकों एवं जवानों की रणनीति एवं शौर्य को हटा दिया गया तो राजनेताओं के नाम क्या बचेगा?

स्वतंत्र भारत में सरदार बल्लभभाई पटेल ही एक महान् कर्तव्यशाली व्यक्तित्व हो गया है। उन्होंने चालाक अंग्रेजों को मात दी थी। देश के बंटवारे के साथ अंग्रेजों ने पांच सौ से अधिक देशी रियासतों को चाहे जो निर्णय लेने की आजादी दी थी। भारत की एकता के लिए यह कठिनतम चुनौती थी, किंतु सरदार पटेल ने देश की (कश्मीर छोड़कर) सभी रियासतों को भारत के साथ एकात्म बना डाला। जम्मू-कश्मीर को पं. जवाहरलालजी ने विशेष रूप से अपने पास रखा था। केवल वही एक देशी रियासत आज तक समस्या बनी हुई है।

स्वातंत्र्य संग्राम के काल में आजादी के लिए लड़नेवाले लोगों में कुछ भी पाने की अभिलाषा नहीं थी। हर एक स्वातंत्र्यप्रेमी सबकुछ बलिदान करने की भावना से संघर्ष कर रहा था, किंतु स्वराज्य मिलते ही सारा वातावरण ही बदल गया है। हर कोई कुछ-न-कुछ पाने के लिए लालायित है।

स्वातंत्र्य संग्राम में चोटी के स्थानों पर रहे नेताओं ने अपने ध्येय के विपरीत राजसत्ता पाने के लिए अपनी मातृभूमि का विभाजन स्वीकार किया तो शेष लोगों में सत्ता का लालच जाग उठना आश्चर्य की बात नहीं है।

आश्चर्य तो इस बात का है कि विभाजन का विरोध करनेवालों ने भी देश में एकता एवं एकात्मता विकसित करने के स्थान पर सत्ता-संघर्ष में ही रुचि ली। स्वतंत्र भारत में केवल सत्ता के द्वारा ही देश का भविष्य बनाया जा सकता है, यह मानसिकता सर्वव्यापी बनी है। यह बात स्मृति से ओझल हो गई है कि अंग्रेजों के विश्वव्यापी साम्राज्य को सामाजिक शक्ति ने ही झकझोरा था। उसी की बदौलत स्वराज्य-प्राप्ति संभव हुई थी। देश की उसी मूलभूत सामाजिक शक्ति को स्वतंत्र भारत का भविष्य बनाने का आधार बनाना चाहिए था। वही राष्ट्र की स्थायी और अक्षय शक्ति है। यही बात भूल बैठे।

सदियों बाद आजाद हुए देश के नेतृत्व को बहुत बड़ा और कठिन दायित्व वहन करना होता

विराट पुरुष

है। भारत की स्थिति और भी मुश्किल थी। कारण, उसके सम्मुख एक ओर अपने देश का गौरवमय इतिहास तथा वर्तमान की चिंताजनक अवस्था थी तो दूसरी ओर विश्व के नव संपन्न देशों का जगमगाता हुआ लुभावना ऐश्वर्य-संपन्न जीवन था, अतः कौन सी दिशा अपनाएँ, यह प्रश्न सामने खड़ा था।

यदि स्वातंत्र्य संग्राम के दार्शनिकों की घोषणा—“हमारा स्वातंत्र्य संघर्ष केवल स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नहीं है, अपितु पश्चिम में उपजी उपभोगवादी अमानवीय सभ्यता के चंगुल से मानव मात्र को मुक्ति दिलाने के लिए है,”—याद रहती तो उन्हें अपना मार्ग सहज में ही स्पष्ट हो जाता, किंतु हमारे तत्कालीन नेतृत्व ने न अपने पास उपलब्ध साधन सामग्री का विचार किया, न स्वातंत्र्य संग्राम के आदर्शों की परवाह की। पश्चिमी देशों में प्रचलित जीवन प्रणाली को ही श्रेष्ठतम समझकर उसे ही अपने देश के लिए स्वीकार किया।

पश्चिमी देशों में पनपी सभ्यता

पश्चिमी देशों में दिखाई देनेवाला ऐश्वर्य अधिक पुराना नहीं है। आज उनके पास जो ऐश्वर्य है, वह भी कहां से और कैसे उपलब्ध हुआ है, इसका भी इतिहास प्रशंसनीय नहीं है। कुछ ही सदियों के पूर्व के इतिहास पर नजर डालने पर हमें ज्ञात होगा कि इन देशों की टोलियां धन बटोरने के लिए दुनिया भर में घूमा करती थीं। अविकसित देशों पर अपना अधिकार जमाती थीं। आज अमरीका सर्वाधिक समृद्ध देश माना जाता है, लेकिन हम जिन्हें ‘अमरीकी’ कहते हैं, क्या वे सही अर्थ में अमरीकन हैं? वस्तुतः यूरोप से जाकर अमरीका के मूल निवासियों का उन्मूलन कर जोर-जबरदस्ती से वहां बसे लोग अमरीकी कहलाए जा रहे हैं। यह है इन ऐश्वर्य-संपन्न देशों का चरित्र। उनमें मानवीय संवेदनशीलता की भावना का उदय होने की संभावना दिखाई नहीं देती। अभी-अभी इक्कीसवीं सदी में राष्ट्र संघ की अवमानना कर इराक पर हमला करने में अमरीका को तनिक भी संकोच नहीं हुआ। इसी से जाना जा सकता है कि इन देशों में दिखाई देने वाले ऐश्वर्य का आधार क्या है, क्या नव स्वतंत्र भारत को, जिसकी मूल प्रेरणा ‘सर्वे भवन्तु सुखिनः’ है, पश्चिमी देशों का अनुगामी होना चाहिए?

इन देशों का जीवन लक्ष्य है—‘खाओ, पियो और मौज करो’। इसी आधार पर उनकी जीवन रचना खड़ी है। उनके जीवन में अपनी संतान के लिए भी वह आत्मीय भावना दिखाई नहीं देती, जो भारतीय परंपरा में युगों से चली आ रही है। उन देशों में पति को पत्नी या पत्नी को पति बदलने में संतान का मोह आड़े नहीं आता। यह है उनकी मानवीयताविहीन वृत्ति।

उनकी तकनीकी प्रगति का परिणाम भी कितना अमानवीय है, यह भी जान लेना जरूरी है। भाप और बिजली की शक्ति का उपयोग प्रारंभ होने पर पश्चिमी देशों में विशालकाय कारखानों का युग प्रारंभ हुआ। बड़ी संख्या में मजदूरों को कारखानों में लगाना पड़ा। कारखानों के धन-लोभी मालिक मजदूरों की सुख-सुविधाओं की उपेक्षा करने लगे। मजदूरों की यूनियनों का जोर बढ़ा। हड़तालें होने लगीं। उत्पादन में बाधा पहुंचने लगी। फलस्वरूप मालिकों ने तकनीकी विकास

समाजशास्त्री

कराया। स्वचालित यंत्रों का आविष्कार हुआ। यंत्र-मानव भी बनने लगे। इने-गिने मजदूरों से कारखाने चलने लगे। पूंजीपतियों के उत्पादन की गति बढ़ी। कमाई कई गुना हुई। मजदूरों को बेकारी का शिकार होना पड़ा। तकनीकी प्रगति ने बेकारी एवं गरीबी को सर्वव्यापी बनाया। प्रदूषण बेहिसाब बढ़ता गया। कुछ लोगों का ऐश्वर्य आसमान छूने लगा और आम लोगों के लिए सूखी रोटी के भी लाले पड़ने लगे। ऐश्वर्य-संपन्न देशों को भी अब बेकारी की आंच अनुभव होने लगी है। स्वचालित यंत्रों का विस्तार बेकारी को विकराल बनाए बिना नहीं रहेगा। बेकारी के साथ गरीबी का जुड़ना अवश्यंभावी है, अतः आज के ऐश्वर्य संपन्न देशों में विषमता असह्य रूप में प्रकट हुए बिना नहीं रहेगी। अशांति और कलह का दौर प्रारंभ होगा। अमानवीय रचना का अंततोगत्वा यही नतीजा हुआ करता है।

परानुकरण के दुष्परिणाम

परानुकरण की धुन अपनी अवस्था एवं आवश्यकता को भुला देती है। जिसके अनुकरण का भूत सवार होता है, उसी के तौर-तरीके अपनाने में वह एकाग्र हो जाता है। स्वराज्य पाने पर भारत के नेतृत्व की वही स्थिति हुई थी।

हिंदू-मुसलमान के आधार पर देश का विभाजन हुआ था। असंख्य लोगों का नर-संहार हुआ था। विभाजन के बावजूद भारत में मुसलमानों की संख्या पाकिस्तान से कम नहीं रही। वे भारत के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं जा नहीं सकते। हिंदू-मुसलिम समस्या के जनक अंग्रेज चले गए हैं, अतः दोनों तबकों में सामंजस्य निर्माण करने का कार्य केवल खास लोगों के आधार पर नहीं, अपितु गांव-गांव के स्तर पर करना नितांत आवश्यक था। देश के सभी नागरिकों में सामंजस्य निर्माण किए बिना राष्ट्र जीवन का उत्कर्ष कदापि संभव नहीं हो सकता। यह कार्य चुनावी आकांक्षा को नजरअंदाज कर केवल राष्ट्रीय कल्याण को सम्मुख रखकर करना होगा, तभी सफलता मिलेगी। विभाजन से आहत लोगों में राहत कार्य करने मात्र से सामंजस्य निर्माण होनेवाला नहीं था, किंतु इस ओर आज तक किसी ने भी ध्यान नहीं दिया है।

अपने देश में व्यवसायों को अधिक सुगम, गुणवत्तापूर्ण एवं मितव्ययुक्त बनाने के लिए जाति-प्रथा प्रचलित हुई थी। उससे समाज को बहुत लाभ हुआ था, किंतु अब उसकी उपयोगिता नहीं रही। उसका उपयोग केवल रोटी-बेटी के रिश्ते तक ही सीमित हुआ है, अतः समयानुकूल सामाजिक व्यवस्था निर्माण करना जरूरी था। इस दृष्टि से भी स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने कोई कदम नहीं बढ़ाया।

अपना समाज सदियों तक पराई हुकूमतों में रहा। देशवासियों को शासनाभिमुखी रहने के लिए बाध्य होना पड़ा था, अतः स्वराज्य-प्राप्ति के बाद अपने नागरिकों में स्वाधीनता की भावना जगाना जरूरी था। तभी वे अपने दायित्व की अनुभूति कर स्वयं तथा अपनी आबादी को स्वावलंबी बनाने में जुट जाते। स्वराज्य प्राप्ति के बाद इस मूलभूत कार्य को प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी।

विभाजन के बावजूद अपने पास जन-धन की विशाल पूंजी मौजूद थी। प्राकृतिक संपदा की

विराट पुरुष

भी कमी नहीं थी। यदि अपने नागरिकों की, विशेषतः युवक-युवतियों की कार्य-शक्ति को रचनात्मक दिशा में गति प्रदान की जाती तो वे आजादी के गत पचपन सालों में भारत को अपने बलबूते पर विश्व का एक स्वावलम्बी व समृद्ध देश बनाकर दिखाते, किंतु हमारे नेतृत्व ने इस असीम शक्ति की उपेक्षा की। परिणामस्वरूप हमारा युवा वर्ग संपन्न देशों में जाकर उनका ऐश्वर्य बढ़ाने के काम आ रहा है। हमारी तकनीकी संस्थाएं और विश्वविद्यालय भी विदेशों की तरक्की में परोक्ष रूप में योगदान दे रहे हैं।

स्वतंत्र भारत के शासक

स्वतंत्र भारत का नेतृत्व अपने देश को नवसंपन्न देशों जैसा आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाने में लगा है। वह मार्ग पूंजी प्रधान है, अतः अपना नेतृत्व विदेशी कर्ज पर आधारित अपनी योजनाएं बनाता है। अब तक करोड़ों रुपए का कर्ज लिया जा चुका है। क्या अपने युवा वर्ग में देशभक्ति एवं कर्तव्य जगाए बिना ही केवल पराए धन से हम अपने देश को खुशहाल बना सकते थे?

योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए केवल नौकरशाही पर निर्भर रहा जा रहा है। नौकरशाही के ढांचे में एवं मानसिकता में स्वराज्य-प्राप्ति के बाद आवश्यक परिवर्तन करने की चिंता नहीं की गई। राजकीय नेतृत्व विकास-प्रेमी कम सत्ता-प्रेमी अधिक है। इस कारण नौकरशाह ठेकेदारों से मिलकर विकास के नाम पर विदेशों से प्राप्त कर्ज के धन का वारा-न्यारा कर रहे हैं।

सन् 1952 से बालिग मताधिकार के आधार पर चुनाव हो रहे हैं। चुनाव के खर्च में गत पचास सालों में बेहिसाब वृद्धि हुई है। नेतागण अब बिना हेलीकॉप्टर के चुनाव भाषण देने नहीं जाते। यह धन कहां से आ रहा है? यह धन उन पूंजीपतियों से आता है, जो अरबों रुपया कालाधन जमा कर बैठे हैं। कोई विधायक या सांसद चुनाव आयोग की निर्धारित सीमा का ध्यान रखकर चुनाव खर्च नहीं करता, किंतु चुनाव खर्च का हिसाब अपने हस्ताक्षर से सीमा से कम दिखाकर प्रस्तुत करता है, अतः अप्रामाणिकता से मुक्त कौन है, यह खोज पाना असंभव है। इस कारण सरकारी तंत्र पर धनपतियों का प्रभाव अधिक बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में सर्वसामान्य नागरिकों की चिंता कौन करेगा?

सतानुरागी तंत्र

प्रारंभ से ही बालिग मताधिकार के प्रावधान के कारण हमारे संविधान की विश्व भर में तारीफ हुई थी, किंतु क्या हमने संविधान के इस प्रावधान के प्रति प्रामाणिकता का व्यवहार किया है? देश में ग्रामसभा से लोकसभा तक चुनाव होते आ रहे हैं। हर इकाई के चुनाव का अपना-अपना लक्ष्य है। उसी की पूर्ति के लिए मतदाता मतदान करे, यह अपेक्षित है। इसी दृष्टि से मतदाताओं का मार्गदर्शन करना राजनेताओं का पावन कर्तव्य है। क्या देश के नेतागण अपने इस कर्तव्य का पालन कर रहे हैं? मजहबी उन्माद के कारण देश का बंटवारा हुआ था, यह जानते हुए भी चुनाव

समाजशास्त्री

में मतदाताओं को मजहबी भावना भड़काकर गुमराह किया जा रहा है। जब जातियां अप्रासंगिक हो चुकी हैं, तो उन्हें उभारकर वोट-बैंक बनाया जा रहा है। क्षेत्रीयता को आधार बनाकर लोकसभा चुनाव में विजय पाने का प्रयास हो रहा है। इतना ही नहीं, ऐसे लोगों का समर्थन लेकर केंद्रीय सरकारें टिकाई जा रही हैं। वस्तुतः नेतागण अब नेतृत्व नहीं करते, परिस्थिति के अनुसार स्वयं को बदल लेते हैं। लोकतंत्र को 'सत्ता अनुरागी तंत्र' बनाया गया है।

शासन तंत्र का गिरता स्तर

लोकतंत्र की संसदीय प्रणाली में शासन संचालन मंत्रिमंडल द्वारा होता है। हर एक मंत्री को अपने मंत्रालय का योग्य रीति से दायित्व निभाने के लिए मंत्रालय के विषय की व्यावहारिक जानकारी आवश्यक होती है। तभी वह अपने मंत्रालय का कार्य जनहित में सफलतापूर्वक संपन्न कर सकता है।

क्या उपयुक्त आवश्यकता को ध्यान में रखकर अपने देश में मंत्रिमंडलों का गठन होता है? जिन नेताओं को प्रधानमंत्री या मुख्यमंत्री बनने की आकांक्षा है, क्या वे अपने दलों में मंत्री पद का दायित्व निभाने के लिए योग्य व्यक्तियों का चयन करते हैं?

दुर्भाग्य से अपने देश के लोकतंत्र में उपयुक्त आवश्यकताओं का ध्यान रखनेवाला कोई दल या नेता दिखाई नहीं देता। इसके बावजूद जब से आजादी मिली, तब से मंत्रिमंडलों का गठन होता आ रहा है। एक के बाद एक मंत्रिमंडल का स्तर घटता जा रहा है। मंत्रिमंडल बनाते समय जातियों, मजहबों एवं क्षेत्रीयता का ध्यान रखा जाता है, मंत्रालय चलाने की योग्यता का नहीं। परिणामस्वरूप, देश के शासन का स्तर घटता जा रहा है। वस्तुतः शासकों के द्वारा शासन संचालन के स्थान पर प्रशासक (नौकरशाह) देश का शासन चला रहे हैं। इन नौकरशाहों को सर्वसाधारण नागरिकों की विशेषतः पिछड़े और अशिक्षितों की तकनीक भी परवाह नहीं होती। फलस्वरूप स्वराज्य-प्राप्ति के बावजूद देश का शासन लोक-कल्याणकारी नहीं बन पाया है।

शहरी बनाम ग्रामीण सभ्यता

पश्चिमी देशों की जीवन-रचना पूंजीप्रधान है। उनके पास अन्य देशों से बटोरा हुआ धन पर्याप्त मात्रा में है। भाप एवं बिजली द्वारा उत्पादन विधि के वे अग्रणी रहे हैं। अपना उत्पादन दुनिया भर के बाजारों में बेचकर वे अधिकाधिक धन कमाने के अभिलाषी हैं। जहां एक ओर वह शांति का उपदेश देते हैं, वहीं दूसरी ओर युद्ध के विशेष उपकरणों का उत्पादन कर विकासशील देशों से अनाप-शनाप धन कमाते हैं। इसके लिए विशालकाय कारखानों का उन्होंने अपने देशों में जाल फैला रखा है। फलस्वरूप उन देशों में शहरी सभ्यता का बोलबाला है।

नव स्वतंत्र भारत की स्थिति सर्वथा भिन्न है। अन्य देशों से धन या सामग्री बटोरने की हमारी परंपरा नहीं है। प्रकृति की कृपा से हमारी निसर्गदत्त संपदा देश के लाखों गांवों में फैली हुई है। वह प्रति वर्ष समाज की आवश्यकताएं पूर्ण करने में समर्थ है, अतः हमें अपने राष्ट्र को समृद्ध

विराट पुरुष

बनाने के लिए पश्चिमी देशों के समान पूंजीप्रधान शहरी सभ्यता अपनाना न अनुकूल है, न आवश्यक।

हमारी समृद्धि का स्रोत ग्रामीण अंचल है। शहर तो केवल प्रशासन के इने-गिने केंद्र मात्र हो सकते हैं। उन्हें उत्पादन के केंद्र बनाना अव्यावहारिक एवं घाटे का सौदा है।

मानव समाज के लिए खाद्य-सामग्री का उत्पादन खेती से ही संभव है। खेती ग्रामीण अंचल में ही होती है। मानव के लिए पशुजन्य पदार्थ की आवश्यकता होती है। पशु भी गांवों में ही पलते हैं। बीकानेर जैसे सुदूर स्थानों से दिल्ली के लोगों के लिए टैंकरों से दूध आता है। अन्य वस्तुएं उद्योगों से प्राप्त होती हैं। उद्योगों के लिए कच्चा माल जंगलों व खदानों से उपलब्ध होता है। जंगल व खदानें भी ग्रामीण अंचलों में ही होती हैं, इसलिए समृद्धि का मूल स्रोत गांवों में है, अतः हमारी औद्योगिक रचना हमें अपने ही ढंग की खड़ी करना उपयोगी एवं लाभकारी है।

पश्चिमी तौर-तरीके अपनाने के कारण प्राकृतिक संपदायुक्त ग्रामीण अंचल उजड़ रहा है। रोजी-रोटी के लिए ग्रामवासी शहरों की ओर भाग रहे हैं। इस कारण शहरों की व्यवस्था बिगड़ रही है। उसका निराकरण शहरीकरण नहीं हो सकता।

स्वराज्य पाते ही हम अपने देश के भाग्यविधाता बने थे। इतनी बड़ी जिम्मेदारी निभानी थी, अतः हमें अपनी पृष्ठभूमि का भी विचार करना चाहिए था। दादाभाई नौरोजी ने सन् 1885 में ही अपनी पुस्तक में कहा था कि अंग्रेजों ने हमारे जीवनाधार पर ही कुठाराघात किया है।

हमारे देश की हर एक छोटी-बड़ी आबादी स्वावलंबी थी। कृषि प्रमुख व्यवसाय अवश्य था। जनजीवन की अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी लगभग हर आबादी में ही उत्पादन हुआ करता था। बढ़ई, लोहार, कुंभकार, तांब्रकार (बरतन बनानेवाला), बुनकर, स्वर्णकार, चर्मकार आदि के बिना आबादी मिलना कठिन था। हमारा औद्योगीकरण गांव-गांव में फैला था। हस्तकला का उच्चतम विकास हुआ था। ढाका की मलमल विश्वविख्यात थी। अंतरराष्ट्रीय व्यापार भी प्रचलित था। न प्रदूषण की समस्या उत्पन्न हुई थी, न बेकारी ने अपना सिर उठाया था। इन अनुभवसिद्ध बातों को हमारे नवस्वतंत्र देश के नेतृत्व ने क्षणमात्र के लिए भी विचार में नहीं लिया।

वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का सच

आजादी के पचपन सालों की गतिविधियों का उपर्युक्त विवरण वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन मात्र है। उसमें किसी की आलोचना नहीं है। गत दो-ढाई शतकों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। सूचना तंत्र ने तो कमाल ही किया है। उसने विशाल विश्व के भूगोलव्यापी विस्तार के अंतर का आभास तक न हो, ऐसा करिश्मा कर दिखाया है। फलस्वरूप पूरा विश्व एक आवास सा अनुभव होने लगा है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी की इस जादू भरी प्रगति के समान मानव मन की विशालता विकसित न हुई तो केवल तकनीकी प्रगति का परिणाम खतरनाक हो सकता है। क्या अमरीका की दादागिरी इस संभावना का संकेत नहीं है?

इसका पूर्व उल्लेख किया जा चुका है कि पश्चिमी देशों ने अपना ऐश्वर्य किन उपायों से बढ़ाया

है। अन्यो के अस्तित्व की परवाह किए बिना स्वयं के अखंड उपभोग के लिए प्रयासरत रहना उनका एकमात्र लक्ष्य है। इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति का लाभ उठाया है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति मात्र से मानवीयता का अर्थात् संवेदनशीलता (आध्यात्मिकता) का विकास संभव नहीं है।

मानव—आत्मायुक्त प्राणी

मानव प्राणी प्रकृति की वैचित्र्यपूर्ण देन है। उसके आचरण के संबंध में निर्णायक मत प्रकट करना कठिन है। कारण, वह महान् दयालु हो सकता है या भयानक दुष्ट भी। वह उदारवादी दाता हो सकता है या कमाल का कंजूस भी। वह असामान्य साहसी हो सकता है या अत्यधिक डरपोक भी। विश्व का कोई हिंसक प्राणी विनाशकारी नहीं बन सकता, किंतु मानव विनाशकारी बन सकता है। वही केवल अणुशक्ति युक्त मिसाइलों का विशाल भंडार रखता है। ऐसे परस्पर विसंगत क्षमतावान मानव प्राणी को समझकर ही मानव समाज की जीवन-रचना करना आवश्यक है, अन्यथा प्रचलित दिशा मानव मात्र को विनाश की ओर ले जा रही है।

अन्य प्राणियों के समान मानव केवल खाता, पीता तथा संतानोत्पत्ति करता हुआ शरीरधारी प्राणी मात्र नहीं है। शरीर के अतिरिक्त मन, बुद्धि एवं आत्मा भी उससे अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इसी कारण पंडित दीनदयालजी ने मानव को 'एकात्म मानव' कहा था। मानव शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा मिलकर चार तत्त्वों का एकात्म रूप है। यह मानव प्राणी की विशेषता है—ये चारों तत्त्व जब तक अभिन्न रूप से एक-साथ आबद्ध रहते हैं, तभी तक मानव जीवित रहता है।

उपयुक्त चारों तत्त्वों के दायित्व अलग-अलग हैं। शरीर उपभोग-प्रवण है, अतः उसमें कर्म-शक्ति निहित है। उसके बिना मन, बुद्धि एवं आत्मा की क्षमता पंगु बनी रहती है। शरीर उपभोग प्रवण होने के कारण उसमें संग्रहशीलता की वृत्ति भी है, किंतु आत्मा का गुण उससे भिन्न है। संवेदनशीलता आत्मा की विशेषता है। वह अन्यो के दुःख-दर्द से व्यथित होती है। उन्हें पीड़ामुक्त करने के लिए व्याकुल रहती है, किंतु आत्मा की इच्छापूर्ति की क्षमता तो संग्रहशील शरीर के पास होती है। मन और बुद्धि सत्-असत् विवेक जगाकर आत्मा की इच्छापूर्ति के लिए शरीर की कर्म-शक्ति को प्रेरित करने का प्रयास करते हैं, किंतु सफलता निश्चित नहीं रहती। इस प्रकार मानव में अंतर्द्वंद्व चलता रहता है, अतः मानव के अंतर्निहित गुणधर्मों में सामंजस्य विकसित करने के लिए ही मानव प्राणी के लिए शिक्षण की आवश्यकता होती है, जो अंतर्निहित क्षमताओं में सामंजस्य विकसित करे।

प्रकृति ने मानव को शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मायुक्त विशेष प्राणी के रूप में निर्मित किया है। वह अन्य प्राणियों के समान प्रकृति के बंधनों से बंधा हुआ नहीं है। उसमें स्वयं निर्णय की क्षमता है। इतना ही नहीं, उसे सृजनशीलता का भी वरदान प्राप्त है। इसी कारण मानव प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग कर अपने लिए कल्पनातीत सुख-सुविधाओं का निर्माण कर अपने जीवन को अधिकाधिक संतोषप्रद बनाता है, किंतु उपलब्ध सुख-सुविधाएं सभी को उपलब्ध नहीं हो रही

विराट पुरुष

हैं। सामाजिक जीवन में असमानता बढ़ रही है। कुछ लोग चरमोत्कर्ष का आनंद पा रहे हैं और अधिकांश लोगों को उदर-भरण के भी लाले पड़ रहे हैं। विश्व के देशों में भी असमानता की यही दशा है। यह अवस्था प्रकृति की देन नहीं है। यह अमानवीय दुर्दशा मानव-निर्मित है। एक ओर विज्ञान एवं तकनीकी की चकित करनेवाली प्रगति हो रही है और दूसरी ओर अधिकांश लोगों का जीवन दयनीय दशा का शिकार बन रहा है। दुर्भाग्य से इस वृद्धिगत विषमता के निराकरण के लिए शिखर पुरुष कुछ करने के इच्छुक दिखाई नहीं देते।

स्वराज्य-प्राप्ति के लिए असंख्य युवकों एवं युवतियों ने बलिदान दिया था। उस भारत की और उसके समाज की हालत आज क्या है? देखकर मन बेचैन होता है। हम महिला-पुरुष एकदम मामूली कार्य करनेवाले लोग हैं, लेकिन स्वतंत्र भारत और अपने समाज की दर्दनाक हालत देखकर दर्शक बनकर देखते रहने में शर्म आती है।

गांव-गांव के देहाती पचपन साल तक अपनी बनी सरकारों से आशा लगाए रहे, आखिर उनमें से जवान हुए लोगों को रोजी-रोटी के लिए गांव छोड़कर शहरों की ओर भागना पड़ा। वहां भी उनके लिए कोई ठिकाना नहीं है। लोगों को हताश होना पड़ा है। स्वयं कुछ किए बिना जीना संभव नहीं, इस निष्कर्ष पर वे पहुंचे हैं, अतः देहातों में उनके साथ जुटकर हमने गांवों में खुशहाली लाने का कार्य प्रारंभ किया है।

गांवों में बेकारी, गरीबी, बीमारी, अशिक्षा, कुपोषण एवं भुखमरी ने अपने पैर जमा रखे हैं। इस हालत में सहानुभूति के दो शब्द भी उनके कान में नहीं पड़ते। इस दयनीय दशा में गांधीजी का 'ग्राम-स्वराज्य' दम तोड़ने की हालत में पहुंचा है। हम उन्हीं ग्रामवासियों के बीच रहकर, उन्हें साथ लेकर, उन्हीं के द्वारा आजादी के लिए बलिदान हुए जवानों के सपनों को साकार करने का विश्वास लिये कदम बढ़ा चुके हैं।

सर्वांगीण विकास केंद्रित शिक्षा

मानव जीवन सर्वथा शिक्षा पर निर्भर है। यह रोजगार पाने मात्र का साधन नहीं है। यह पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन की सफलता की कुंजी है। इसके अभाव में मानव की मानवीयता कुटित रह जाती है। आजादी के पचपन साल का काल बीत गया, किंतु सभी देशवासियों की यह आधारभूत आवश्यकता भी पूरी नहीं हो पाई।

जो शिक्षा दी जा रही है, उससे शिक्षितों में अपने देश और समाज के प्रति कोई दायित्व अनुभव नहीं होता। कारण, उन्हें देश में फैली हुई गरीबी, बीमारी और पीड़ा की न जानकारी दी जाती है, न उसके प्रति कर्तव्यबोध ही कराया जाता है। अतः व्यक्तिगत सुख-समृद्धि के लिए वे जहां-कहीं अवसर उपलब्ध होता है, चले जाते हैं। इस प्रकार से स्वतंत्र भारत की शिक्षा प्रतिभा पलायन को परोक्ष रूप से प्रोत्साहित कर रही है। यह है स्वतंत्र भारत की शिक्षा-नीति एवं शिक्षा-पद्धति।

शिक्षा की प्रचलित पद्धति सदियों बाद स्वतंत्र हुए भारत का पुनर्निर्माण करने में कारगर नहीं हो सकती, यह गत अर्धशताब्दी का अनुभव बता रहा है, अतः हमें अपने निर्धारित गांवों में

व्यावहारिक आधार पर शैक्षणिक व्यवस्था का प्रयास करना होगा। उसके लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना जरूरी है—

■ शिक्षा को विद्यालयों के साथ जोड़ा गया है। आयु के पांचवें या छठे साल से बच्चों को विद्यालयों में प्रवेश दिया जाता है। क्या इसके पूर्व बच्चों की ज्ञानार्जन प्रक्रिया रुकी रुकती है? मनोविज्ञान के अनुसार बच्चा अपने शैशवकाल से ही ज्ञान ग्रहण किया करता है। उसके ज्ञानार्जन के प्राथमिक माध्यम होते हैं—उसकी दृष्टि एवं श्रवण-शक्ति, अतः शैशवावस्था से विद्यालय में प्रवेश पाने तक बच्चों की नजर में क्या-क्या एवं सुनने में कौन-कौन सी बातें आएँ, इसका प्रयत्नपूर्वक प्रबंध किए बिना नूतन पीढ़ी का राष्ट्र के पुनर्निर्माण की दृष्टि से विकास संभव नहीं होगा। क्या इसके लिए पारिवारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था शिक्षा-क्षेत्र का अंग नहीं होना चाहिए? हम लोग इस दिशा में प्रयत्नशील हैं।

■ प्रचलित शिक्षा-पद्धति में बच्चों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की गुंजाइश ही नहीं है। बच्चों की जन्मजात वृत्ति बड़ों का अनुकरण करने की होती है। इसी से उनकी चिंतन-प्रक्रिया को, कर्तव्य-शक्ति को एवं कल्पना की उड़ानों को गति मिलती है। बाल्यकाल में व्यक्तित्व-विकास के लिए उन्हें तीन क्षेत्र उपलब्ध होते हैं—परिवार, विद्यालय एवं आबादी। परिवार के बड़े लोग, विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाएँ तथा आबादी के गण्यमान्य लोगों पर बच्चों की पैनी नजर लगी रहती है। कौन सा व्यवहार अनुकरणीय है या त्याज्य है, इसकी समझ बच्चों में नहीं होती। बड़ों के हर व्यवहार को वे अनुकरणीय ही मानते हैं, किंतु बड़े लोग इस दृष्टि से सतर्क नहीं रहते।

बच्चों में तब दुविधा उत्पन्न होती है, जब इन बड़े लोगों के व्यवहारों में एक-दूसरे के विपरीत बरताव दिखाई पड़ता है। इससे बच्चों के व्यक्तित्व-विकास में अवरोध उत्पन्न होता है। नूतन संतान के व्यक्तित्व-विकास का कार्य राष्ट्र पुनर्निर्माण की दृष्टि से जितना महत्वपूर्ण है, उतनी ही दक्षता का भी है। वस्तुतः ग्रामीण अंचल में प्राथमिक विद्यालय के अध्यापक-अध्यापिकाओं को इस कार्य में पहल करनी चाहिए थी। वे सहज में ही परिवारों, आबादियों एवं विद्यालयों में बच्चों के व्यक्तित्व-विकास के लिए सामंजस्य का वातावरण निर्माण कर सकते थे, किंतु शैक्षणिक नीति-निर्धारकों में इस मूलभूत दृष्टि का अभाव है। अन्यथा प्राथमिक विद्यालयों के गुरुजन उपयुक्त कार्य संपन्न कर राष्ट्र पुनर्निर्माण के आधारस्तंभ सिद्ध होते और आजादी के गत पचास सालों में देश स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करता। समाज शिल्पी दंपती इस दिशा में प्रयत्नशील हैं। उन्हें गुरुजनों का भी सहयोग प्राप्त होता जा रहा है। नूतन संतान के व्यक्तित्व-विकास के साथ-साथ परिवारों एवं ग्रामवासियों के आचरण में भी अपेक्षित परिवर्तन होने की प्रक्रिया प्रारंभ होती हुई दिखाई दे रही है।

■ वस्तुतः समयानुकूल एवं स्वस्थ सामाजिक जीवन की नवरचना का केंद्रबिंदु बन सकती है—नूतन संतान। उसके उज्ज्वल भविष्य के लिए सभी माता-पिता पूरे मनोयोग से सहयोग दे सकते हैं, किंतु इस दिशा में कोई पहल करनेवाला दिखाई नहीं देता। परिणामस्वरूप ग्रामीण

विराट पुरुष

अंचल के बच्चे दिशाहीन होकर दिन भर जहां-तहां भटकते रहते हैं। जो भी वस्तु मिले, उसी को लेकर वे खेलते-कूदते रहते हैं। उन्हें न गंदगी से नफरत होती है, न स्वच्छता से प्यार। वे अपनी ही मस्ती में मस्त रहते हैं। यह है ग्रामीण अंचल में करोड़ों की संख्या में स्वतंत्र भारत की नूतन संतान की हालत।

स्वतंत्र भारत की शिक्षा व्यवस्था देश की इस नूतन संतान की विशाल संख्या को अपनी परिधि से बाहर समझती है। क्या यह व्यवहार राष्ट्र पुनर्निर्माण के दायित्व के अनुकूल है? किंतु हम अन्य को दोष देकर हाथ-पर-हाथ धरकर बैठनेवालों में से नहीं हैं।

ग्रामीण अंचल की यह नन्ही पीढ़ी भविष्य में राष्ट्र पुनर्निर्माण का आधार बन सकती है। उसे उसी आधारभूत कार्य के लिए अभी से विकसित करना जरूरी है।

प्रगतिशीलता मानव का स्वभाव

प्रगतिशीलता मानव का सहज स्वभाव है। फलस्वरूप विश्व के उन्नत राष्ट्रों में विभिन्न प्रकार के विस्मयकारी आविष्कार हो रहे हैं। उन राष्ट्रों की श्रेणी में पहुंचने की आकांक्षाएं नव-स्वतंत्र राष्ट्रों में जगना स्वाभाविक और सराहनीय भी है। प्रगति के लिए आवश्यक क्षमता अर्जित किए बिना उन्नत राष्ट्रों की नकल करने मात्र से अपनी अभिलाषाएं पूर्ण नहीं होतीं। प्रत्येक नव-स्वतंत्र राष्ट्र को अपनी सामाजिक परंपरा, वर्तमान अवस्था तथा उपलब्ध संस्थानों के आधार पर ही अपनी प्रगति की योजना बनाकर कदम बढ़ाने चाहिए। तभी राष्ट्रीय आकांक्षाएं पूर्ण होती हैं।

सदियों की गुलामी के बाद भारत स्वयं को स्वतंत्र कर पाया है। अब हम नव-स्वतंत्र हैं, किंतु हजारों सालों की अखंड अनुभव परंपरा से हम जुड़े हुए हैं। उसी से हमें चिरंतन जीवन-मूल्य प्राप्त हैं। राष्ट्र नवनिर्माण में वे ही हमारे मार्गदर्शक तत्व हैं। उन्हीं के आधार पर किया गया विकास विश्व में अपने राष्ट्रजीवन की विशेषता उजागर करेगा।

हम इस बात को भी नजरअंदाज नहीं कर सकते कि अनेक काल-बाह्य रूढ़ियां हम पर सवार हैं, अतः स्वराज्य पाते ही राष्ट्र नव-निर्माण करते समय हमें विरासत में मिली अच्छाइयों का लाभ उठाते हुए, काल-बाह्य रूढ़ियों से छुटकारा पाने का सुनियोजित प्रयास करना चाहिए था। दुर्भाग्य से इसकी उपेक्षा हो रही है।

दिशा-बोध

स्वतंत्रता पाते ही हमने अपने देश का शासन संभाला था। संतोष की बात है कि युग की आवश्यकता अनुभव कर हमने बालिग मताधिकार पर आधारित लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली अपनाई। उसकी सफलता के लिए देश के नागरिकों को मताधिकार तक ही सीमित रखना उचित नहीं था। स्वतंत्र देश के नागरिकों के नाते लोकतांत्रिक व्यवस्था में काम करने की दृष्टि से वे सदियों से अनभिज्ञ थे, अतः उन्हें अपने नव स्वतंत्र देश के नागरिकों के रूप में अपने दायित्वों एवं कर्तव्यों का बोध कराना आवश्यक था। तभी देश के सर्वसाधारण नागरिक, विशेषतः युवक-

समाजशास्त्री

युवतियाँ, स्वातंत्र्य-संग्राम के काल के समान, राष्ट्र नव-रचना के कार्यों में भी उत्साह के साथ अपना योगदान करते। केवल संवैधानिक एवं प्रशासनिक ढांचे खड़े करने मात्र से इसकी पूर्ति नहीं होती। इस मूलभूत कार्य की घोर उपेक्षा की गई। परिणामस्वरूप देश की असीम युवाशक्ति राष्ट्र नव-रचना की दृष्टि से जहाँ बेकार गई, वहीं वह लक्ष्यहीन बनकर विपरीत दिशा में भटक रही है।

रचनात्मकता की अवहेलना

आजादी पाने के बाद रचनात्मक कार्यों के लिए अनुकूल वातावरण बना ही नहीं। स्वराज्य की लड़ाई के काल में भी अनेक राष्ट्रभक्तों ने जनजीवन के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक सुधारों तथा रचनात्मक कार्यों की शृंखला खड़ी की थी। पराई हुकूमत में भी उन्हें सफलताएं मिली थीं। स्वतंत्र भारत में इन कार्यों को और अधिक सुविधाएं, प्रोत्साहन तथा गति मिलनी चाहिए थी, किंतु हुआ इसके पूर्णतः विपरीत।

सार्वदेशिक स्तर पर केवल सत्ता-संघर्ष का ही दौर चल पड़ा है। सत्ता प्रतिस्पर्धा ने हर छोटी-बड़ी आबादी को प्रभावित किया है। राष्ट्रोन्नति के स्थान पर दलगत स्वार्थों को वरीयता दी जा रही है। किसी समय जाति एवं वर्ग विहीन समाज-निर्माण का आंदोलन चलानेवाले तथाकथित प्रगतिशील नेतागण स्वयं जाति, भाषा, मजहब और क्षेत्रीयता की संकुचित भावनाएं भड़काकर राजनीतिक स्वार्थ-साधन में जुटे हैं। संपूर्ण देश सत्ता-संघर्ष का अखाड़ा मात्र बना है।

सत्ताभिमुखी जीवन

जनजीवन सर्वथा सरकार पर निर्भर हो गया है। समाज को सत्ताभिमुखी बनाया गया है। देश स्वतंत्र हुआ है, किंतु नागरिकों को याचक बनना पड़ा। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति या समस्याओं के निवारण के लिए उन्हें सर्वथा सत्ताधीशों एवं प्रशासकों की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। स्वावलंबन एवं स्वपराक्रम के लिए कोई गुंजाइश ही नहीं है। राजनीतिज्ञ कुरसी की लड़ाई में लगे हैं। व्यक्तिवाद का बोलबाला है। फलस्वरूप हरेक दल गुटबाजी का शिकार बना है। ऐसी स्थिति में स्वतंत्र भारत में एकता और एकात्मता कैसे संभव होगी? हरेक छोटी-बड़ी आबादी के नागरिक दलीय खेमों में बंट गए हैं। सामाजिक एकता एवं विकास के लिए आवश्यक परस्पर-पूरकता की भावना खत्म कर दी गई है। एकता एवं एकात्मता के आवश्यक स्तंभ अर्थात् सर्वमान्य व्यक्तियों का सभी आबादियों में एवं देश में अभाव हुआ है।

हम भूल बैठे हैं कि भारत सैकड़ों साल आजादी की लड़ाई लड़कर किस आधार पर आजादी पा सका है। अपना समाज सत्ताभिमुखी होता तो क्या हम पराई सत्ता को परास्त कर आजाद हो पाते? बर्बर अत्याचारियों की विदेशी सरकारों के काल में भी क्या हम अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को टिका पाते? क्या महाचतुर अंग्रेजों के विश्वव्यापी साम्राज्य के शिकंजे से हम अपनी मातृभूमि छुड़ा पाते?

वस्तुतः अपने राष्ट्र एवं संस्कृति के चिरंतन अस्तित्व का मर्म अपने परंपरागत लोकाभिमुखी

विराट पुरुष

चरित्र में है। सत्तानिर्लिप्त प्रभु राम का चरित्र इसका प्रमाण है। यही अपने राष्ट्र की विशेषता है। शासकों और शासन को लोकाभिमुखी बनाने का अपना अनोखा इतिहास है। उसकी पुनर्प्रतिष्ठा करना आज की आवश्यकता है। दीनदयाल शोध संस्थान वर्तमान काल में अपने इस परंपरागत लोकाभिमुखी चरित्र को पुनर्जीवित करने में संलग्न है। लोकाभिमुखी वृत्ति सामाजिक पुनर्रचना के लिए नितांत आवश्यक है। व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक जीवन में तदनुकूल वातावरण उपलब्ध कराना अर्थात् अपनी मूलभूत जीवन-दृष्टि अपनाना अनिवार्य है।

मूलभूत जीवन-दृष्टि

अपना समाज सनातन है। सनातन का अर्थ केवल पुरातन नहीं, चिरंतन है। इसमें जहां चिर पुरातनता है, वहीं नित्य-नूतनता के बीज भी विद्यमान हैं। अपने सनातन समाज की गतिशीलता अनंत काल से अखंड रूप में बनी रहना ही अपने सामाजिक जीवन की विशेषता है। सामाजिक जीवन की यह भारतीय अवधारणा विश्व में अद्वितीय है।

वास्तव में इस अविरल गतिशीलता का मर्म पारिवारिक जीवन में समाहित है। इसी कारण अपनी परंपरा में परिवार को समाज की आधारभूत इकाई माना गया है। पारिवारिक जीवन के माध्यम से ही समाज को निरंतरता एवं स्थायित्व प्राप्त होता है। फलस्वरूप भारतीय जीवन-पद्धति में परिवार अर्थात् गृहस्थाश्रम को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

परिवार का उद्गम है—विवाह संस्कार। इसका अर्थ केवल युवक-युवती का मिलन मात्र नहीं है। यह व्यक्तिगत जीवन का सहजीवन में विलीनीकरण है। यह सामाजिक, प्रतिबद्धतापूर्ण व्यवहार के शुभारंभ का समारोह है। यह परस्परपूरकता के आचरण की दीक्षा-विधि है। अपने सांस्कृतिक जीवन को चिरंतन एवं सदैव गतिशील बनाए रखने का संयुक्त संकल्प है। यह आत्मा प्रणीत 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अवधारणा को सह-जीवन द्वारा चरितार्थ करने की पावन प्रतिज्ञा है। सहजीवन की एकात्मता तथा सामाजिक प्रतिबद्धता के माध्यम से भावी संतान को सुसंस्कारित करने की वचनबद्धता है। सार्थक सहजीवन की यह मंगलमय यात्रा है।

उपयुक्त मानवोचित एवं दैवी प्रेरणा पारिवारिक जीवन की आधारशिला है, किंतु काल के प्रवाह में पारिवारिक जीवन का यह आदर्श लुप्त हो गया है। व्यक्ति पारिवारिक मोह में उलझकर सार्थक-जीवन की दिशा खो बैठा है। अधिकाधिक प्रभावी हो रही विश्वव्यापी भौतिकता ने मानव को केवल उपभोगप्रवण प्राणी बनाया है। उसकी मानवीय संवेदनशीलता मिटने लगी है। उसके कर्तृत्व की परिधि परिवार तक सिमट गई है। पश्चिम में हुई औद्योगिक क्रांति के बाद अस्तित्व में आई आर्थिक रचना ने इस संकुचितता को और अधिक बल प्रदान किया है। फलस्वरूप परिवार का आकार घटता गया है। पति-पत्नी और एक या दो बच्चों के परिवारों का चलन बढ़ा है। उसमें वृद्ध माता-पिता के लिए भी स्थान पाना कठिन हो गया है। व्यक्ति की संकुचितता यहां तक ही नहीं रुकी है, पति-पत्नी के अभिन्न संबंधों में भी दरारें पड़ने लगी हैं। कहीं दहेज की भूख आड़े आ रही है, तो कहीं व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना सीमा

लांघ रही है। माता-पिता के आपसी तनावपूर्ण संबंध संतान के लिए असमंजस का कारण बन रहे हैं। उनके लिए सार्थक जीवन के सुसंस्कार पाना असंभव हुआ है। परिणामस्वरूप नैतिकता, प्रामाणिकता, संवेदनशीलता, राष्ट्रीयता, मानवीयता आदि व्यापकता बोधक शब्द केवल वाणी एवं साहित्य में अलंकार मात्र बनकर रह गए हैं। उनका व्यावहारिक जीवन से संबंध-विच्छेद हुआ है। परिणामस्वरूप समाज में दिन-प्रतिदिन विघटन बढ़ रहा है।

मानव विकास के केंद्र

देश का भविष्य निर्भर नूतन नागरिकों पर करता है। वे जन्म पाते हैं परिवारों में तथा शिक्षित होते हैं विद्यालयों में। उनके व्यक्तित्व-विकास के ये ही दो केंद्र हैं, अतः इन केंद्रों को संस्कारक्षम, प्रेरणाप्रद एवं समाजनिष्ठ बनाना नव-स्वतंत्र देश के नेतृत्व का प्राथमिक दायित्व था, किंतु इन दोनों विकास केंद्रों की सर्वाधिक उपेक्षा हुई है। आजादी के संग्राम काल में व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन की उपेक्षा होती ही है। कारण, स्वातंत्र्य संग्राम की लक्ष्य सिद्धि के लिए व्यक्तिगत एवं पारिवारिक बलिदान ही सर्वाधिक परिणामजनक साधन होते हैं, किंतु आजादी पाते ही सामाजिक जीवन की आधारशिला पारिवारिक संस्था को फिर से सुसंस्कारक्षम एवं सामाजिक प्रतिबद्धतापूर्ण बनाने के काम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी। यह मूलभूत कार्य उपेक्षा का शिकार हुआ है।

देश के प्रमुख नागरिक अर्थात् शिक्षक, उपदेशक, विचारक, लेखक, कवि, कलाकार, शासक, प्रशासक आदि लोग जिन परिवारों में जन्म पाते तथा पलते हैं, उनकी अवस्था का उल्लेख ऊपर किया गया है। उनमें जन्म पानेवाले नागरिकों को लोकाभिमुखी बनाने की संस्कार-क्षमता बची ही नहीं है। विद्यालयों की अवस्था भी उनसे भिन्न नहीं है।

देश के पांचों 'आई.आई.टी.' शिक्षण केंद्र अपने देश की विख्यात संस्थाएं हैं। उनमें प्राप्त हो रही शिक्षा को सर्वोत्तम माना जाता है। विश्वव्यापी स्तर पर उन्हें मान्यता प्राप्त है। इनमें पढ़नेवाले छात्रों पर अभिभावकगण खुलकर धन खर्च करते हैं। सरकार भी आम नागरिकों से टैक्स के रूप में वसूली हुई धनराशि का पर्याप्त अंश इन पर व्यय करती है, किंतु इन शिक्षा-संस्थाओं से उपाधियां प्राप्त युवक-युवतियां वैभवशाली जीवन की अभिलाषा से विदेशों में जाकर बसना पसंद करते हैं। इन पर खर्च हुए जनधन के प्रति उनमें न कृतज्ञता की भावना होती है, न अपने देश और समाज के लिए कुछ करने की प्रेरणा उदित होती है।

इससे स्पष्ट है कि शिक्षा संस्थाएं भी देश के विकासशील नागरिकों में लोकाभिमुखी प्रेरणा जगाने की दिशा में कार्यरत नहीं हैं। परिवारों एवं विद्यालयों की यही अवस्था बनी रही तो हमारी अनंतकाल से चली आ रही लोकाभिमुखी धरोहर खतरे में पड़ जाएगी।

स्वराज्य का अर्थ स्वावलंबन

उपर्युक्त चिंताजनक अवस्था के निर्माता हम स्वयं हैं। हमने अपनी स्वराज की अवधारणा के अनुसार कार्य नहीं किया। विदेशी शासकों को हटाकर अपने लोगों के हाथ शासन सौंपना मात्र

विराट पुरुष

स्वराज्य नहीं होता। इस बात को हम भूल बैठे। केवल राजसत्ता प्राप्ति से राष्ट्रजीवन में न अपनी सर्वव्यापी जीवनदृष्टि प्रदाता संस्कृति ही प्रतिबिंबित होती है, न अपनी प्रतिभा की विशेषता ही विश्व में प्रस्थापित होती है।

वस्तुतः स्वराज्य का अर्थ है—पराधीनता के काल की सत्तावलंबन की विवशता के स्थान पर स्वावलंबन की प्रस्थापना। राष्ट्रजीवन की हर एक इकाई के स्तर पर स्वावलंबन के जीवन की पुनर्चना करना। यदि यह हुआ होता तो देश की प्रत्येक छोटी-बड़ी आबादी में स्वराज्य-प्राप्ति की सुखद अनुभूति होती। देश के सर्वसाधारण नागरिक भेदभाव भुलाकर अपनी-अपनी आबादी में स्वावलंबन का जीवन खड़ा करते। इसी से स्वाभिमानपूर्ण समृद्धिशाली राष्ट्रजीवन की नव-रचना का युग प्रारंभ होता।

युवा-शक्ति की उपेक्षा

नव-स्वतंत्रता को सार्थक बनाना देश की नई-पीढ़ी का काम है। वृद्ध नेतृत्व का काम केवल सलाहकार का होता है। नए युग का सूत्रपात हमेशा युवा-शक्ति ने ही किया है। मानव इतिहास इसका साक्षी है। आत्मविश्वास एवं उत्साह के साथ नवीन प्रयोग करने का साहस एवं क्षमता युवक-युवतियों में ही होती है, किंतु स्वतंत्र भारत के वृद्ध नेतृत्व ने देश की असीम युवा-शक्ति को पंगु बना रखा है। महात्मा गांधी की दूर-दृष्टिपूर्ण सलाह को उन्होंने अमान्य किया। सत्ता-सुख के वशीभूत होकर शासन पर अपना एकाधिकार जमाया। स्वाभिमानपूर्ण स्वावलंबन के स्थान पर थके हुए नेतृत्व ने परानुकरण की शरण ली। व्यावहारिकता को नजरअंदाज किया। कल्पनालोक में आत्मविभोर होते रहे। व्यक्तिगत प्रतिष्ठा के मोह में देशहितों की तिलांजलि दी। राष्ट्र की एकता, एकात्मता तथा सुरक्षा के मार्ग में स्वनिर्मित रोड़े खड़े किए। सत्तापिपासा को सर्वव्यापी बनाया। देशभक्ति, समाजनिष्ठा, आत्मविश्वास, स्वाभिमान एवं स्वावलंबन के स्थान पर देश भर में निराशा तथा हताशा फैलाई।

हम सबकी चुनौती

जिस आजादी के लिए देश की तरुणाई ने सैकड़ों साल लगातार लड़ाई लड़ी, असंख्य युवक-युवतियों ने कल्पनातीत यातनाएं सहें, उभरती जवानी आजादी की बलिवेदी पर न्योछावर की, उस आजादी की हो रही दुर्दशा आज के युवकों एवं युवतियों को चुनौती दे रही है। इस दुर्दशा का दोष किसी के मत्थे मढ़ना मात्र इस चुनौती को स्वीकारना नहीं है। स्वराज्य का जो सुहावना सपना हृदय में संजोकर देश की तरुणाई ने इतनी लंबी और भीषण लड़ाई लड़ी थी, उसे साकार कर दिखाने में ही चुनौती स्वीकार करने की सार्थकता है।

स्वातंत्र्य संग्राम एवं नवनिर्माण

स्वराज्य का सपना साकार करने का चिरप्रतीक्षित कार्य करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि स्वराज्य-प्राप्ति की प्रक्रिया में तथा राष्ट्र नवनिर्माण के कार्य में जमीन-आसमान का अंतर है। स्वराज्य-प्राप्ति की प्रक्रिया सर्वथा संघर्ष-मूलक है। पराई सत्ता को उखाड़ फेंकने

समाजशास्त्री

का वह संग्राम है। उसमें हार-जीत की भावना काम करती है। वह कूटनीतिक चालों का दौर है। आशंका एवं अविश्वास उसके अभिन्न अंग हैं। आंदोलन, संघर्ष, विध्वंस, उत्पीड़न, दमन, प्राणार्पण आदि का तांडव आजादी के संघर्ष की अपरिहार्यता है।

राष्ट्र नवरचना तो देश के कायाकल्प का कार्य है। उसमें किसी से शत्रुता की गुंजाइश ही नहीं है। परस्पर सद्भावना एवं सहयोग उसकी नींव है। उसमें सामंजस्य, सहकार, समन्वय, सहिष्णुता, संवेदना, संयम, स्वाध्याय, अनुसंधान, पुनर्रचना, प्रबंध आदि विधायक गतिविधियों के अवलंबन की आवश्यकता है। स्वतंत्रता पाते ही इसी दिशा में काम होना चाहिए था, किंतु चल पड़ा सत्ता-संघर्ष। स्वराज्य का सपना नजर से ओझल हो गया। परस्पर सद्भावना के स्थान पर एक-दूसरे को विफल करने के द्वेषपूर्ण कार्य चल पड़े। सत्ता पक्ष के विरुद्ध वे ही हथकंडे अपनाए जाने लगे जो विदेशी हुकूमत को उखाड़ फेंकने के काम आए थे। नवरचना के स्थान पर हड़ताल, बंद, विध्वंस आदि आंदोलनों में ही जनशक्ति का अपव्यय हो रहा है। यह दिशा केवल नकारात्मक ही नहीं आत्मघाती और अलोकतांत्रिक है। इसे बदलकर सभी का राष्ट्रभावना से रचनात्मक दिशा के कार्यों में जुटना समय की आवश्यकता है।

राष्ट्र नवनिर्माण की विधि

नव-स्वतंत्र देश में राष्ट्र नवनिर्माण के कार्यों में समाज के सभी घटकों का सक्रिय योगदान आवश्यक है। तभी नागरिक राष्ट्राभिमानी, कर्तृत्ववान, उन्नत, स्वाभिमानी, स्वावलंबी, सुखी एवं संतुष्ट हो सकते हैं, अतः इस महत्कार्य का शुभारंभ राष्ट्र की छोटी-से-छोटी इकाइयों अर्थात् ग्रामों से प्रारंभ किया जाना चाहिए। ग्रामवासियों को अपने-अपने ग्राम के सर्वांगीण विकास में संलग्न करना अधिक आसान है। इसी से उनमें परस्पर सद्भावना विकसित होती है, परस्पर-पूरकता पनपती है, सहकार बढ़ता है, आर्थिक एवं सामाजिक विषमता घटती है, प्रगति के समयानुकूल नए-नए कार्य संभव होते हैं, बेकारी दूर होती है, गांव की समृद्धि बढ़ती है तथा सभी परिवारों के लिए सुखमय जीवन संभव होता है। राष्ट्र नवरचना की यही कारगर विधि है। गांधीजी ने यही मार्ग सुझाया था, किंतु इस दिशा में किसी भी राष्ट्रीय नेता ने सक्रिय कदम नहीं बढ़ाया। वर्तमान दुर्दशा इसी का नतीजा है।

वर्तमान अवस्था

देश की लगभग तीन-चौथाई आबादी ग्रामीण अंचलों में रह रही है। वहां सुखी जीवन की संभावना दिखाई नहीं देती, अतः ग्रामवासी शहरों में शरण लेने के लिए विवश हैं। गांव, जो देश के स्वाभाविक उत्पादन केंद्र हैं, उजड़ रहे हैं। शहरों में नरक तुल्य गंदी बस्तियों का निरंतर विस्तार हो रहा है। इस दुरवस्था का निराकरण करने में सरकार विफल है। परिणामस्वरूप जघन्य अपराध बढ़ रहे हैं। सामाजिक शांति एवं व्यवस्था का अभाव बढ़ रहा है।

तरुणाई का आह्वान

देश की इस निराशाजनक अवस्था का निवारण करने के लिए दीनदयाल शोध संस्थान देश की

विराट पुरुष

तरुणाई का आह्वान करता है। वही स्वातंत्र्य प्राप्ति के लिए हुए बलिदानियों के बलिदानों की कदर कर सकती है। उनके सपनों को साकार करने के लिए कष्टमय जीवन अपना सकती है। देश में फैली निराशा और हताशा को मिटाकर भविष्य के प्रति नागरिकों में विश्वास जगा सकती है।

उपयुक्त अनिवार्य कार्य के लिए प्रयोगात्मक रूप में एक सौ ग्राम समूहों का चयन किया जा रहा है। प्रत्येक ग्राम समूह कम-से-कम दो तथा अधिक-से-अधिक पांच ग्रामों का होगा। राष्ट्र नवरचना के कार्यों में महिला एवं पुरुषों का समान रूप में योगदान आवश्यक है, अतः इस कार्य के लिए समाज शिल्पी परिवार के रूप में सौ नव दंपतियों की आवश्यकता है। पति-पत्नी की अर्थात् दोनों की शैक्षणिक योग्यता कम-से-कम स्नातक होनी चाहिए। राष्ट्र नवनिर्माण का कार्य बिना स्वाध्याय तथा मनन के संभव नहीं है। अध्ययन, अध्यापन, अनुसंधान, प्रयोग, पुनर्रचना और प्रबंध इस कार्य के अभिन्न अंग हैं। उपयोगी साहित्य देशी और अंग्रेजी भाषाओं में उपलब्ध है, अतः पति तथा पत्नी को अंग्रेजी भाषा की जानकारी भी जरूरी है। हर एक दंपती को लगातार पांच वर्ष एक ही ग्रामसमूह में रहना होगा। तभी समाज स्वयं की योजकता, बुद्धिमत्ता, परिश्रम तथा उनके संसाधनों के आधार पर सामूहिक, पारिवारिक एवं व्यक्तिगत स्वावलंबन एवं समृद्धि का जीवन खड़ा कर पाएगा। इसी से देश की राजनीति में भी अपेक्षित परिवर्तन संभव होगा। अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार दूर होकर प्रामाणिकता बढ़ेगी।

कोरी कल्पनाओं की उड़ान 'ग्लोबल' चिंतन

इन दिनों 'ग्लोबल' शब्द सबकी जुबान पर चढ़ा है। उसके बिना किसी विषय पर चर्चा पूर्ण नहीं होती। यह नई उपज हमारे लिए अपरिचित नहीं है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का जनक भारत ही है, किंतु आवश्यकता है व्यावहारिकता की, कोरी संकल्पनाओं की नहीं। क्या हम अपने व्यावहारिक जीवन में 'ग्लोबल' या राष्ट्रीय हैं? क्या पास-पड़ोस में दयनीय दशा में जी रहे अभावग्रस्तों के लिए अपने व्यावहारिक जीवन में कोई जगह है? क्या उन्हें अपना समझकर अपनी संतान के समान इन उपेक्षितों की संतान के उज्ज्वल भविष्य के लिए हम प्रयासरत हैं? क्या वे 'ग्लोबल' या राष्ट्रीय जीवन के अभिन्न अंग नहीं हैं? क्या इस विषय पर केवल बौद्धिक कसरत करने तथा उपदेश देने मात्र से अपेक्षित प्रतिफल प्राप्त होगा?

उपर्युक्त उल्लेख इस कारण करना पड़ रहा है कि बौद्धिक चर्चाएं तथाकथित विशेषज्ञता की मानसिकता के कारण प्रायः एकांगी होती हैं। सर्वांगीण चिंतन का अभाव होता जा रहा है। जन-जीवन का विचार भी टुकड़ों-टुकड़ों में किया जा रहा है। 'शहरी समाज' तथा 'ग्रामीण समाज' को एक-दूसरे से भिन्न मानकर विचार करना क्या व्यावहारिक है? उनके परिवेश में अंतर हो सकता है। उनके व्यवसाय भिन्न हो सकते हैं, किंतु मानव की मानसिकता तो भिन्न नहीं हो सकती।

शहरों में तड़क-भड़क और चमक-दमक का जीवन है। बढ़िया-बढ़िया सड़कें, रात में भी दिन जैसा उजाला, तेज गति से दौड़ती चमचमाती मोटरें, एक से एक बढ़िया गगनचुंबी

समाजशास्त्री

अट्टालिकाएं, सुंदर-सुंदर वस्तुओं से सजी आकर्षक दुकानें, नयनाभिराम परिधानों से अलंकृत नर-नारियों की चहल-पहल, मनोरंजन के साधनों की भरमार एवं रंग-बिरंगे फूल-पौधों से सुशोभित छोटे-बड़े बगीचे आदि की रमणीय छवि शहरों की विशेषता अवश्य है, किंतु क्या इसे ही मानवीय विकास का मापदंड मानना उचित है?

अमानवीयता का नग्न दृश्य

इन्हीं शहरों में पच्चीस से चालीस प्रतिशत आबादी गंदी बस्तियों में जी रही है। क्या उन बस्तियों में रहनेवालों को उपयुक्त सुख-सुविधाएं नसीब हैं? उन गंदी बस्तियों में नर्कतुल्य जीवन बसर करनेवाले बांधवों के प्रति शानदार भवनों या आसमान छूती इमारतों में रहनेवालों के हृदय में किंचित् मात्र भी पीड़ा है। सुख-सुविधा संपन्न आवासों में रहनेवाले सभ्य और सुशिक्षित कहे जानेवाले लोग गंदी बस्तियों में रहनेवालों से नफरत करते हैं। क्या इस दिशा में बढ़ रहे शहरों को मानवीय विकास का प्रतीक माना जा सकता है? इन बहुमंजिली अट्टालिकाओं के फ्लैटों में पल रही नूतन संस्कृति किस दिशा का संकेत करती है? पड़ोस के ही फ्लैट में रहनेवाले परिवार के सुख-दुःख में सहभागी होने की मानसिकता इन 'उच्चस्तरीय माने जा रहे लोगों' में नदारद है। ऊंचे उठ रहे जीवन स्तर का यही शहरी नमूना है, मानवीय संवेदना से शून्य अमानवीय जीवन का शोचनीय प्रतीक।

वस्तुतः जितनी आवश्यकता ग्राम विकास की है, उतनी ही शहरी जीवन में मानवीयता निर्माण करने की भी है। दोनों में समाज मानसिकता विद्यमान है, जो समाज के सभी घटकों के जीवन में सौख्य, संतोष एवं उन्नति निर्माण के सर्वथा प्रतिकूल है।

आवश्यकता है संवेदनशीलता, समाजनिष्ठा एवं कर्तव्यतत्पर मानसिकता को व्यावहारिक जीवन में उतारने की। शहर एवं ग्रामों में परस्परपूरकता की भावना एवं व्यवहार प्रचलित करने की। कारण, शहरों एवं ग्रामों का जीवन एक-दूसरे पर निर्भर है। किसी एक का विकास दूसरे के बिना असंभव है। दोनों देशव्यापी समाज के अभिन्न अंग हैं, सर्वांगीण विकास की परिकल्पना तभी साकार हो सकेगी जब ग्राम व शहर दोनों के विकास का परस्परपूरक रूप खड़ा किया जाएगा।

एकता एवं एकात्मता राष्ट्र नव-रचना का आधार

साधारणतः आबादियों में कम-अधिक संख्या में विभिन्न जातियां तथा मजहबों को माननेवाले नागरिक रह रहे हैं। उनके जीवन की आवश्यकताएं एवं समस्याएं भिन्न नहीं हैं। जातियों तथा मजहबों को लेकर अनावश्यक तनाव निर्माण किया जाता है। इससे सभी के विकास के कार्यों में बाधा होती है। सभी की हानि होती है। राष्ट्र नव-रचना में संलग्न व्यक्तियों और संस्थाओं को इस विभेदकारी वृत्ति का निवारण करना होगा। इसके बिना हम अपना लक्ष्य सिद्ध नहीं कर पाएंगे।

वस्तुतः जातियां जातिगत हित साधन करने के लिए अस्तित्व में आई ही नहीं थीं। समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए व्यावसायिक आधार पर उनका जन्म हुआ था। बदली परिस्थिति

विराट पुरुष

में उनका अस्तित्व निरर्थक है, अतः जाति या मजहब का वृथाभिमान एवं तनाव सत्तापिपासा पूर्ति का साधन बना है।

मजहबों की दुर्दशा की जा रही है। हर एक मजहब इनसान को इनसानियत के साथ जिंदगी जीने तथा शिक्षा देने के लिए ही अस्तित्व में आया था। हर एक व्यक्ति अर्थात् महिला एवं पुरुष नैतिकता एवं सदाचार का आचरण करे, इसकी प्रेरणा देना ही मजहब की मूल भावना थी। मजहब मानव को कर्तव्य सिखाता है, किंतु मजहब को साधन बनाकर राज्य एवं साम्राज्य पाने की आकांक्षाएं बलवती हो गईं, इसलिए उसमें वृथाभिमान एवं कट्टरता पनपी है। उसके दुष्परिणाम संपूर्ण विश्व में प्रकट हो रहे हैं। मजहबी कट्टरता के कारण ही सुरक्षा, शांति तथा व्यवस्था बिगड़ती जा रही है। विकास कार्यों में बाधाएं आड़े आ रही हैं। यह स्थिति राष्ट्र नव-रचना के कार्य के पूर्णतः प्रतिकूल है।

छोटी-छोटी आबादियों में सभी नागरिकों में एकता एवं एकात्मता के प्रयासों को सफलता मिल सकती है। स्थानीय नागरिक मिलकर, भेदभाव से मुक्त होकर, सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति एवं समस्याओं के निराकरण की दिशा में गतिशील हो सकते हैं तथा पूरी आबादी में एकता एवं एकात्मता का जीवन खड़ा कर सकते हैं। सबकी आवश्यकताएं एवं समस्याएं समान हैं। राष्ट्र नव-रचना के लिए इस दिशा में दृढ़तापूर्वक एवं सामंजस्य के साथ काम करना समय की आवश्यकता है। सामाजिक समरसता का यही मार्ग है। यह कार्य ग्रामों में साकार होकर शहरों में एवं क्रमशः संपूर्ण देश में व्याप्त हो सकता है। यह कार्य करना भारत के लिए ही संभव है। कारण 'सर्वभूत हितैरतः' की भावना का रक्त हम सभी की नसों में बह रहा है। भारत की यह उपलब्धि सभी देशों के लिए अनुकरणीय सिद्ध होगी। तभी 'ग्लोबल' शब्द की सार्थकता होगी।

राष्ट्र नव-रचना में संलग्न युवक-युवतियों के लिए छोटी-छोटी आबादियों में एकता एवं एकात्मता का निर्माण करने के लिए यह स्वर्णिम अवसर है। बिना जातिगत या मजहब आधारित भेदभाव के सभी का, विशेषतः नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास करने में दृढ़ता एवं एकाग्रता के साथ जुट जाएं तो सफलता अवश्यंभावी है। वस्तुतः यही भारतीय परंपरा है। इसी परंपरा के आचरण के माध्यम से विश्व का मार्गदर्शन करना संभव है।

शिक्षा की अनिवार्यता

मानव राष्ट्र नवनिर्माण का केंद्रबिंदु है। वह अन्य जीवजगत के समान प्रकृति प्रदत्त प्रवृत्तियों के अधीन नहीं है। स्वनिर्णय की उसमें क्षमता है। शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा का वह अविभाज्य समुच्चय है। इन चारों एकात्म तत्वों की उपलब्धि उसे नवनिर्माण की क्षमता प्रदान करती है। यही मानव-जीवन की विशेषता है। उसकी यह विशेषता कल्याणकारी भी बन सकती है और विनाशकारी भी।

मानव का व्यक्तित्व द्वंद्वात्मक है। मानव शरीर का गुणधर्म है सदैव कार्यरत रहना, किंतु आत्मा

समाजशास्त्री

अनुभूति प्रेरक है। शरीर भोगप्रवण अर्थात् वासनायुक्त है, किंतु आत्मा संवेदनशील है। वासना व्यक्ति को स्वकेंद्रित बनाती है, किंतु संवेदना अन्य के प्रति आत्मीयता की प्रेरणा देती है। वासना व्यक्ति में सुखदायी वस्तुओं का संग्रह करने की लालसा बढ़ाती है, किंतु संवेदना उसमें अन्य को सुख-सुविधाएं पहुंचाने का भाव जगाती है। वासना व्यक्ति को भोग में लिप्त रहने के लिए ललचाती है, किंतु संवेदना उसे अपनी वासनाओं पर संयम कर दूसरों की चिंता कराती है। इस प्रकार प्रत्येक मानव में भौतिक एवं आध्यात्मिक अंतर्द्वंद्व चलता रहता है। व्यक्ति की सामाजिक प्रतिबद्धता तब तक साकार नहीं हो पाती जब तक मानव अपने शरीर, मन, बुद्धि तथा आत्मा की क्षमताओं में एकात्मता अनुभव नहीं करता। क्या उचित है और क्या अनुचित, यह समझ पाने के लिए हर पढ़े और बेपढ़े मानव को विवेकशीलता मिली है, किंतु अंतर्द्वंद्व के कारण व्यावहारिक जीवन में वह बहुत कम प्रभावी होती है। जब मानव के मन और बुद्धि का झुकाव भौतिकता की ओर होता है तो वह भोगलालसा का शिकार बन विनाश की दिशा में गतिशील होता है, किंतु मन और बुद्धि केवल आध्यात्मिकता में ही लीन हुईं तो मानव अव्यावहारिक बन परिवार, व्यवसाय, समाज तथा मानव मात्र के लिए निरुपयोगी बन जाता है।

उपभोग शरीर के अस्तित्व का आधार है और शरीर आत्मा का माध्यम है, अतः उपभोग को तुच्छ मानना गलत है। समाज का अखंड प्रवाह अर्थात् चिरंतनता उसके बिना असंभव है। आत्मा के 'सर्वभूत हितैरतः' के लक्ष्य सिद्धि का माध्यम शरीर ही है। शरीर के बिना आत्मा निष्क्रिय रहती है, अतः भौतिकता या आध्यात्मिकता की अति न व्यक्ति के लिए उपयोगी है, न समाज के लिए हितावह। दोनों में संतुलन अर्थात् परस्पर पूरकता मानव जीवन की आवश्यकता है। मानव जीवन में यह सामंजस्य प्रस्थापित करने के लिये संस्कार एवं शिक्षा की अनिवार्यता है। गर्भाधान से ही संस्कार की प्रक्रिया प्रारंभ होती है। उस समय माता-पिता की जो मानसिकता रहती है, उसका प्रभाव गर्भाधान पर होता है। मां की मनोभावनाएं गर्भकाल में गर्भस्थ शिशु पर विशेष असर करती हैं। जन्मोपरांत शिशु परिवार में उपलब्ध वातावरण से संस्कार ग्रहण करता है। इस काल में उसकी श्रवणशक्ति तथा दृष्टि बहुत पैनी होती है, अतः उसकी वृत्ति, दृष्टिगत दृश्यों और सुनी हुई बातों के अनुसार विकसित होती है। इसकी जानकारी परिवारजनों को देना आवश्यक है। शिशु की अनौपचारिक शिक्षा परिवार में उपलब्ध वातावरण के माध्यम से अपने आप होती है। इसके उपरांत व्यापक जीवनदृष्टि तथा शनैः-शनैः व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक प्रगति की प्रक्रिया में सामंजस्य तथा परस्पर-पूरकता के व्यवहार के पाठ पढ़ने के लिए उसे विद्यालय के सामूहिक जीवन में प्रविष्ट किया जाता है, अतः शिक्षा के माध्यम से नई पीढ़ी के सर्वांगीण विकास की समुचित व्यवस्था करना समाज का दायित्व है। स्वतंत्र भारत में सत्तारूढ़ नेतृत्व द्वारा उपयुक्त दायित्व निभाने की लगातार उपेक्षा की जा रही है।

शिक्षा की उपेक्षा

स्वतंत्र भारत में परिवार संस्था के समान ही शिक्षा भी उपेक्षित है। देश के नेतृत्व के दिमाग

विराट पुरुष

में नवस्वतंत्र देश के लिए आवश्यक शिक्षा की पुनर्रचना का स्पष्ट चित्र ही नहीं है। दूसरों के मत्थे दोष मढ़कर अपनी कमजोरी छिपाने का काम चल रहा है। शिक्षा से संबंधित हर सभा, सम्मेलन, समारोह में मैकाले को अभी भी कोसा जाता है। मैकाले अंग्रेजी हुकूमत का अभिन्न अंग था। भारत में अंग्रेजों का प्रभुत्व सदैव बना रहे, ऐसी शिक्षा रचना करना उसका दायित्व था। तदनुसार उसने शिक्षापद्धति की रचना की थी। इससे भिन्न अपेक्षा उससे करना कैसे व्यावहारिक हो सकता है? आजादी की अब अर्धशताब्दी पूर्ण हो रही है। इस लंबे काल में हमने शिक्षा के क्षेत्र से मैकाले द्वारा खड़ी की गई शिक्षा-पद्धति को क्यों नहीं हटाया? कमीशन नियुक्त किए, कमेटियां बनाई, प्रस्ताव पारित किए, शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन की घोषणाएं कीं, किंतु व्यावहारिक धरातल पर प्रचलित शिक्षा पद्धति में आवश्यक परिवर्तन नहीं किया। कारण, भारत की सरकारों ने शिक्षा का महत्त्व आज तक अनुभव किया ही नहीं।

विद्यालयों में छात्रों को अध्यापक वर्ग पढ़ाता है। उनका छात्रों व अभिभावकों से सदैव संबंध होता है। वे छात्रों की पृष्ठभूमि एवं मानसिकता अच्छी तरह समझ सकते हैं। उन्हें अवसर दिया गया होता तो वे प्रयोगात्मक पद्धति से देश के लिए शिक्षा-पद्धति का आविष्कार कर दिखाते। इस दिशा में नेतृत्व ने आज तक नहीं सोचा। जिनका शिक्षा जगत् से न कोई लगाव है न अनुभव, ऐसे लोगों का मंत्रिमंडल शिक्षा-नीति निर्धारित करता है। अध्यापकों को कुली बनकर उसे कार्यान्वित करना पड़ता है। अध्यापकों को मात्र वेतनभोगी वर्ग माना जा रहा है। उनकी वास्तविक महत्ता की किसी को परवाह नहीं है, अतः उनकी भी मानसिकता वेतनभोगियों की ही बन गई है। शिक्षा को राष्ट्र नवरचना का माध्यम मानने के स्थान पर आजीविका का साधन मात्र मानने का तथा विदेशी हुकूमत की नीति के अनुसार चलने का यह दुष्परिणाम है। प्रचलित शिक्षा-पद्धति देश की नई पीढ़ी को आत्मविश्वास एवं स्वावलंबन के स्थान पर परजीवी एवं चाकरी वृत्ति की शिकार बना रही है। परिणामस्वरूप वर्तमान विद्यालय बेकारी, अशांति एवं दिशाहीनता बढ़ानेवाले केंद्र बन गए हैं। इस अवस्था में आवश्यक परिवर्तन न किया गया तो भारत का भविष्य किस आधार पर उज्ज्वल बनेगा?

सामाजिक शिक्षा-पद्धति

हर एक मानव का जीवन समाज से जुड़ा हुआ है। ग्राम, नगर, जिला, प्रदेश एवं देश इसी जुड़ाव के प्रतीक हैं। शिक्षा वही है, जो छात्र-छात्राओं को समाज के प्रति उत्तरदायी बनाए, अतः किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना समाज के प्रत्येक बालक एवं बालिका को समान शिक्षा उपलब्ध कराई जानी चाहिए। सबके लिए समान शिक्षा पर ही राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति एवं समाज का स्वास्थ्य निर्भर करता है। दुर्भाग्य है कि स्वतंत्र भारत में इसके विपरीत कार्य हो रहा है।

देश में अनेक प्रकार के विद्यालय चल रहे हैं। कुछ विद्यालयों में प्रति छात्र प्रति माह तीन हजार रुपए से भी अधिक शिक्षा शुल्क लिया जाता है। कैपिटेशन फीस इसके अतिरिक्त है। ऐसे विद्यालय केवल समृद्ध मां-बाप की संतान के लिए ही हैं। इन विद्यालयों में शिक्षित हुआ व्यक्ति

समाजशास्त्री

समाज के प्रति उत्तरदायी बन ही नहीं सकता। प्रचलित शिक्षा के द्वारा बचपन से ही समाज में विभेद का बीजारोपण किया जा रहा है। महंगी शिक्षावाले विद्यालय चलाने की होड़ लगी हुई है। ये विद्यालय उत्तम शिक्षा के नहीं, तामझाम के आधार पर पर्याप्त कमाई के माध्यम बने हैं। शिक्षा को व्यापार बनाया गया है। छोटे-छोटे नगरों तक ऐसी शैक्षणिक संस्थाओं का जाल फैलता जा रहा है। ऐसे महंगे विद्यालयों में अपनी संतान को पढ़ाना प्रतिष्ठा का विषय बना है। नगरपालिकाओं या जिला परिषदों द्वारा चलाए जा रहे उपेक्षित विद्यालय ही निर्धन लोगों के बच्चों के लिए उपलब्ध हैं। इस प्रकार स्वतंत्र भारत की प्रचलित शिक्षा-व्यवस्था समाज में विभेद एवं अलगाव बढ़ाने का काम कर रही है। इसी कारण शिक्षित युवक-युवतियां समाज के प्रति अपना उत्तरदायित्व अनुभव ही नहीं करतीं। गरीबी में पल रहे छात्रों के प्रति इनके हृदय में कोई स्थान ही नहीं है। साधारणतः धनवान परिवारों के ही बच्चे प्रशासक बनते हैं। यदि हमें राष्ट्र नव-रचना करनी है तो भेदरहित समान शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य है।

नागरिकों की नूतन संतान विभिन्न विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करती है। शिक्षा पानेवाले नन्हे-नन्हे नागरिक अपने-अपने परिवारों के भावी मुखिया तथा समाज के सक्रिय घटक बननेवाले हैं, अतः अभिभावक, अध्यापक तथा सामाजिक कार्यकर्ता नूतन संतान के सर्वांगीण विकास के लिए समान रूप से जिम्मेदार हैं। इन तीनों तत्वों की परस्परपूरकता ही नई पीढ़ी को भविष्य की दृष्टि से सुयोग्य नागरिक बना सकती है। अन्यथा छात्र-छात्राएं दिशाहीन तथा समाज गतिशून्य बनता है। यही हो रहा है।

जीवन-मूल्य अटल

मानव अपने जीवन को अधिक सुखमय बनाने में निरंतर लगा रहता है। परिणामस्वरूप आधुनिक तकनीकी के द्वारा जीवन के लिए आए दिन नए-नए सुविधाजनक साधन उपलब्ध हो रहे हैं। इन साधनों की खोज कहीं भी हुई हो, वे संसार के सभी समाजों में प्रचलित होते हैं। इन नूतन साधनों का असर रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल तथा जीवनदृष्टि पर होता है। यह परिवर्तनशील प्रक्रिया सदैव चलती रहती है। इस परिवर्तनशील प्रक्रिया में अपने परंपरागत जीवन-मूल्य, जो मानव मात्र के अस्तित्व एवं सम्यक् उन्नति के लिए आवश्यक हैं, लुप्त न हों, इसके लिए विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। यह मूलभूत कार्य पारिवारिक एवं विद्यालयीन जीवन से ही प्रारंभ किया जाना चाहिए। कारण, वहां ही नई पीढ़ी आगामी जीवन के पाठ पढ़ती है।

नई पीढ़ी ही सामाजिक नवरचना की अग्रदूत हुआ करती है। उसे ही भविष्य-निर्माण करने की दृष्टि से संवेदनशील, समझदार एवं कर्तृत्ववान बनाना होगा। विश्व में हो रही उथल-पुथल के काल में अध्ययनशील अध्यापक-अध्यापिकाओं से मार्गदर्शन मिलना चाहिए। नई पीढ़ी अप्रत्यक्ष रूप से अपने परिवार में समयानुकूल परिवर्तन का माध्यम बन सकती है। इसके लिए अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों का विशेष योगदान आवश्यक है। अपनी संतान के विकास में गहरी रुचि होने के कारण अभिभावकगण अपने बच्चों के उज्ज्वल भविष्य के लिए पारिवारिक जीवन में

विराट पुरुष

आवश्यक परिवर्तन कर युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में गुरुजनों के सहकारी बन सकते हैं। इस प्रकार नई पीढ़ी के विकास के साथ-साथ युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का कार्य भी संपन्न हो सकता है। इसी से स्पष्ट है कि सामाजिक नवर्चना में अध्यापन में संलग्न महिला-पुरुषों का महत्व राजनेताओं से कई गुना अधिक है, किंतु स्वतंत्र भारत में इस कार्य की महत्ता की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया। अन्यथा देशव्यापी विद्यालय एवं शिक्षक वर्ग राष्ट्र नवनिर्माण के केंद्र सिद्ध होते और देश की आश्चर्यजनक उन्नति हो गई होती। यह कार्य अब देश के युवा वर्ग को करना होगा। इसकी वर्तमान नेतृत्व से अपेक्षा करना मृग मरीचिका के पीछे दौड़ना मात्र होगा।

स्वस्थ वातावरण का निर्माण

स्वस्थ बना रहना मानव जीवन की सार्थकता का आधार है। रोगी मनुष्य अपने व्यक्तिगत काम भी नहीं कर पाता। सामाजिक जीवन होने के कारण उसका स्वास्थ्य पूर्णतः स्वयं पर निर्भर नहीं है। वंश परंपरागत रोग भी उसे आक्रांत करते हैं, अतः पारिवारिक एवं पूरी आबादी का वातावरण स्वास्थ्यवर्धक बनाए रखना व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए भी आवश्यक है। स्वास्थ्य के विषय में विचार करते समय हमें व्यक्तिगत, पारिवारिक तथा सामाजिक स्वास्थ्य का एक साथ विचार करना होगा। कारण, ये तीनों एक-दूसरे से अभिन्न रूप में जुड़े हुए हैं।

प्राचीन काल में प्रत्येक छोटी-बड़ी आबादी वृक्ष, पौधे एवं लताओं से सजी रहती थी। बारहों माह हरे-भरे रहनेवाले वृक्ष, जिनको पतझड़ का अनुभव ही नहीं होता, सूर्य की किरणों के साथ-साथ वातावरण में उपलब्ध नमी पत्तों द्वारा ग्रहण कर अपनी जड़ों तक पहुंचाने का काम करते थे, हर आबादी में रहते थे। परिणामतः जमीन में नमी बनी रहती थी। गरमी में भी कुएं सूखते नहीं थे। इनमें छायादार एवं फलों के वृक्ष सम्मिलित हैं। फलों के अन्य वृक्ष भी होते थे। वे अलग-अलग मौसम में फल उपलब्ध करानेवाले होते थे। इनके अतिरिक्त इमारती लकड़ी प्रदान करनेवाले भी वृक्ष होते थे और कड़वा नीम जैसे औषधीय गुणवाले वृक्ष भी आबादी को घेरे रहते थे। रंग-बिरंगे शोभा और सुगंध प्रदान करनेवाले फूलों के पौधे एवं लौकी, खीरा, कद्दू आदि सब्जियां प्रदान करनेवाली लताएं भी घरों की शोभा बढ़ाती थीं। पूजा के लिए आवश्यक फूलों के लिए लोगों को कहीं जाना नहीं पड़ता था। ये वनस्पतियां जहां मानव की विभिन्न आवश्यकताएं पूर्ण करती थीं, वहां आबादी के निवासियों के लिए सदैव शुद्ध प्राणवायु की भी आपूर्ति करती थीं। हर घर में तुलसी का पौधा स्वास्थ्यरक्षण के लिए विराजमान रहता था।

पचास प्रतिशत बीमारियां अशुद्ध पेयजल का दुष्परिणाम हैं, अतः प्रत्येक आबादी के लिए शुद्ध पेयजल का प्रबंध करना स्वास्थ्य संवर्धन की प्राथमिकता है। जब कभी लोग किसी स्थान पर आबाद हुए होंगे, वहां पेयजल, जो जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है, अवश्य उपलब्ध रहा होगा। यदि अब वहां पेयजल का अभाव हुआ है तो उसके कारणों का पता चलाकर शुद्ध पेयजल की पुनर्व्यवस्था करनी होगी। आबादी के सभी निवासियों को आवश्यक मात्रा में पेयजल उपलब्ध कराना सबका सामूहिक दायित्व है।

समाजशास्त्री

स्वच्छता के बिना व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक स्वास्थ्य संवर्धन संभव नहीं हो सकता। समुचित मार्गदर्शन के अभाव में इस महत्वपूर्ण काम की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाता। अपना व्यक्तित्व अधिक आकर्षक बनाने की लालसा हर एक में होती है, किंतु कृत्रिम आकर्षकता स्वच्छता या स्वास्थ्य का पर्याय नहीं हो सकती। स्वास्थ्यवर्धक स्वच्छता निर्भर करती है—व्यक्ति, परिवार एवं समाज की आदतों पर। वस्तु का उपयोग करना और शेष-निरुपयोगी अंश कहीं भी फेंक देना गंदगी का कारण बनता है। ऐसी आदतें स्वास्थ्य के लिए हानिकर हैं। शरीर की स्वच्छता का ध्यान न रखना भी स्वास्थ्य के लिए प्रतिकूल है। जहां हम रह रहे हैं, वह कमरा हो, घर हो, घर की वस्तुएं हों, अपना घर जिस आबादी में है, वह आबादी हो या उस आबादी का परिसर हो—सदैव स्वच्छ, सुंदर एवं मनोरम बना रहे, इसकी विशेष चिंता एवं व्यवस्था की जानी चाहिए। उस पर सबका शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य निर्भर करता है। स्वास्थ्य संवर्धन व्यक्ति, परिवार एवं आबादी के निवासियों का सामूहिक दायित्व है। इस दिशा में आबादी के विशेष लोगों को अर्थात् युवाओं को पहल करनी होगी।



कौटुंबिक प्रबंधन समाज की मजबूती का आधार

ह र जीव-जंतु स्वातंत्र्य का अभिलाषी है। इनमें मानव का विशेष स्थान है। मानव में विशेषताएं भी अनेक हैं। संवेदनशीलता, स्मरणशक्ति, कल्पना तथा नवनिर्माण क्षमता के कारण सभ्य व्यक्ति की भूख केवल उपभोग तक सीमित नहीं रहती। सबके प्रति अनुराग की भावना उसे वरदान के रूप में मिली है। सामूहिकता उसका स्वभाव है। परस्पर-पूरकता सामूहिकता की अनिवार्यता है। सामाजिक जीवन बिना समुचित प्रबंध सुखदायी नहीं हो सकता, अतः प्रबंध का रूप ऐसा होना चाहिए, जिसमें स्वेच्छा की गुंजाइश न हो, किंतु स्वतंत्रता का हनन भी न हो, अन्यथा प्रबंध अल्पजीवी बनता है। मानवीयता पर आधारित प्रबंध ही इसका एकमेव उपाय है। यह कौटुंबिकता की भावना के आधार पर ही संभव है। वह प्रबंध अमानवीय है, जो संपूर्ण समाज की आवश्यकताओं का विचार न कर कुछ ही लोगों के लाभ को प्राथमिकता देता है। इससे समाज में विषमता बढ़ती है, जो अव्यवस्था एवं अशांति का कारण बनती है।

जीवन की सार्थकता

मानव शरीर मन, बुद्धि एवं आत्मा का एकात्म रूप है। आत्मा द्वारा प्रेरित संवेदनशीलता का अर्थात् शारीरिक प्रक्रियाओं के माध्यम से मानवीयता का व्यावहारिक रूप प्रकट होता है। वस्तुतः शरीर ही मानवीयता का एकमेव वाहक है। उसे आजीवन स्वस्थ बनाए रखने में ही मानव जीवन की सार्थकता है। शारीरिक स्वास्थ्य का आधार आवश्यक मात्रा में उपयुक्त उपभोग सामग्री की उपलब्धि है। यह सामग्री उपलब्ध होती है कृषि एवं औद्योगिक उत्पादन द्वारा। कृषि खाद्य सामग्री उपलब्ध कराती है और उद्योग अन्य आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति करते हैं। कृषि एवं उद्योगों की जननी है प्राकृतिक संपदा। प्राकृतिक संपदा की दृष्टि से अपना देश विश्व में अद्वितीय है।

कश्मीर से कन्याकुमारी तक तथा मणिपुर से कच्छ तक विश्व में उपलब्ध सभी प्रकार की जलवायु अपने देश में विद्यमान है। छोटे-बड़े पर्वतों, अखंड रूप से बहनेवाली नदियों, विविध प्रकार के मनोरम जलप्रपातों, अनेकानेक सरोवरों तथा छोटे-बड़े तालाबों का जाल देश भर

स्वतंत्र भारत की राजनीति राष्ट्र को अवनति के रास्ते पर ले गई। यह सब नानाजी के हृदय को कचोटता रहा। लेकिन सिर्फ आलोचना के स्थान पर उन्होंने उसका व्यावहारिक विकल्प धरातल पर खड़ा किया और फिर उसके बारे में लिखा। स्रोत : डी.आर.आई. दस्तावेज, तिथि अज्ञात।

समाजशास्त्री

में फैला है। आठ हजार किलोमीटर से अधिक लंबा समुद्र का किनारा हमारे पास है। प्रकृति ने हमें बहुमूल्य वनसंपदा प्रदान की है। बहुविध मूल्यवान खनिज द्रव्यों से मां भारती का भूगर्भ संपन्न है। असंख्य प्रकार के पशु-पक्षियों की देश में विपुलता है। सब प्रकार की उपजाऊ कृषि भूमि देश भर में व्याप्त है। विभिन्न प्रकार की फसलों, फलों एवं फूलों की बहार की भरमार है। देश पर तीनों ऋतुओं की कृपा समान रूप से बनी हुई है। असीम सौर ऊर्जा के हम धनी हैं। मानवीयता के विकास की परम सिद्धि की परंपरा हमें विरासत में मिली है। प्रतिभासंपन्न असंख्य युवक-युवतियों से देश समृद्ध है। इतना भाग्यशाली देश धरती पर अन्य नहीं है। इसके बावजूद नवस्वतंत्र भारत की अधिकांश संतानें दुर्दशा से ग्रस्त हैं।

लोकशक्ति की क्षमता

राष्ट्र जीवन में राजसत्ता की महत्ता कम नहीं होती, किंतु उसे ही सर्वस्व मानना भयानक भूल है। राजसत्ता का मूल स्रोत लोकशक्ति है, अतः लोकशक्ति को आधार बनाए बिना राजशक्ति सर्वोपयोगी बन ही नहीं सकती। अपने स्वातंत्र्य संग्राम का काल काफी लंबा रहा है, किंतु सन् 1857 से 1945 तक हुए स्वातंत्र्य संग्राम से भी ज्ञात होगा कि राष्ट्र जीवन की मूलभूत शक्ति का स्रोत क्या है।

स्वातंत्र्य संग्राम में हमारा पाला विश्व साम्राज्य के अधिनायकों से पड़ा था। उन्हीं के चुंगल से हमें अपनी मातृभूमि को मुक्त कराना था। उसके लिए देश की युवाशक्ति ने अपने साहस, पराक्रम एवं बलिदानों की ऐसी पराकाष्ठा दिखलाई थी कि विश्व साम्राज्य के आकाओं को भारत छोड़कर जाने के लिए मजबूर होना पड़ा था। जब भारत स्वतंत्र हुआ था, उस समय भी वही पराक्रमी युवाशक्ति देश में विद्यमान थी। उसी शक्ति के लिए सदियों तक गुलामी में रहे भारत का उत्थान कर दिखाना संभव था। नवस्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने प्रारंभ से ही देश के युवक-युवतियों का आह्वान किया होता तो देश के असंख्य युवक गांव-गांव पहुंचते। ग्रामीण बंधु-बहनों को परस्पर पूरकता एवं स्वावलंबन के आधार पर ग्रामोत्थान के कार्यों में संलग्न करते। देश की सभी आबादियों को खुशहाली की राह पर गतिमान करते।

उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों तथा महाविद्यालयों के अध्यापक-अध्यापिकाओं को अपने-अपने क्षेत्र की आबादियों के सभी निवासियों को साक्षर एवं शिक्षित करने के लिए प्रेरित किया गया होता तो वे अपने छात्र-छात्राओं को साथ लेकर संपूर्ण देश के एक-एक व्यक्ति को साक्षर एवं जानकार बना देते। इससे नई पीढ़ी में देशभक्ति एवं समाज-सेवा की भावना प्रबल होती। स्वातंत्र्य संग्राम के काल की देशभक्ति के आदर्शवादी वातावरण से नवस्वतंत्र भारत सरोबार होता।

देश के सफल किसानों, कृषि विश्वविद्यालयों में पढ़ानेवालों और पढ़नेवालों तथा देश के कृषि वैज्ञानिकों को देश के कृषि विकास में किसानों की सहायता करने के लिए जुटाया जाता तो भारत कृषि उपज में संसार का सिरमौर बनता।

देश के छोटे-बड़े उद्योगपतियों को ग्रामोद्योग विकास के लिए देश का एक-एक अंचल सौंप

विराट पुरुष

दिया जाता तो औद्योगिक विकास की दृष्टि से अपना देश संसार में सर्वाधिक गौरवशाली स्थान प्राप्त करता। देश में उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर सदुपयोग होता। भारत के नेतृत्व को संसार में कुछ भी पाने के लिए हाथ पसारने की जरूरत नहीं पड़ती। अविकसित देशों के विकास में सहायक बनने के काम में योगदान देने की क्षमता भारत में विकसित होती। आर्थिक साम्राज्यवादियों को नवस्वतंत्र देशों का शोषण करने का अवसर ही नहीं मिलता।

दुर्भाग्य है कि नवस्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने देश में उपलब्ध मूलभूत शक्ति की ओर ध्यान ही नहीं दिया, अन्यथा उपर्युक्त विधि से देश के लिए सुयोग्य, सक्षम एवं सेवावृत्ति से प्रेरित राजनेता उपलब्ध होते। अनाचार एवं भ्रष्टाचार पनपने की गुंजाइश ही नहीं रहती।

कभी न भोगने को मिली राजसत्ता की शान के फेर में देश का नेतृत्व अपने देश के असली सामर्थ्य को भुला बैठा है। उसने अंग्रेजों से प्राप्त शासन के ढांचे को ही कायम रखा है। वे समझ ही नहीं पाए कि अंग्रेज शासकों ने अपना मतलब सिद्ध करने के लिए आवश्यक नौकरशाही खड़ी की थी। सदियों तक गुलामी में रहे नवस्वतंत्र भारत का विकास अंग्रेजों द्वारा निर्मित नौकरशाही के माध्यम से संभव नहीं हो सकता, यह समझने की बुद्धिमत्ता नेताओं ने नहीं दिखाई। लोकप्रिय कहे जानेवाले हमारे नेता विदेशी शासकों के समान ही सर्वसामान्य नागरिकों से दूर रहना ही उचित समझते आ रहे हैं। विदेशी शासकों के समान सुरक्षा कवच में उन्हें प्रतिष्ठा अनुभव हो रही है। वस्तुतः यह नवस्वतंत्र देश के विकास के लिए अनुकूल है, न लोकतांत्रिक समाज की उन्नति के लिए ही सहायक है।

जनहित की अनदेखी

शासकीय शान के चक्कर में हमारे नेताओं को सुख-सुविधापूर्ण जीवन की आदत पड़ गई है। संसदीय लोकतंत्र अपनाकर दलीय राजनीति का अवलंबन किया गया है। एक-दूसरे को आम लोगों की नजर में गिराने से अपनी प्रतिष्ठा बढ़ेगी, इस गलतफहमी के वे शिकार हैं। आम लोगों का विकास करने के लिए विभिन्न दल एवं उनके नेता आम सहमति से काम करने को सिद्धांतहीनता मानते हैं, किंतु उन्हीं दलों के विधायकों एवं सांसदों का वेतन तथा भत्ता बढ़ाने के लिए विधानसभाओं एवं लोकसभा में बिना संशोधन सर्वसम्मति से प्रस्ताव पारित कराने में उन्हें संकोच नहीं होता। इससे प्रकट होता है कि तथाकथित राजनेताओं की मूल प्रवृत्ति क्या है? देश के करोड़ों नागरिक भयानक गरीबी के शिकार हैं। इसकी इन जनप्रतिनिधियों को पीड़ा नहीं है। वे सर्वसाधारण नागरिकों की गरीबी दूर करने के बजाय अपनी ही गरीबी मिटा रहे हैं। इसका नौकरशाही पर कितना विपरीत परिणाम हो रहा है, इसकी उन्हें परवाह नहीं है। इसी स्वार्थी वृत्ति के कारण प्रशासन का अनुत्पादक व्यय निरंतर बढ़ रहा है। इस अनुत्पादक व्यय के बोझ से टैक्स देनेवाले नागरिकों का जीना दूभर हो रहा है।

सर्वसाधारण समाज बढ़ती हुई अराजकता का शिकार हो रहा है। हत्या, लूट और बलात्कार की घटनाएं निरंतर बढ़ रही हैं। आम जनता की सुरक्षा में प्रशासन अधिकाधिक अक्षम होता जा रहा है। विदेशी घुसपैठिए देश के अनेक भागों में हिंसा एवं अराजकता फैला रहे हैं। आठ-दस

साल की अबोध बालिकाओं के साथ बलात्कार की घटनाएं आए दिन घटित हो रही हैं। उनकी सुरक्षा की चिंता राजनेताओं को नहीं है। वे स्वयं की सुरक्षा को प्राथमिकता दे रहे हैं। कुछ ही काल के लिए प्रधानमंत्री बने व्यक्तियों के लिए आजीवन की सुरक्षा का विशेष प्रबंध किया गया है। वे भी इसे अनावश्यक कहकर अस्वीकार नहीं करते। सुरक्षा कवच जननेताओं के लिए प्रतिष्ठा का विषय बन गया है। क्या यही व्यवहार स्वतंत्र भारत के लोकप्रिय नेताओं से अपेक्षित था? क्या इस मार्ग से देश के शासन में सुधार संभव है?

अपना देश केवल ऐसे ही राजनेताओं का नहीं है। वह हम सबका है। ऐसी हालत में हमें गैर-राजनीतिक धरातल पर गांव-गांव के समुचित विकास का अभियान छेड़ने की आवश्यकता है। प्राकृतिक संसाधनों में सर्वाधिक समृद्ध अपने देश का विकास कर दिखाने में हमें अपने कर्तृत्व की पराकाष्ठा करने का समय आ गया है। अपनी जवानी, आजादी के लिए न्योछावर करनेवाले बलिदानियों के समान शहीद होने की नहीं, कष्टसाध्य जीवन अपनाकर समाज को उत्तम बनाने के काम में लाने की है।

प्राकृतिक संसाधनों पर खतरे

कृषि एवं उद्योग जनजीवन के आधारभूत तत्व हैं—इसका उल्लेख किया गया है। इन दोनों आधारभूत तत्वों की व्यवस्था करते समय यह ध्यान में रखना होगा कि मानव समाज का जीवन चिरंतन है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अखंड रूप से वह निरंतर चलता ही रहेगा। परिवार नियोजन की सफलता के बावजूद जनसंख्या में प्रतिवर्ष थोड़ी-बहुत वृद्धि होना अवश्यभावी है, किंतु मानव जीवन के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधनों में तदनुसार वृद्धि करनी होगी। उनमें से अधिकांश प्राकृतिक संसाधन पुनर्निर्मित किए जा सकते हैं, किंतु भूगर्भजन्य संसाधन पुनर्जीवित करना संभव नहीं होता। प्रकृति की इस वास्तविकता को समझकर चिरंतनकाल जीवित रहनेवाले मानव समाज के लिए आजीविका का प्रबंध करना ही नियोजन की विशेषता है। मानव जीवन केवल भौतिक माना गया तो मानव मात्र के जीवन को सुखमय बनाना संभव नहीं होगा। मानवीयता की भावना ही परायों के सुख-समाधान के लिए प्रयारत होने की प्रेरक शक्ति है, अतः प्रबंध में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता की सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था सामाजिक जीवन को सुख-शांतिपूर्ण बनाए रखने के लिए अनिवार्य है।

प्राकृतिक संसाधनों की आपूर्ति सदैव बनाए रखने के लिए वनांचल का क्षेत्र देश की कुल भूमि के कम-से-कम 33 प्रतिशत कायम रखना आवश्यक था, किंतु अपने नेतृत्व ने इसके लिए आवश्यक ध्यान नहीं रखा। परिणामस्वरूप वनांचल का क्षेत्र घटते-घटते 11 प्रतिशत से भी कम रह गया है। इस क्रम को न रोका गया तो समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।

विसंगतिपूर्ण जल नीति

दूरदृष्टि के अभाव में सिंचाई के लिए नहरें निकालने के लालच में सीमा का उल्लंघन हुआ

विराट पुरुष

है। परिणामस्वरूप नदियों की गहराई घटी है। वर्षा काल में बाढ़ का पानी चारों ओर फैलकर प्रतिवर्ष फसलों को बरबाद कर रहा है। खेतों में बालू जमा होने लगी है। उपजाऊ भूमि घटती जा रही है। नहरों द्वारा सिंचाई के प्रबंध से जितना लाभ हो रहा है, उतना ही नुकसान बाढ़ के प्रकोप से हो रहा है। यह तथ्य नहरों द्वारा होनेवाली सिंचाई से हुए लाभ को निरर्थक बना देता है। नदियों की बाढ़ प्रति वर्ष आबादियों को भी उजाड़ने का काम कर रही है। इन सब खराबियों के साथ-साथ हजारों एकड़ उपजाऊ भूमि बाढ़ के कारण बेकार हो गई है। इस वस्तुस्थिति के बावजूद इस कार्य में संतुलित प्रयासों को अपनाया नहीं जा रहा है।

देश की नदियां केवल प्रदेशों की सीमा में आबद्ध नहीं हैं। वस्तुतः नदियां राष्ट्रीय संपत्ति हैं, अतः नदियों के जल का प्रबंध सार्वदेशिक व्यवस्था के अंतर्गत सभी क्षेत्रों की आबादियों के हितों को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए, किंतु इसका ध्यान न रखने के कारण प्रांत-प्रांत में अनावश्यक तनाव एवं संघर्ष की स्थिति निर्मित हुई है। इन संघर्षों के कारण मानवीयता आधारित सामंजस्य की संभावनाएं समाप्त होती जा रही हैं। इन गलत प्रबंधों के कारण देश की एकता एवं अखंडता भी संकट में पड़ी है। विकास में लगनेवाली शक्ति का इन घातक बातों में अपव्यय हो रहा है। इसके अतिरिक्त प्रतिवर्ष असंख्य आबादियों के बाढ़ की चपेट में आने से पशु और मानव की हानि हो रही है। एक ओर नहरें खोदने पर अरबों रुपए खर्च किए जा रहे हैं तो दूसरी ओर बाढ़ से हो रही प्रतिवर्ष की तबाही के कारण सरकारों को बाढ़ पीड़ितों की सहायता के लिए अरबों रुपए देने के लिए बाध्य होना पड़ रहा है। क्या इन बातों पर स्वयंभू नेतृत्व कभी विचार करेगा?

परंपरागत जल-प्रबंधन

जल-प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण पहलू है वर्षा से प्राप्त जल के भूगर्भीय जल से मिलन का आवश्यक प्रबंध करना। यह मिलन ही भूगर्भीय जलस्तर को स्थायित्व प्रदान करता है, इसीलिए जल-प्रबंधन की दृष्टि से जल की पुनः पूर्ति के लिए तालाबों, पोखरों और कुओं को माध्यम बनाने की अपनी देश की परंपरा रही है। इस कारण वर्षा का संपूर्ण जल बहकर समुद्र में नहीं जा पाता था। जल प्रबंधन की इस अनुभवसिद्ध पद्धति की उपेक्षा कर बिजली अथवा डीजलचालित नलकूपों को अंधाधुंध तरीके से अपनाया गया है। नलकूप द्वारा सिंचाई की पद्धति पुनः जल की पूर्ति नहीं करती। परिणामस्वरूप गांव-गांव के कुएं सूख गए तथा पेयजल के अभाव से हजारों गांव त्रस्त हैं। नलकूपों को पूर्ण रूप से निरर्थक मानना गलत है। जिन भूभागों को बारहों मास पर्याप्त जल प्रदान करनेवाली अनेक नदियां उपलब्ध हैं, उनमें नलकूपों का प्रयोग किया जा सकता है।

मध्य प्रदेश में भूगर्भीय जलस्तर निरंतर घट रहा है। विंध्याचल परिसर के पहाड़ी क्षेत्र में पेयजल का अत्यधिक अभाव है। दीनदयाल शोध संस्थान ने मध्य प्रदेश के सतना जिले के मझगांव क्षेत्र के पहाड़ी अंचल में वर्षा के जल का समुचित लाभ उठाने का नमूना प्रस्तुत किया है। अभी तक नौ गांवों में जल प्रबंधन का कार्य हुआ है। फलस्वरूप केवल पेयजल की ही विपुलता नहीं हुई, अपितु खेतों की सिंचाई का भी कुछ मात्रा में प्रबंध हुआ है। वृक्षारोपण के कारण बंजर भूमि तथा नंगी

पहाड़ियां हरी-भरी होने लगी हैं। इनमें गांव के लोगों के लिए स्वास्थ्यवर्धक फलों के पेड़ भी बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं। यह कार्य स्थानीय आधार पर जनसहभागिता द्वारा ही हुआ है।

ग्रामीण क्षेत्रों की उपेक्षा

कृषि एवं उद्योगों के लिए आवश्यक प्राकृतिक संसाधन केवल ग्रामीण अंचल से ही उपलब्ध होते हैं। उनके बिना देश की शहरी एवं ग्रामीण आबादी के लिए न खाद्यान्न उपलब्ध हो सकता है, न कारखानों के लिए आवश्यक कच्चा माल ही मिल सकता है। इन प्राकृतिक संसाधनों पर ही राष्ट्र-जीवन का उत्कर्ष निर्भर है। इनकी आपूर्ति कभी घटने न पाए, अपितु जनसंख्या के अनुपात में बढ़ती रहे, इसका ध्यान रखना राष्ट्रोन्नति की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व का कार्य है। अतः विकास प्रबंधन में प्राथमिकता ग्रामीण अंचल को मिलनी चाहिए थी, किंतु देश के नेतृत्व ने इस मूलभूत आवश्यकता की उपेक्षा की है। शहरों को सब प्रकार की सुख-सुविधाओं के साधन उपलब्ध कराने एवं प्रगति के केंद्र के रूप में विकसित करने को ही विशेष महत्त्व दिया जा रहा है। इस कारण प्राकृतिक संसाधनों का स्रोत अर्थात् ग्रामीण अंचल पूर्णतः उपेक्षित पड़ा है। थोड़ा भी पढ़ा-लिखा व्यक्ति गांव में न रहकर शहरों की ओर पलायन कर रहा है। गांवों के विकास के लिए शिक्षित एवं सक्षम युवा वर्ग का अभाव बढ़ रहा है। ऐसी स्थिति में भारत का भविष्य उज्ज्वल बनाने की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधनों की आपूर्ति में प्रगति कैसे हो सकेगी?

परस्पर-पूरकता का अभाव

आजादी पाने के बाद नव स्वतंत्र भारत में जमींदारी प्रथा मिटाकर जोतनेवालों को जमीन का मालिक बनाने का सराहनीय कानून बनाया गया, किंतु बड़े जमींदार पूर्ववत् बहुत बड़ी जोतों के मालिक बने हुए हैं। जोतनेवालों में से जिन लोगों को भूमि मिली भी है तो वह इतनी कम है कि कृषि व्यवसाय की दृष्टि से अलाभकर है। जोत हदबंदी का कानून भी बड़े जमींदारों के लिए ही अधिक फायदेमंद सिद्ध हुआ है। उपर्युक्त तथ्य सिद्ध करते हैं कि सदियों तक गुलामी में रहे नव स्वतंत्र देश में केवल कानून बनाने मात्र से अपेक्षित फल प्राप्त नहीं होता। सर्वसाधारण समाज के घटकों में बिना भेदभाव के एक-दूसरे के प्रति सद्भावना एवं परस्पर पूरकता का व्यवहार विकसित करना आवश्यक है। उसके बिना शासन केवल नौकरशाही के बलबूते सर्वसाधारण नागरिकों को लाभ नहीं पहुंचा सकता। दुर्भाग्य है कि स्वतंत्र भारत में आज तक इस वास्तविकता को समझकर कदम बढ़ाने का विचार भी नहीं किया गया है। केवल सत्ता-संघर्ष में लगे रहने के कारण राजनेता कहलानेवालों में भी आपसी सद्भावना का दर्शन नहीं होता। लोकसभा एवं विधानसभाओं में उपस्थित होनेवाले दृश्य इसके साक्षी हैं। ऐसी स्थिति में सामान्य नागरिकों में परस्पर पूरकता का भाव कैसे पनप सकेगा?

गुलामी के काल में शासक एवं शासन सर्वाधिकार संपन्न होते हैं। उस काल में सामाजिक पहल की गुंजाइश कम होती है। 50 वर्ष पूर्व तक अपना देश बहुत लंबे काल तक गुलामी में

विराट पुरुष

जकड़ा हुआ था। फलस्वरूप आम लोगों में सामाजिक पहल की आदत समाप्त हो गई थी। आजादी मिलने के बाद इसे पुनर्जागृत करने के काम को प्राथमिकता मिलनी चाहिए थी। दुर्भाग्य है कि स्वतंत्र भारत में सामाजिक कार्य करनेवालों ने भी इस मूलभूत आवश्यकता की ओर ध्यान नहीं दिया। वे भी राजसत्ता को ही अधिक महत्व दे रहे हैं। अभी भी राष्ट्र-जीवन के इस महत्वपूर्ण एवं प्राणप्रदाता पहलू की पूर्ण उपेक्षा की जा रही है, इसलिए दीनदयाल शोध संस्थान को इस दिशा में पहल करनी पड़ी है।

औद्योगिक युग के दौरान भी अपने देश की तीन-चौथाई आबादी केवल कृषि पर ही निर्भर है। 76 प्रतिशत से अधिक अलाभकर जोतों के मालिकों की क्रयशक्ति नगण्य सी है। खेत मजदूरों को केवल बुआई और कटाई के दिनों में ही काम मिलता है। यह विषम अवस्था आजाद भारत में भी कायम है। सरकार एक के बाद एक योजना बनाती है। ग्रामीण विकास पर सर्वाधिक बल देने की घोषणाएं करती है, किंतु उपर्युक्त अवस्था में सुधार का व्यावहारिक रूप धरातल पर नजर नहीं आता।

पूंजीवादी कृषि विकास को बढ़ावा

अन्नोत्पादन में आत्मनिर्भरता का लक्ष्य रखा गया था। वह लक्ष्य प्राप्त अवश्य हुआ है, किंतु इस लक्ष्य सिद्धि में देश की कितनी कृषि भूमि योगदान दे पाई है, यह समझे बिना वस्तुस्थिति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कृषि उत्पादन की आय पर सरकार द्वारा टैक्स नहीं लगता। इस कारण पूंजीपति अपना पर्याप्त धन कृषि में लगा रहे हैं। काले धन को सफेद धन बनाने का यह आसान तरीका है। बड़े-बड़े जमींदार और कृषि के नए पूंजीपति मालिक पर्याप्त धन लगाकर यांत्रिक कृषि पद्धति द्वारा उत्पादन बढ़ा रहे हैं। खाद्योत्पादन में आत्मनिर्भरता की यह वास्तविकता है, किंतु देश की लगभग दो-तिहाई कृषि भूमि एवं उसके मालिक गरीब किसान खाद्यान्नों की आत्मनिर्भरता में योगदान करने से वंचित हैं। यदि इन किसानों को भी खाद्यान्न उत्पादन करने की आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हो जाएं तो भारत खाद्यान्नों की दृष्टि से संसार में सर्वश्रेष्ठ स्थान पा सकता है, किंतु आजादी के गत पचास वर्षों में भी इस दिशा में व्यावहारिक कदम बढ़ाने का काम नहीं हो पाया। कारण, देश का नेतृत्व वस्तुस्थिति को समझकर न नीतियों का निर्धारण करता है, न ही व्यावहारिक धरातल पर क्या हो रहा है, इसकी जानकारी ही रखता है।

अलाभकर जोतों को लाभकर बनाना असंभव नहीं है। अपने देश में ढाई एकड़ या ढाई एकड़ से कम जोतवाले परिश्रमशील किसानों के पास देश की दो-तिहाई से अधिक कृषि भूमि है। इन किसानों का उचित मार्गदर्शन करने की कोई व्यवस्था नहीं है। सदियों बाद गुलामी से मुक्त होने के बाद प्राप्त राजसत्ता के मोह ने हमारे नेताओं के संतुलन को बिगाड़ा है। राजसत्ता प्राप्ति का माध्यम बनी है चुनाव प्रक्रिया। चुनाव जीतने के लिए पुरातन प्रभावशाली लोगों का सहयोग पाना राजनेताओं की आवश्यकता हो गई है। गुलामी के काल में वे ही लोग प्रभावी थे, जो धनी-मानी, बड़े-बड़े जमींदार और राय बहादुर तथा खान बहादुर हुआ करते थे। सत्ता-प्राप्ति की होड़ में

इन्हीं लोगों के प्रभाव का उपयोग करना वर्तमान राजनेताओं की मजबूरी हो गई है। फलस्वरूप शासन और प्रशासन में इन्हीं परंपरागत धनी-मानी जमींदार लोगों का बोलबाला है। ऐसी स्थिति में गरीब किसानों की हालत कैसे सुधरती?

जैविक खेती सर्वोत्तम

दीनदयाल शोध संस्थान ने उपर्युक्त पृष्ठभूमि को अनुभव कर व्यावहारिक धरातल पर कृषि विकास का कार्य हाथ में लिया है। वर्तमानकालीन संपन्न देशों की कृषि प्रबंधन की पद्धति दूरदृष्टि के अनुसार लाभदायक नहीं है। इसका अनुभव गत कुछ सालों से समृद्ध हुए देश स्वयं करने लगे हैं। अमरीका और यूरोप के देशों में वहां के नागरिकों ने अनुभव किया है कि उनकी कृषि पद्धति वैज्ञानिक नहीं है। कुछ ही दशकों में उन्हें लगने लगा है कि फसलों का विकास रासायनिक प्रक्रिया न होकर जैविक प्रक्रिया है। कृषि भूमि भी केवल रासायनिक तत्व नहीं है, अपितु मूलतः जैविक तत्व है, अतः फसलों को उगाने में कृषि भूमि की जो उपजाऊ शक्ति खर्च होती है, उसकी पूर्ति जैविक खादों के द्वारा करना ही कृषि की वैज्ञानिक विधि है। केवल रासायनिक खादों का प्रयोग करते रहने से धीरे-धीरे कृषि भूमि की उपजाऊ शक्ति घटकर अंततोगत्वा वह बंजर बन जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि रासायनिक खादों का कोई उपयोग ही नहीं है। अपने देश की जगह-जगह की भूमि में कुछ आवश्यक तत्वों का अभाव हो सकता है। उसकी पूर्ति यदि जैविक खाद से नहीं होती तो वहां रासायनिक खाद का सीमित मात्रा में उपयोग करना लाभकारक हो सकता है।

रासायनिक खादों के प्रयोग से फसलों में तात्कालिक वृद्धि होने के साथ ही विभिन्न प्रकार के रोगों की बढ़ोतरी होती है। इन रोगों से फसलों को बचाने के लिए जहरीली दवाओं का छिड़काव करना अनिवार्य हो जाता है। इसके दुष्परिणाम रासायनिक खादों से उत्पन्न खाद्यान्नों का सेवन करनेवालों को भी भुगतने पड़ते हैं, अतः इन नव संपन्न देशों के नागरिक जैविक खादों के माध्यम से उगाए गए अनाज, साग-सब्जियां तथा फलों का सेवन करना अधिक पसंद करने लगे हैं। इसी से स्पष्ट हो रहा है कि तथाकथित प्रगतिशील कृषि-पद्धति न कृषि भूमि के लिए लाभदायक है, न मानव के लिए, किंतु अपने देश के नेतागण उपर्युक्त अनुभवों से लाभ उठाने की मनःस्थिति में दिखाई नहीं देते।

वैज्ञानिक दृष्टि से यह भी सिद्ध हुआ है कि कृषि भूमि को जोतते समय नौ इंच से अधिक गहरी जमीन सूरज की रोशनी से बचाई जानी चाहिए। कारण, नौ इंच से अधिक गहराई में कृषि भूमि को पोषक तत्व उपलब्ध करानेवाले जीव-जंतु विद्यमान रहते हैं। वे सूरज की रोशनी सह नहीं पाते, अतः ट्रैक्टर के माध्यम से खेत को जोतना हानिकारक माना जा रहा है। कारण, ट्रैक्टर 14-15 इंच गहरी कृषि भूमि को पलटकर सूरज की रोशनी में ला देता है। इससे कृषि भूमि के प्राकृतिक पोषक तत्व, जो जैविक होते हैं, नष्ट हो जाते हैं। कृषि भूमि को जोतने के लिए भारतीय हल सर्वाधिक वैज्ञानिक उपकरण है। दुर्भाग्य की बात है कि विकसित कहे जानेवाले देश अपने

विराट् पुरुष

अनुभवों के आधार पर जिन बातों को हानिकर समझकर छोड़ रहे हैं, उन्हें अपने नेतागण प्रगतिशीलता के नाम पर अपना रहे हैं।

स्वतंत्रता का आभास हो

समय की आवश्यकता है कि भारत के नागरिक अपने देश को स्वतंत्र मानकर कदम बढ़ाएं, दुनिया भर के अनुभवों का भंडार हमारे लिए उपलब्ध है। उनका लाभ उठाकर हमें भारतीय नवयुग का शुभारंभ करना चाहिए।

केवल ढाई-तीन सौ साल आयु की सभ्यतावाले देशों से प्रभावित नेतृत्व तथा अंग्रेजों द्वारा थोपी गई शासन प्रणाली चलानेवाले प्रशासन से देश के सामान्य नागरिकों के हितों का संरक्षण एवं विकास संभव नहीं है। जनहितकारी कानूनों का व्यवहार भी संभव दिखाई नहीं देता और न ही आंदोलनों के माध्यम से सकारात्मक कदम उठ पाते हैं, अतः जनसामान्य के कर्तृत्व के आधार पर ही जनसामान्य के हित साधन का प्रयास करना समय की आवश्यकता है।

उपर्युक्त तथ्य के अनुसार व्यवहार करना सरल नहीं है। अपनाई गई चुनाव प्रक्रिया आबादियों में विघटन बढ़ा रही है। इतना ही नहीं, दलगत स्वार्थ समाज में परस्पर विद्वेष एवं टकराव का कारण बन रहा है। इस वस्तुस्थिति के होते हुए भी भारत के भविष्य के लिए आवश्यक कार्य करना देशभक्ति की मांग है। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट में कार्य प्रारंभ किया है।

गत 50 वर्षों के कटु अनुभवों के कारण सर्वसाधारण समाज के घटक प्रचलित प्रशासन एवं शासन से निराश हैं। राजनीतिक नेतृत्व से वे ऊब गए हैं। गए सिर से उन्नति का मार्ग अपनाने के लिए समाज के सर्वसाधारण नागरिकों में अनुकूलता है। इस परिस्थिति में दीनदयाल शोध संस्थान उज्ज्वल भविष्य के निर्माण की विधियां विकसित करने में संलग्न है।

अपने नागरिक छोटी-बड़ी आबादियों के रूप में रह रहे हैं। आबादियों के निवासियों की परस्पर पूरकता के सहारे ही साधारण नागरिकों को खुशहाली प्राप्त हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्र में अधिकांश ग्रामवासियों की आजीविका कृषि कार्य पर निर्भर है, किंतु हर आबादी के ज्यादातर किसान अलाभकर जोतवाले हैं। इन अलाभकर जोतों को लाभकर बनाने के लिए सभी गरीब किसान उत्सुक हैं। दीनदयाल शोध संस्थान का लक्ष्य भी यही है। इस लक्ष्य सिद्धि के लिए किसी से संघर्ष किए बिना अलाभकर जोतवालों में परस्पर पूरकता का जीवन विकसित करना अधिक कठिन भी नहीं है। अलाभकर जोतवाले किसानों के पास पूंजी का अभाव है। उनके पास केवल दिन-रात परिश्रम करने की ही पूंजी है। दीनदयाल शोध संस्थान ने इसी पूंजी को विकास का प्रमुख आधार बनाया है। ये अलाभकर जोतवाले किसान अपनी खेती अत्यधिक महंगे यंत्रों के आधार पर करने में सर्वथा असमर्थ हैं। यह असमर्थता ही कृषि के विकास का वैज्ञानिक आधार है।

कृषि उपज के लिए सर्वाधिक आवश्यकता है खाद की। बिना खाद के भूमि से प्रति वर्ष अच्छी

समाजशास्त्री

फसल लेना संभव नहीं होता। रासायनिक खाद खरीदने के लिए इन गरीबों के पास आवश्यक धन नहीं होता। वस्तुतः कृषि उन्नति के लिए इस कठिनाई को अनुकूलता में बदला जा सकता है। अपने खेत के लिए सर्वोपयुक्त खाद तैयार करना गरीब किसान के लिए भी संभव है। गोबर, चारों ओर उपलब्ध पतझड़ के पत्ते, बेकार पड़ा हुआ कचरा आदि मिलाकर यह खाद बनाई जा सकती है। इन गरीब और बेपढ़े किसानों को यह तरीका बतानेवाला कोई नहीं है। बिना पूंजी लगाए केंचुए से खाद प्राप्त करने की बात भी उन्हें कोई समझाता नहीं है। इन सब बातों में दीनदयाल शोध संस्थान इन गरीब किसानों का साथी रहा है।

खेती के आधुनिकीकरण के नाम पर यंत्रों द्वारा खेती को प्रोत्साहित किया जा रहा है। बड़े-बड़े किसान संपन्न होने के कारण अपनी कृषि को यंत्र आधारित बनाए हुए हैं। वे अब कम-से-कम मजदूर रखकर अपनी खेती कर रहे हैं। खेत मजदूर बेकार होकर शहरों की गंदी बस्तियों का विस्तार कर रहे हैं। इन प्रगतिशील किसानों ने खेती से मजदूरों को ही नहीं, बैलों को भी हटाया है, अतः ये बड़े-बड़े किसान गोबर द्वारा उपलब्ध जैविक खादों से वंचित हैं। वे रासायनिक खादों का प्रयोग कर रहे हैं। वर्तमान राजकीय नेतृत्व इसी कृषि पद्धति को प्रगतिशील मानकर इसे प्रोत्साहित कर रहा है। वस्तुतः यह प्रगतिशीलता कृषि भूमि को अंततोगत्वा बंजर बनानेवाली है। राष्ट्र की इस स्थायी हानि को समझने की मानसिकता वर्तमान नीति-निर्धारकों में दिखाई नहीं देती। दीनदयाल शोध संस्थान ने अलाभकर जोतवाले गरीब किसानों के माध्यम से कृषि उत्पादन के लिए जैविक खाद का उपयोग बढ़ाना प्रारंभ किया है।

उपयोगी गो-पालन

पश्चिमी देशों में गाय का महत्व केवल दूध व मांस देनेवाले प्राणी के रूप में माना जाता है। यह धारणा भारतीय परंपरा के अनुकूल नहीं है। भारत में गाय को कामधेनु मानकर उसे समृद्धि का आधार मानने की अर्थपूर्ण परंपरा रही है। आधुनिक काल की विदेश प्रभावित मानसिकता के कारण गाय के प्रति हमारी परंपरागत धारणा मिट गई है। हम भी गाय को दूध देनेवाला एक प्राणी मात्र समझने लगे हैं। इस कारण हम उसी गाय को पसंद कर रहे हैं, जो अधिकतम दूध दे सकती है। इसलिए अपनी देशी गायों को संकरित करने का अभियान चला रखा है। दीनदयाल शोध संस्थान का अनुभव है। देशी गाय गरीब किसानों के लिए वरदान सिद्ध होती है, किंतु इस महत्वपूर्ण कार्य की ओर स्वतंत्र भारत की सरकार ने ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा।

दीनदयाल शोध संस्थान ने गत 21 वर्षों में इस दिशा में काम कर यह सिद्ध किया है कि ऐसी देशी गायों का विकास संभव है। इसके अतिरिक्त वृद्धावस्था में दूध न देनेवाली गाय भी घाटे का कारण नहीं बनती। प्रत्येक गाय प्रतिदिन चौदह-पंद्रह किलोग्राम तक गोबर देती है। इस गोबर से जो खाद बनती है, उसकी कीमत जितना चारा बूढ़ी गाय खाती है, उससे कई गुना अधिक मिलती है। इतना ही नहीं, बूढ़ी गायों के गोबर में नाइट्रोजन की मात्रा अधिक होती है, जो जमीन

विराट पुरुष

को उपजाऊ बनाने के लिए अधिक परिणामजनक है। मरणोपरांत भी गाय के चमड़े, खुर, सींग, आंतों, हड्डी आदि से भी अतिरिक्त आय होती है।

आत्मनिर्भरता से सफलता

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा स्वयंसेवी संस्था के नाते दीनदयाल शोध संस्थान को चित्रकूट प्रकल्प के अंतर्गत बांदा तथा सतना जिलों के लिए एक-एक कृषि विज्ञान केंद्र का संचालन करने का सुअवसर मिला है।

जिले के किसानों को वैज्ञानिक उपायों से उन्नत कृषि का प्रशिक्षण देने का दायित्व निभाना कृषि विज्ञान केंद्रों का काम है। सतना जिले में दीनदयाल शोध संस्थान ने मझगावां को कृषि विज्ञान केंद्र का मुख्यालय बनाया है। बांदा जिले के कृषि विज्ञान केंद्र का मुख्यालय गनीवां ग्राम में है। चित्रकूट प्रकल्प के अंतर्गत दोनों जिलों में व्यापक स्तर पर कृषि विकास का कार्य किया जा रहा है। अलाभकर जोतवाले किसानों की खेती लाभकर बनाने पर विशेष बल दिया जा रहा है।

गरीब किसान परंपरा के अनुसार केवल अनाज उत्पादन करने की कला से ही अवगत है। उस कला को भी वह अधिक उत्पादक बना नहीं पाता। कारण, जमीन की उर्वरा शक्ति बढ़ाने के लिए आवश्यक जैविक खाद की मात्रा बढ़ाने का तरीका उसको ज्ञात नहीं है। डेढ़-दो एकड़ भूमि का किसान भी अपने परिवार के लिए आवश्यक खाद्यान्नों का उत्पादन करते हुए एक-चौथाई एकड़ में मसाले, वनौषधि या साग-सब्जी उगाकर अतिरिक्त धन कमाने में सक्षम बन सकता है। इस दिशा में उनकी क्षमता बढ़ाने का काम किया जा रहा है। लोकतंत्र की सफलता का मर्म है-समाज के अधिकांश घटकों का आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर बनना। प्रचलित तकनीकी प्रगति अधिकांश नागरिकों को परनिर्भर बनाकर आर्थिक क्षेत्र में कुछ ही लोगों का एकाधिकार बढ़ा रही है। लोकतंत्र की सफलता के लिए यह दिशा सर्वथा प्रतिकूल है।

नूतन उद्योगनीति की कमी

कृषि उपज का कार्य संपूर्ण समाज के उदर-भरण के लिए प्रारंभ हुआ था, न कि व्यक्तिगत लाभ के लिए। उसी प्रकार उद्योग भी पूरे समाज की आवश्यकता पूर्ति के लिए ही प्रारंभ हुए थे। दुर्भाग्य से इस मूलभूत सामाजिक भावना का लोप हो गया है। अब तो उद्योग व्यक्तिगत समृद्धि के माध्यम बने हैं। उद्योगपतियों का एक अलग से अति संपन्न वर्ग निर्मित हुआ है, जो एकाधिकार की दिशा में बढ़ रहा है।

उद्योगपतियों की इस प्रवृत्ति के विरोध में ही प्रतिक्रिया के स्वरूप ट्रेड यूनियन ने जन्म लिया था, परंतु सर्वसाधारण नागरिकों के हितों की परवाह उद्योगपतियों के समान ही ट्रेड यूनियनों के नेताओं को भी नहीं है। वे भी अधिकाधिक आर्थिक लाभ के लिए सामाजिक जीवन की परेशानी बढ़ाते रहते हैं। ट्रेड यूनियनों की मानसिकता ऐसी बन गई है कि वे अपने आर्थिक लाभ के लिए उद्योगपतियों के समान ही समाज के हित-अहित को नजरअंदाज कर रहे हैं। असंगठित मजदूरों

की भी अधिकाधिक बिगड़ती हालत की उन्हें परवाह नहीं है। संगठित मजदूर वर्ग का ही स्वार्थ साधन करा देना ट्रेड यूनियनों का धंधा बन गया है।

मानव मात्र की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं सुख-सुविधाओं की व्यवस्था के लिए अस्तित्व में आए उद्योगों के तीन परस्पर पूरक एवं अभिन्न अंग हैं। ये हैं—पूंजी, व्यवस्था तथा कुशल परिश्रम। उद्योगों की सफलता तथा समाज की समृद्धि इन तीन अंगों की परस्पर पूरकता पर निर्भर है। भारत में पुरातन काल में साधारणतः उद्योग पारिवारिक इकाई के रूप में प्रचलित थे, अतः पूंजी, व्यवस्था एवं परिश्रम स्वाभाविक रूप में परस्पर पूरक रहे। नूतन उद्योगों में भी वही नीति विकसित की जानी चाहिए थी। इस वस्तुस्थिति को न समझते हुए उद्योगपति, ट्रेड यूनियन नेतृत्व एवं राजनेता वर्ग-संघर्ष की असामाजिक दिशा पर ही अड़े हुए हैं।

संवेदनशील हो अधिष्ठान

मानव विश्व का श्रेष्ठतम प्राणी है। संवेदनशीलता एवं सृजनशीलता उसकी विशेषताएं हैं। उपभोग उसके जीवन की आवश्यकता है, लक्ष्य नहीं। परपीड़ा से उसकी आत्मा व्यथित होती है तथा परायणों की पीड़ा दूर कर वह सुख एवं संतोष पाती है। इन जन्मजात क्षमताओं के कारण ही मानव चर-अचर के लिए उपकारक बन सकता है। उपर्युक्त विशेषताओं को व्यावहारिक जीवन में चरितार्थ करने के लिए मानव को जीवन के प्रारंभ से ही सुसंस्कार एवं सुशिक्षा की आवश्यकता होती है। उनके अभाव में उसका जीवन अन्य प्राणियों के समान केवल आहार, निद्रा, भय एवं मैथुन तक सीमित रह जाता है। उसकी संवेदनशीलता विकसित नहीं होती। मानव का अपनी वासनाओं एवं संवेदनाओं में संतुलन बनाए रखना सामाजिक, कौटुंबिक एवं व्यक्तिगत जीवन की उन्नति के लिए भी आवश्यक है।

सामाजिक-आर्थिक विषमता बढ़ी

प्रचलित औद्योगिक तथा तकनीकी प्रगति के कारण मानव अधिकाधिक समस्याग्रस्त हो रहा है। समाज में आर्थिक विषमता बढ़ रही है। बेकारी बेकाबू हो रही है। प्रदूषण पर्यावरण को बिगाड़ रहा है। अमानवीय विषमता अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जैसे बढ़ रही है, उसी प्रकार वह विभिन्न देशों के अंतर्गत भी बढ़ रही है। देश का एक अंचल औद्योगीकरण से पर्याप्त विकसित है तो दूसरा एकदम पिछड़ा पड़ा है। यह सुख-शांतिपूर्ण विकास का मार्ग नहीं है।

अपने देश में विभिन्न अंचलों में विषमता की खाई बढ़ रही है। इस क्षेत्रीय विषमता के लिए प्राकृतिक संसाधनों के अभाव को कारण बताना पूर्ण सत्य नहीं है। किसी भी प्रकार के प्राकृतिक संसाधन से वंचित क्षेत्र पाना दुर्लभ है। वस्तुतः यह जीवन-दृष्टि का दोष है। विकृत दृष्टि ही सामाजिक एवं आर्थिक विषमता की जड़ है। यदि मानव की जीवन-दृष्टि मानवीयतापूर्ण हो तो देश के एक अंचल में संपन्नता एवं दूसरे में विपन्नता देखने को नहीं मिलेगी। असामाजिक जीवन-दृष्टि के कारण ही हर छोटी-बड़ी आबादी में सामाजिक एवं

विराट् पुरुष

आर्थिक विषमता की विभीषिका बढ़ती ही जा रही है। अपने देश में गत पचास साल के तथाकथित योजनाबद्ध विकास के बावजूद यह दुर्दशा है। सामाजिक जीवन-दृष्टि के अभाव का यह दुष्परिणाम है।

जो देश औद्योगिक एवं तकनीकी विकास के शिखर पर पहुंचे हैं, उनमें भी अमानवीय वृत्ति के कारण विकट समस्याओं ने अपनी जड़ें जमाई हैं। आर्थिक विषमता की खाई उन देशों में भी चौड़ी होती जा रही है। बेकारी का प्रकोप चिंता का कारण बन रहा है। प्रदूषण का संकट विकराल रूप ले रहा है। प्रचलित समस्याग्रस्त औद्योगीकरण का विकल्प खोजने के स्थान पर वहां का नेतृत्व समृद्धि की प्रतिस्पर्धा में संलग्न है। अपनी समृद्धि के लिए अविकसित देशों का शोषण करने में उन्हें किसी भी प्रकार का संकोच नहीं होता।

वैकल्पिक खोज जरूरी

नवस्वतंत्र देशों के लिए तथाकथित विकसित देशों की समस्यामूलक औद्योगीकरण की पद्धति अपनाना सब प्रकार से अहितकर है। ऐसे देशों को अपनी वस्तुस्थिति के अनुसार अपनी आवश्यकताओं एवं प्रतिभा के आधार पर अपने विकास के लिए वैकल्पिक तकनीकी एवं औद्योगिक विधियों की खोज करनी होगी। उसका आधार होना चाहिए मानवीयता।

मानवीयता का स्रोत है आत्मा प्रणीत संवेदनशीलता। वही मानव को सहअस्तित्व की प्रेरणा प्रदान करती है। सहअस्तित्व ही मानव मात्र की सुख-शांति एवं समृद्धि का आधार है। संसार में जीव-जंतु, नदी-नाले, पेड़-पर्वत आदि हजारों सालों से साथ-साथ रहते आए हैं। मानव भी उन्हीं में से एक है। निसर्ग निर्मित तत्त्व मूलतः परस्पर पूरक है। इसकी अनुभूति करने की क्षमता मानव में ही है, अतः मानव का कर्तव्य है कि वह अपने अस्तित्व के लिए अन्यो के उत्पीड़न का कारण न बने। अपनी संवेदनशीलता पर आधारित सृजनशक्ति का सदुपयोग अपने साथ-साथ सभी के लिए सुख-सुविधाएं उपलब्ध कराने में करे। यही मानवीयता है। वैकल्पिक औद्योगिक नवरचना इसी आधार पर करनी होगी।

ग्रामवासियों का उदर-भरण कृषि द्वारा होता है। शहरों में खाद्यान्न का उत्पादन नहीं होता। शहरी आबादी के उदर-भरण का दायित्व ग्रामवासियों को ही निभाना पड़ता है। जिन पर देश की संपूर्ण आबादी के उदर-भरण का भार है, उनके विकास की चिंता एवं व्यवस्था करना नेतृत्व का प्राथमिक दायित्व था, किंतु आजादी के गत पचास सालों में इस मूलभूत आवश्यकता की भयानक उपेक्षा होती आ रही है। उसके दुष्परिणाम देश भुगत रहा है। जहां कहीं आधुनिक प्रकार के उद्योग अस्तित्व में आते हैं, वहां की आबादी शहर का रूप ले लेती है। इन उद्योगों का अस्तित्व पूर्णतः ग्रामीण अंचल से प्राप्त वस्तुओं (कच्चे माल) पर निर्भर होता है अर्थात् मानव मात्र के उत्कर्ष का स्रोत ग्रामीण अंचल ही है। उसे सदैव समृद्ध एवं उन्नतशील बनाए रखना मानव मात्र के विकास की अनिवार्यता है। इस तथ्य की अवहेलना ही सब प्रकार के अभावों की जननी है।

लघु-कुटीर उद्योग को बढ़ावा मिले

उपर्युक्त स्थिति इस बात को स्पष्ट करती है कि औद्योगिक उत्पादन के कार्य कुछ ही स्थानों पर केंद्रित करना हितावह नहीं है। उसी से विषमता बढ़ रही है। सर्वसाधारण लोगों के उपयोग की वस्तुओं का उत्पादन स्थानीय आधार पर करना अधिक सरल तथा कम खर्चीला है। जब कच्चा माल ग्रामीण अंचल से ही उपलब्ध होता है तो कच्चे माल को तैयार माल के रूप में रूपांतरित करने की प्रक्रिया साधारणतः ग्रामीण अंचल में ही करना विषमता रहित, सहयोगात्मक एवं सुखदायी भविष्य के लिए आवश्यक है। इसी से ग्रामीण अंचल अधिक समृद्ध होगा। कच्चे माल की आपूर्ति बढ़ाने में ग्रामीणों को प्रोत्साहन मिलेगा। जिस अंचल में जो कच्चा माल उपलब्ध है, उसका तैयार माल के रूप में रूपांतरण उसी क्षेत्र में करने से वहां के युवा वर्ग को पर्याप्त स्वरोजगार मिलेगा। ग्राम समृद्ध होंगे। क्षेत्रीय विषमता घटेगी। शहरों में गंदी बस्तियों का बढ़ना रुकेगा। बेकारी के दानव का दमन होगा। ग्राम और शहर परस्पर पूरक बनेंगे। देशवासी तनाव रहित होकर सुख-समृद्धि का जीवन जी सकेंगे। निरंतर विकास का मार्ग प्रशस्त होगा।

स्वरोजगार से मिटेगी बेकारी

मानव मात्र की प्रगति के लिए उत्पादन की उपर्युक्त विधि अपनाना सर्वहितकारी है। उपभोग मानव की अनिवार्यता है, अतः शारीरिक दृष्टि से सक्षम महिला-पुरुष कम-से-कम उतने मूल्य का उत्पादन अवश्य करें, जितनी मात्रा में वे उपभोग करते हैं। प्रचलित औद्योगिक रचना में उत्पादन करनेवाले हाथ तेजी से घटाए जा रहे हैं, जबकि खानेवालों की संख्या बढ़ रही है। ऐसी हालत में न बेकारी मिटेगी, न गरीबी घटेगी। नौकरियों द्वारा इस समस्या का निराकरण कदापि संभव नहीं है। नौकरियों की संभावना एक सीमा से अधिक न होती है, न होनी चाहिए, अतः अधिकांश नागरिकों के लिए स्वरोजगार उपलब्ध करानेवाला औद्योगीकरण ही विश्वव्यापी समस्याओं का उपाय है।



सामाजिक भाव बचपन में अंकुरित हो

भारत स्वतंत्र हुआ है। शासन सूत्र अपने हाथ में आ गए हैं। उसके बाद भी 37 वर्षों का काल बीत गया है, किंतु स्वातंत्र्य युद्ध के हुतात्माओं के हृदय में स्वतंत्र भारत की जो प्रतिमा थी, वह साकार होने की संभावना अभी भी दिखाई नहीं देती।

अपना शासन, चाहे वह केंद्रीय हो या प्रादेशिक, महानगरपालिका हो या नगरपालिका का, जिला परिषद् का हो या ग्राम पंचायत का, असफल सिद्ध हो रहा है। सार्वजनिक, सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं की गतिविधियां भी निराशाजनक ही हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि भारतीय मानव अन्य उन्नत देशों के मानवों से कम सक्षम है। व्यक्तिशः देखा गया तो भारतीय मानव सभी बातों में संसार के सभी देशों के मानवों से कम सक्षम नहीं है। उसकी क्षमता स्वयं की समृद्धि, प्रतिष्ठा व अपने परिवार के उत्कर्ष के लिए ही काम आती है। शासकीय या सामाजिक व्यवस्थाओं में वह प्रगट नहीं होती। ऐसा क्यों? इसकी खोज कर उपयुक्त उपाय योजना करना आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

मानव अकेला नहीं रह सकता। वह परिवार में जन्म पाता है। उसी में उसका पालन-पोषण होता है। उसी में वह बढ़ता तथा बड़ा होता है। वह अपने परिवार का सहज में ही अभिन्न अंग बन जाता है। वह अपने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के सुख-दुःख के साथ समरस रहता है। अपने परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के हित के लिए वह जीवन भर खपता है। उसकी एवं उसके परिवार की उन्नति या अवनति अलग-अलग नहीं रहती। अपने परिवार-पद्धति में यही एक भावना जम गई है। फलस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने चारों ओर फैली हुई हर बात में से अपने परिवार के लिए किस प्रकार लाभ उठाया जा सकता है, इसी एक चिंता में लगा रहता है। परिवार में प्रचलित यह प्रवृत्ति सामाजिक जीवन के लिए लाभदायक नहीं है। इसी कारण आज साधारणतः कोई भी व्यक्ति सामाजिक हित की दृष्टि से प्रतिकूल सिद्ध हो रहा है। व्यक्ति चाहे जितनी बड़ी सामाजिक जिम्मेदारी की जगह पर पहुंच जाए, प्रचलित पारिवारिक संस्कारों के कारण वह उस अधिकार पद का फायदा अपने परिवार के हित के लिए ही उठाता है। अपना अधिकार पद

नागपुर प्रकल्प की रूपरेखा। सर्वांगीण बाल विकास पर नानाजी का दर्शन, गांधी जयंती, 2 अक्टूबर, 1980 को नागपुर में बाल जगत प्रकल्प के रूप में जीवंत हो उठा। सामाजिक पुनर्रचना के कार्य, विशेषतः गरीब एवं उपेक्षित वर्ग तक पहुंचे, इस उद्देश्य से नागपुर प्रकल्प के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं।

समाजशास्त्री

अपने लिए नहीं, सामाजिक हित के लिए है, इस महत्वपूर्ण पहलू को वह सहज में ही भूल जाता है। परिणामस्वरूप अपने सामाजिक जीवन की स्थिति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक बिगड़ती जा रही है। यदि प्रत्येक व्यक्ति और परिवार अन्य समाज घटकों की परवाह किए बिना अपने लिए ही सबकुछ बटोरता रहेगा तो समाज जीवन में सुख समाधान के दिन आना संभव नहीं है। इस प्रचलित प्रवृत्ति के कारण अपने समाज में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की अन्यायपूर्ण प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। प्रशासन में वृद्धिगत अव्यवस्था व अराजकता इसी का दुष्परिणाम है। फलस्वरूप सत्तारूढ़, बलशाली व संपन्न परिवारों को छोड़कर समाज के अधिकांश लोग अनेक प्रकार के अन्यायों के शिकार बन रहे हैं। आत्मकेंद्रित पारिवारिक संस्कारों में पला हुआ व्यक्ति विधायक बने या सांसद, मंत्री बने या मुख्यमंत्री अथवा प्रधानमंत्री, उसकी जीवन-दृष्टि का दायरा उसके पारिवारिक दायरे से आगे नहीं बढ़ता। यह संकुचित प्रवृत्ति केवल समाज, शासन या देश के लिए ही घातक नहीं बन रही है, अपितु हर परिवार एवं व्यक्ति के लिए भी उतनी ही कष्टदायक सिद्ध हो रही है। विशेष चिंता का विषय है कि यह बात अपने समाज के बुद्धिवादी कहलानेवालों के भी ध्यान में नहीं आती।

समाज-रचना की ऋषि-दृष्टि

जिस प्रकार एक व्यक्ति अकेला नहीं रहता, वह अपने परिवार में जीता है। उसी प्रकार एक परिवार भी अकेला नहीं रह सकता। संपूर्ण संसार में खोज करने पर हमें एक भी गांव ऐसा नहीं मिलेगा, जिसमें केवल एक ही परिवार हो। छोटे से छोटा गांव भी पांच-दस परिवारों का मिलकर बना हुआ होता है। कारण, मानव मूलतः सामाजिक जीव है। वह केवल हड्डी और मांस की गठरी नहीं है। आहार, निद्रा, भय व मैथुन के आधीन रह पानेवाला वासनाओं का समूह मात्र नहीं है। उसमें भावनाएं हैं। उसमें जन्मजात संवेदनशीलता है। शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को मिलाकर वह सर्व प्राणियों में श्रेष्ठ एक अद्वितीय एवं एकात्म व्यक्तित्व है। वह अकेला रहकर उपर्युक्त चारों बातों में समाधान प्राप्त नहीं कर सकता। अतः स्वभाववश वह समूह बनाकर रहता है।

मानव के इस मूलभूत स्वभाव को समझकर सामाजिक जीवन सुख तथा समाधान से परिपूर्ण बने, इसलिए अपने पुरातन ऋषि-मुनियों ने मनोविज्ञान के एवं प्रयोगात्मक अनुभवों के आधार पर सामाजिक जीवन की संरचना खड़ी की थी। उस रचना में परिवार को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान दिया गया था। मानव के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में परस्पर सद्भावना, विश्वास एवं सहयोग की भावना सदैव कायम रखने का दायित्व परिवार को सौंपा गया था। परिवार को सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई माना था। सामाजिक जीवन की सफलता का यही मर्म है। परिवार के संबंध की यह शुद्ध एवं अनुभव सिद्ध धारणा, जिसमें मानव का सर्वांगीण विकास एवं समाज का उत्कर्ष संभव है, गुलामी के सैकड़ों सालों के काल में, लोप हो गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस मूलभूत अवधारणा की ओर सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक ध्यान देने की आवश्यकता

विराट पुरुष

थी। परिवार को फिर से सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई बनाने के लिए आवश्यक प्रयास किए जाने चाहिए थे, किंतु यह मूलभूत पहलू पूर्णतः उपेक्षित हुआ है। इसे पुनर्जीवित किए बिना अपने राष्ट्र का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो सकता।

विकास में बाधक निरक्षरता

अपने समाज के बहुसंख्य जन रोज की आवश्यकताएं भी पूर्ण नहीं कर पाते। पचास प्रतिशत लोग तो अपने प्रियतम शिशु के लिए आवश्यक पोषक आहार का अंश भी जुटा पाने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में जीनेवालों के बच्चों का स्कूल से दूर का संबंध भी नहीं रहता। घर में माता-पिता निरक्षर होने के कारण 'काला अक्षर भैंस बराबर' की गलत परंपरा चलाए रखने के लिए विवश हैं। इन बच्चों के आठ-दस साल के होते ही उन्हें कमाई के काम में जोटा जाता है। संयोगवश इनमें से किसी ने अपने बच्चे को स्कूल में दाखिल कर भी दिया तो उस बच्चे को पहली या दूसरी से ही स्कूल से अपना नाता तोड़ना पड़ता है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सैंतीस साल का काल बीतने पर भी अपने समाज की सभी दृष्टियों से इतनी हीन-दशा क्यों है? अपने समाज के समझदार कहे जानेवाले लोगों की धारणा है कि देश आजाद हो गया। शासन की बागडोर अपने लोगों के हाथों में आ गई है। अतः सामाजिक एवं आर्थिक उन्नति का काम सरकार का है। जिसके पास न सत्ता है न अधिकार, ऐसा नागरिक इस संबंध में कुछ नहीं कर सकता। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद यह असामाजिक प्रवृत्ति बल पकड़ती जा रही है। परिवार अधिकाधिक आत्मकेंद्रित व व्यक्ति अधिक व्यक्तिनिष्ठ बनता जा रहा है। इस घातक प्रवाह को रोकें बिना मानव में मानवीयता एवं परिवार में सामाजिकता विकसित नहीं हो सकती।

युवाशक्ति की दिशाहीनता

शासन कानून बना सकता है, किंतु कानून के अनुसार व्यवहार करने की प्रेरणा सर्वसाधारण लोगों में अंकुरित नहीं कर सकता। अत्यंत खेद के साथ कहना पड़ता है कि स्वतंत्र भारत में भी कानून तोड़ने की घातक प्रवृत्ति बढ़ाई जा रही है। समाज के घटकों में तथा समाज के विभिन्न वर्गों में परस्पर सद्भावना, स्नेह, विश्वास तथा सहयोग की भावना निर्माण करने का अति आवश्यक कार्य कानून के द्वारा या नौकरशाही के द्वारा संभव नहीं हो सकता। यह दायित्व समाज के प्रबुद्ध लोगों का है। दुर्भाग्य है कि स्वराज्य-प्राप्ति के बाद समाज के प्रबुद्ध लोगों ने इस दायित्व से स्वयं को अलिप्त कर लिया है। समाज सुधारक की परंपरा मिट गई है। सामाजिक दोष दूर करने का तथा युगानुकूल सामाजिक पुनर्चना के कार्य का एकमेव माध्यम सरकार को माना जा रहा है। परिणामस्वरूप देश की लोकशक्ति का, विशेषतः असीम युवाशक्ति का सामाजिक पुनर्चना के महान् कार्य में कोई उपयोग नहीं हो पा रहा है। यह महान् शक्ति पूर्णतः दिशाहीन बन बेकार हो रही है।

साधारण नागरिक अपने परिवार के छोटे-बड़ों को लेकर अड़ोस-पड़ोस के नागरिकों के सहयोग से सामाजिक पुनर्चना का कार्य कर सकता है। ऐसा वातावरण तथा दृश्य निर्माण कर

दिखाने से ही वर्तमान निराशा के वातावरण में आशा की भावना जगाई जा सकती है। युवा शक्ति को उचित दिशा मिल सकती है। स्वातंत्र्य युद्ध के हुतात्माओं के हृदय की स्वतंत्र भारत की प्रतिमा साकार की जा सकती है।

बाल विकास की प्रयोगशाला

सामाजिक पुनर्रचना के इस मूलभूत प्रयोग के लिए दीनदयाल शोध संस्थान ने भारत के केंद्र-स्थान नागपुर नगर का प्रयोगशाला के रूप में चयन किया है। 'रचना' प्रकल्प सर्वांगीण बाल विकास प्रकल्प के रूप में महात्मा गांधी की जयंती के मंगल प्रसंग पर 2 अक्टूबर, 1980 को प्रारंभ किया था। सामाजिक पुनर्रचना का कार्य नई पीढ़ी से ही प्रारंभ किया जाना चाहिए। नई पीढ़ी का उल्लेख होते ही प्रथम उनके शिक्षा व सर्वांगीण विकास का प्रश्न सम्मुख खड़ा होता है। अपने संविधान निर्माताओं ने बच्चों की पढ़ाई को विशेष महत्व दिया था। भारतीय संविधान की पैतालीसवीं धारा के अनुसार सन् 1960 तक प्राथमिक शिक्षा देश में सर्वव्यापी बनाने का संकल्प किया गया था, किंतु इस मूलभूत कार्य की उपेक्षा हो गई है। अन्यथा आज सन् 1984 में अपने समाज में अड़तीस वर्ष आयु की एक भी महिला या पुरुष निरक्षर नहीं रहता। बहुत बड़ी उपलब्धि होती। देश के नागरिक स्वयं होकर कुछ सोचने-समझने की स्थिति में आते, किंतु बीती हुई गलतियों को याद कर दूसरों को दोष देते बैठने में लाभ नहीं है। सामाजिक पुनर्रचना का जो कार्य नहीं हो पा रहा है, उसे संपन्न करने में जुट जाना ही इस काल का प्राथमिक कर्तव्य एवं पुरुषार्थ है। इसी भावना से सर्वांगीण बाल विकास प्रकल्प प्रारंभ किया गया है। विविध संस्कारक्षम कार्यक्रमों के माध्यम से रामदास पेठ में स्थित मेजर खरे उद्यान में यह कार्य नियमित रूप से चल रहा है। विविध विषयों में बालकों की स्पर्धाएं, प्रदर्शन, कथाकथन, जयंतियां, पुण्य स्मरण, योगशिक्षण, चित्रकला, गायन-वादन, स्वास्थ्य विकास आदि कार्यक्रमों के माध्यम से समाज के सभी स्तरों के छोटे-छोटे बालक-बालिकाओं के व्यक्तित्व विकास का उत्साहवर्धक परिणाम उस क्षेत्र के लोगों के ध्यान में आ रहा है। वहां के समाज में, विशेषतः गरीब एवं उपेक्षित वर्ग के महिला-पुरुषों में, इस कार्य के लिए रुचि बढ़ रही है। बालकों के विकास में उनका अधिकाधिक सहयोग प्राप्त हो रहा है। इस प्रारंभिक सफलता के कारण इस कार्य में संलग्न महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं ने 'रचना' प्रकल्प के नाम से इस कार्य को नागपुर नगर के विभिन्न भागों में फैलाने की योजना बनाई है।

समाज में बढ़ती असमानता

जिस अनुपात में नागपुर नगर की आबादी बढ़ रही है, उससे अधिक गति से गंदी बस्तियों की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। अपने देश के बढ़ते हुए अन्य शहरों की भी यही स्थिति है। इन गंदी बस्तियों में रहनेवालों का जीवन अति दयनीय है। मानवीय जीवन की यह दुर्दशा अकल्पनीय है। इन बस्तियों में जन्म पानेवाली नई पीढ़ी के उज्ज्वल भविष्य के लिए, निकटवर्ती शिक्षित व संवेदनशील परिवारों के सहयोग से कदम बढ़ाना सामाजिक पुनर्रचना की दिशा में अग्रसर होना है।

विराट पुरुष

माता-पिता कितने भी अशिक्षित, पिछड़े व गरीब हों, उनकी चाह रहती है कि उनकी संतान अच्छी बने। इस कोमल किंतु सशक्त व महत्वपूर्ण भावना के सहारे सामाजिक पुनर्रचना करना संभव है। गंदी बस्तियों में रहनेवालों के अधिकांश बच्चे स्कूल नहीं जाते या एक-दो साल में ही पढ़ना छोड़ देते हैं। उनके चारों ओर जो वातावरण रहता है, वह उनका ठीक दिशा में विकास नहीं होने देता। उनकी आकांक्षाएं विकृत हो जाती हैं। तेजी से बढ़नेवाला यह वर्ग सर्वथा उपेक्षित है। इन शहरों में सुशिक्षित व अशिक्षित, समृद्ध व विपन्न लोग एक ही नगर में रहते हुए न उनमें एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति होती है, न एक-दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी होने की इच्छा ही रहती है। इनमें पाई जानेवाली एक-दूसरे के प्रति की तुच्छता की भावना इन दो वर्गों में दुराव की खाई अधिकाधिक चौड़ी बना रही है। स्वस्थ सामाजिक जीवन के लिए यह स्थिति हानिकारक है। इन दो वर्गों में सहानुभूति एवं सहयोग का जीवन-निर्माण करना सामाजिक पुनर्रचना का प्रथम चरण है। इसी बात को ध्यान में रखकर 'रचना' प्रकल्प के माध्यम से सर्वप्रथम सबके लिए शिक्षा का कार्यक्रम हाथ में लिया गया है।

केवल क्लास रूम शिक्षा-पद्धति के माध्यम से बालक-बालिकाओं का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो सकता। मानव को स्वावलंबन, स्वाभिमान एवं सामाजिक भावना से विभूषित करने के लिए बाल विकास में पारिवारिक एवं सामाजिक सहयोग-पद्धति का अर्थात् अनौपचारिक शिक्षा का माध्यम विकसित करना होगा। साधारण मानव चारों ओर के वातावरण से संस्कारित होकर तदनुरूप बनता है। अतः सामाजिक पुनर्रचना का कार्य संपन्न करने के लिए पारिवारिक एवं सामाजिक वातावरण में व अध्यापन में संलग्न महिला पुरुषों की जीवन-दृष्टि में आवश्यक परिवर्तन का प्रयास करना होगा। इसी हेतु निम्न कार्यक्रमों की रचना की गई है—

सबके लिए शिक्षा

- गंदी बस्तियों का परिवारशः सर्वेक्षण करना।
- बस्तियों में कुल कितने परिवार रह रहे हैं, इसका पता लगाना।
- स्कूलों में न जानेवाले 14 वर्ष या उससे कम आयु के लड़के-लड़कियों की आयु के अनुसार सूची तैयार करना।
- स्कूल में या कॉलेज में पढ़ने के लिए जानेवाले लड़के-लड़कियों की आयु तथा कक्षानुसार सूची तैयार करना।
- स्कूल न जानेवाले या स्कूल छोड़े हुए 14 वर्ष के नीचे की आयु की लड़कियों तथा लड़कों की शिक्षा का प्रबंध उनके खाली समय में करना।
- गंदी बस्ती के निकटवर्ती क्षेत्र में रहनेवाली सुशिक्षित गृहणियों की, शिक्षक-शिक्षिकाओं की, अवकाश प्राप्त महिला-पुरुषों की विश्वविद्यालयीन छात्र-छात्राओं की तथा अन्य शिक्षित महिला-पुरुषों की सूची तैयार करना। उन्हें गंदी बस्ती में स्कूल न जानेवाले लड़के-लड़कियों को पढ़ाने के कार्य में सहयोगी बनने के लिए प्रेरित करना।

समाजशास्त्री

- इस कार्य में सहयोग के लिए सिद्ध महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं के आवश्यक प्रशिक्षण का प्रबंध करना।
- गंदी बस्ती में स्कूल या कॉलेज में पढ़नेवाली लड़कियों की पढ़ाई की क्षमता एवं प्रतिभा बढ़ाने तथा उनमें स्वरोजगार की दृष्टि विकसित करने के लिए विशेष वर्गों की व्यवस्था करना।
- इस नूतन पीढ़ी में स्वावलंबन, स्वाभिमान, सामाजिक चेतना व महत्वाकांक्षा विकसित करने के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों की रचना करना।
- चौदह वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए विभिन्न प्रकार के खेलों की व्यवस्था करना। इन खेलों में शारीरिक परिश्रम के खेल भी सम्मिलित करना आवश्यक है। उनकी कल्पनाशक्ति एवं बुद्धिमत्ता का विकास करने के साथ-साथ उनमें रचनात्मक वृत्ति पनपने की दृष्टि से भी रुचिकर कार्यक्रम आयोजित करना।
- कमाई के लिए काम पर जानेवाली माताओं के नन्हे-नन्हे शिशुओं के लिए दो महीने से दो वर्ष तक की आयु के शिशुपाल केंद्र चलाने का प्रयोग करना। इन बच्चों पर इसी काल से अच्छे संस्कार डालने की विधि विकसित करना। इन शिशुपालन केंद्रों के माध्यम से बच्चों का लालन-पालन किस प्रकार किया जाना चाहिए, इसकी व्यावहारिक शिक्षा गरीब एवं अशिक्षित माताओं को प्रदान करना।
- चौदह वर्ष से अधिक आयु के पढ़ाई में रुचि रखनेवाले महिला-पुरुषों को उनके खाली समय में पढ़ाने का प्रबंध करना।
- उपर्युक्त कार्यों के लिए समाज-सेवा की भावना से प्रेरित सुशिक्षित महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं की संख्या बढ़ाने का कार्य सतत चालू रखना तथा उन्हें उनकी रुचि के अनुसार कार्यों के लिए प्रशिक्षित करना।
- वैचारिक एवं भावनात्मक स्तर बढ़ाने के लिए इन बस्तियों में रहनेवाले नागरिकों के लिए स्वास्थ्य एवं शिक्षाप्रद मनोरंजन के कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित करना।
- अपने बच्चों को रात्रि में या अन्य खाली समय में उपयुक्त कथाएं सुनाने की क्षमता बढ़ाने के लिए माता-पिताओं को या परिवार के प्रौढ़ व्यक्तियों को कथा-कहानियां सिखाने के लिए वर्ग चलाना।
- इन बस्तियों के निवासियों के लिए उन्हीं के क्षेत्र में उपयोगी छोटा सा वाचनालय प्रारंभ करना।
- अपना आवास चाहे जिस स्तर का हो, उसे किस प्रकार से व्यवस्थित एवं सुंदर ढंग से रखा जा सकता है, इसकी जानकारी, उनके आवास को व्यवस्थित करने में प्रत्यक्ष सहयोग देना।
- जीवन के हर पहलू के संबंध में उचित मार्गदर्शन कर पानेवाली स्लाइड्स तथा चलचित्र बनाकर दिखाने की नियमित व्यवस्था करना।

सबके लिए स्वास्थ्य

- नूतन पीढ़ी अधिक स्वस्थ व योग्य बने, इस दृष्टि से गर्भवती महिलाओं की समय से उचित देखभाल की व्यवस्था करना।

विराट् पुरुष

- उनके लिए आवश्यकतानुसार उपचार एवं आवश्यक पौष्टिक आहार अपने सीमित साधनों के अंतर्गत किस प्रकार उपलब्ध हो सकता है, इस संबंध में उनका आवश्यक मार्गदर्शन करना।
- गर्भवती महिलाओं के मन में अच्छे विचार उत्पन्न हों तथा अच्छी संतान की उनके मन में आकांक्षा जाग्रत् करने के लिए उन्हें महापुरुषों के बाल्य-जीवन की रुचिकर घटनाओं को कथा-कहानियों के रूप में सुनाने का प्रबंध करना।
- नन्हे-नन्हे शिशुओं के उचित ढंग से पालन की विधियों को स्लाइड्स एवं चलचित्रों के माध्यम से दिखाना।
- नन्हे-नन्हे शिशुओं को समय से चेचक निवारण, पोलियो आदि के आवश्यक टीके समय से लगाने की व्यवस्था करना।
- चौदह वर्ष तक की आयु के बालक-बालिकाओं का नियमित रूप से त्रैमासिक स्वास्थ्य परीक्षण करना तथा उनके माता-पिता का बच्चों के स्वास्थ्य संवर्धन के लिए आवश्यक मार्गदर्शन करना।
- परिवार कल्याण के लिए आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराना।
- संतानहीन महिलाओं के लिए संभाव्य उपाय योजना की व्यवस्था करना।
- गंदी बस्तियों में रहनेवाले असहाय वृद्धों की सेवा शुश्रूषा का प्रबंध उनके अड़ोस-पड़ोस में रहनेवालों के द्वारा करवाना।
- उस बस्ती के सभी लोगों के सहयोग से पूरा परिसर स्वच्छ और सुंदर बनाए रखने के लिए सबको सक्रिय करने की दृष्टि से स्वयं को भी इस सामाजिक कार्य में सहभागी बनाना।
- मेडिकल कॉलेज या अन्य दवाखानों में जो रोगी असहाय, एकाकी व गरीब हैं, उन्हें नियमित रूप से मिलने, उनकी आत्मीयतापूर्ण ढंग से देखभाल करने एवं आवश्यकतानुसार उन्हें सहायता पहुंचाने की व्यवस्था खड़ी करना।
- नागपुर नगर में जितनी भी गंदी बस्तियां हैं या गरीब एवं पिछड़े लोगों की आबादियां हैं, उनके स्वास्थ्य संवर्धन के लिए चलते-फिरते रुग्णालय की व्यवस्था करना, जिससे नगर में शासकीय संस्थाओं में काम करनेवाले विभिन्न रोगों के विशेषज्ञों तथा नगर के अन्य निजी मेडिकल प्रैक्टिस करनेवाले डॉक्टरों को इन गंदी बस्तियों में उपेक्षित रोगियों की सेवा का सुअवसर प्रदान किया जा सके।

हर हाथ को काम

- पारिवारिक सर्वेक्षण के द्वारा प्रत्येक काम करने लायक महिला-पुरुषों की सूची तैयार करना। जिन-जिन लोगों को अतिरिक्त आय की आवश्यकता है, उनकी रुचि एवं योग्यता के अनुसार उनके लिए उपयुक्त कमाई का मार्ग सुझाने की व्यवस्था करना।
- बस्ती के युवक-युवतियों को उनकी रुचि के अनुसार स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करना।

- बस्ती के महिला-पुरुषों के लिए खाली समय में सरल उत्पादन विधियों के द्वारा उत्पादन कार्य में संलग्न करना।

सामूहिक कार्यक्रम

समाज के विभिन्न वर्गों में परस्पर स्नेह एवं सहयोग का उत्साहवर्धक वातावरण निर्माण करने तथा उसे कायम रखने के लिए शिक्षित और अशिक्षित परिवारों के छोटे-छोटे सम्मेलन, वनविहार तथा स्वस्थ मनोरंजन के लिए सम्मिलित कार्यक्रम आयोजित करना।

सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में संलग्न महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं को मानधन या भत्ता देने की पद्धति अपनाई नहीं जाएगी। सामाजिक दायित्व प्रत्येक नागरिक का अनिवार्य एवं स्वाभाविक कर्तव्य है। इस भावना के आधार पर ही महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं का निर्माण करना 'रचना' प्रकल्प की नीति है।

'रचना' प्रकल्प का व्याप गंदी बस्तियों या गरीब बस्तियों तक ही सीमित नहीं रहेगा। धीरे-धीरे पूरे समाज को इसकी परिधि में लाना प्रकल्प का लक्ष्य है। समाज के प्रति प्रत्येक परिवार को सामाजिक चेतना का संस्कार केंद्र अर्थात् अपने समाज की आधारभूत इकाई बनाकर व्यक्ति एवं समाज में अभिन्नता निर्माण करने की दृष्टि से ही यह प्रकल्प कार्यरत रहेगा।

अर्थार्जन समाज कार्य का हिस्सा

व्यक्ति, परिवार, व्यवसाय एवं समाज के संबंधों की परस्पर पूरक व्यवस्था लुप्त हो गई है। व्यक्तिगत एवं पारिवारिक सीमा में ही मानव कैद हो गया है। व्यवसाय को पारिवारिक जीवन की आवश्यकताएं पूर्ण करने का एक साधन मात्र समझा जा रहा है। सामाजिक कार्य करना यानी विशेष कुछ करना अर्थात् परोपकार करना यह धारणा बन गई है। समाज एवं परिवार के परस्पर अटूट संबंध की भावना ही मिट गई है। फिर भी व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन आज भी अभिन्न है। इसी कारण मानव अपने परिवार की आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए किसी-न-किसी व्यवसाय के द्वारा अर्थार्जन करता है, किंतु किसी व्यवसाय के द्वारा अर्थार्जन क्यों और कैसे होता है, इस गहराई में कोई नहीं जाता। अर्थार्जन के लिए किए जानेवाले काम की यदि समाज को जरूरत नहीं है, तो उस व्यवसाय के द्वारा अर्थार्जन संभव नहीं हो सकता। जिस व्यवसाय के कारण समाज की कोई-न-कोई आवश्यकता पूर्ण होती है, उसी व्यवसाय से अर्थार्जन संभव है। इससे स्पष्ट होता है कि अर्थार्जन एवं सामाजिक आवश्यकता एक-दूसरे से अभिन्न है। समाज की कोई-न-कोई आवश्यकता पूर्ण करने से ही व्यक्ति तथा परिवार की आवश्यकता पूर्ण होती है। प्रत्येक व्यवसाय समाज की एक-न-एक आवश्यकता पूर्ण करता है। इसका अधिक उपयुक्त अर्थ है—व्यवसाय समाज-सेवा का कारगर माध्यम है। इस मूलभूत जीवन-दृष्टि का अभाव हो गया है। वर्तमान परेशानी इसी का परिणाम है। इसी कारण परिवार और समाज के हित में टकराव की स्थिति पैदा हो गई है। परिणामस्वरूप न सामाजिक जीवन

विराट् पुरुष

ठीक से चल पा रहा है न पारिवारिक। दोनों में असुविधा एवं असंतोष बढ़ रहा है।

मेरे व्यवसाय का अर्थ स्वार्थ-साधन नहीं, अपितु समाज-सेवा का पुण्य कार्य है। मेरे परिश्रम एवं कुशलता के कारण समाज की आवश्यकता पूर्ण हो रही है। इस दृष्टि से किया गया व्यवसाय व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में बहुत बड़ा सुखदायी परिवर्तन ला सकता है। काम वही है किंतु उसके पीछे की भावना उदात्त होने के कारण व्यवसाय में से अनैतिकता, असामाजिकता, धोखाधड़ी, चोरबाजारी आदि समाज घातक बातें सहज में ही मिट सकती हैं। शासकीय एवं सामाजिक गतिविधियों में भी व्यवस्थाएं सुधर सकती हैं। निपुणता बढ़ सकती है। दायित्व की भावना पनप सकती है। परिवार के लिए आवश्यक अर्थार्जन में भी अधिक कमी आने की संभावना नहीं हो सकती। सामाजिक कार्य अपने दैनंदिन जीवन का स्वाभाविक अंग बन सकता है। अपना व्यवसाय ही जनसेवा का रूप ले सकता है। समाज घटकों में प्रचलित परस्पर अविश्वास का वातावरण मिटाया जा सकता है। इस कार्य से परस्पर स्नेह पनपेगा। सहयोग बढ़ेगा। व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन सामंजस्यपूर्ण एवं परस्पर पूरक बनेगा। व्यावसायिक व्यवहार में भी नैतिकता एवं आध्यात्मिकता का समाधान प्राप्त होगा। मानव की जन्मजात मानवीयता, संवेदनशीलता कदम-कदम पर प्रकट होगी। मानव के सर्वांगीण विकास की दिशा प्रशस्त होगी। भारत में किसी काल में घर में ताला लगाने की प्रथा नहीं थी। अपने समाज के लिए फिर से उस स्थिति में पहुंचना संभव होगा। 'रचना' प्रकल्प इसी सपने को साकार करने के पुनीत कार्य में संलग्न है।



समाज शिल्पी युग परिवर्तन के वाहक

समाज शिल्पी परिवार की कल्पना के अनुसार यह जो सम्मेलन आयोजित किया गया है, यह एक अनोखी बात है। इसमें पहले से तयशुदा कोई बात नहीं है। यह सात दिन का कार्यक्रम पहले से बना-बनाया कार्यक्रम नहीं है। साधारणतः शिविरों में सम्मिलित लोगों को पहले से निश्चित चीजों के बारे में अधिक समझाने या चर्चा करने की व्यवस्था की जाती है, यही शिविर का रूप रहता है। परंतु अपने शिविर में थोड़ी भिन्नता आपको अनुभव होगी। नाम है—समाज शिल्पी परिवार शिविर। यह समाज शिल्पी परिवार प्रशिक्षण शिविर नहीं है। इसी से स्पष्ट हो जाता है कि जो कुछ हम करने की सोच रहे हैं, उसका संपूर्ण रूप, उसकी विधि, हम लोग मिलकर के तय करेंगे। यह तय करने के लिए प्रारंभ में जो विचार सबके सामने रखा जाना चाहिए, उतना विचार मैं अभी आपके सामने रखूंगा।

समाज शिल्पी ऐसा शब्द नहीं है, जिसका अर्थ समझना कठिन हो। समाज शिल्पी का अर्थ है—समाज की रचना करनेवाला। दीनदयाल शोध संस्थान चाहता है कि समयानुकूल समाज की रचना की जाए। अपना समाज बहुत पुराना है। पुराना होने के कारण इसमें मूलभूत ऐसी बातें हैं, जो परिवर्तनीय नहीं हैं, जो स्थायी मूल्यों की हैं। इसमें परिवर्तन करने की कभी भी जरूरत हो सकती है। स्थायी मूल्यों के आधार पर जो समाज अनंत काल से काम करता आ रहा है, उसमें कुछ रूढ़ियां और परंपराएं ऐसी हैं, जिन्हें बदला जाना चाहिए। संभव है, किसी समय वे बहुत उपयोगी रही होंगी, समाज की धारणा के लिए आवश्यक रही होंगी। समाज का उससे बड़ा लाभ होता रहा होगा, किंतु आज के समय में वे उपयोगी कम, घातक ज्यादा हो रही हैं।

आज हम देखते हैं हमारी कितनी बहनें दहेज न देने के कारण जल रही हैं, या जलाई जा रही हैं। कितनी दुर्भाग्यपूर्ण, दुःखद और हीन बात है। धन की महत्ता इतनी कि मानव को जला दे, लेकिन यह हो रहा है। ऐसी स्थिति में समय-समय पर समाज की पुनर्रचना करना आवश्यक होता है। इसलिए अपने साहित्य और अपने जीवन में एक शब्द प्रचलित है 'युगधर्म'। युग के अनुसार आचरण करने की विधि। इसका अर्थ है कि युग भिन्न आने के बाद उस युग का

ग्राम विकास में समाज शिल्पी दंपतियों की परिकल्पना और उनकी भूमिका इस क्षेत्र को नानाजी की अनूठी देन है। समाज शिल्पी परिवार शिविर, गोंडा (24 से 30 जून, 1986) में नानाजी ने इसे विस्तार से समझाया।

विराट पुरुष

व्यवहार भिन्न होगा। हमारे जो मूलभूत तत्त्व हैं, उन तत्त्वों के अनुसार होगा।

यह काम साधारणतः कोई कर नहीं रहा। स्वराज्य के काल में और पूर्व में समाज-सुधारकों की बहुत बड़ी परंपरा अपने देश में चली। किंतु उन समाज-सुधारकों ने कोई दो-चार समस्याएं लीं और उनके ऊपर बड़ा बल दिया। समाज की पुनर्रचना समयानुकूल बनाने के लिए जिन सब बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, उतना देखने को नहीं मिला। केवल दो ही व्यापक प्रयास हुए गौतम बुद्ध का और शंकराचार्य का। किंतु पूरे समाज रचना की विधि का विधान उसमें नहीं है। अब यह कार्य पड़ा हुआ है। यह सारा काम करने के लिए हम लोग बहुत बड़े नहीं हैं, किंतु कई बार मुझे ऐसा लगता है कि साधारण लोग मिलकर यदि करें तो बहुत अच्छा काम कर सकते हैं। मैं अध्ययन करने का प्रयास करता हूं, तो लगता है कि जिन्होंने युग परिवर्तन किया, वे इस कारण बड़े बने कि उन्होंने युग परिवर्तन का काम हाथ में लिया। पहले वे बड़े नहीं थे। मुझे लगा कि हम कार्यकर्ता यह काम कर सकते हैं और इसके कारण ही यह प्रयास हम लोग कर रहे हैं।

हर परिवार हो समाज शिल्पी

अब मैं समाज शिल्पी परिवार की दृष्टि से कुछ बात आपके सामने रखता हूं, जो विचार करने के लिए बहुत जरूरी हैं। अपने समाज में करोड़ों परिवार हैं। इन परिवारों में संतान जन्म पाती है। यही संतान परिवार में पलती है, परिवार में बढ़ती है, और वही समाज का रूप ग्रहण करती है। समाज का प्रत्येक परिवार शिशुओं को जन्म देता है, उन्हें पालता है, उन्हें शिक्षित करता है, उन्हें बढ़ाता है, उनका विवाह कर देता है। लड़की हो चाहे लड़का, समाज स्थायी रहे इसका दायित्व निभाता है। तो हर एक परिवार एक प्रकार से समाज शिल्पी परिवार है। समाज की रचना करनेवाला है। समाज की रचना अखंड चली आ रही है। जब हर एक परिवार समाज शिल्पी है, तो प्रश्न आता है कि समाज की दुर्दशा क्यों?

अपना जो ध्यान मंडप है, उसके अंदर आते समय दाहिनी ओर एक चित्र लगा हुआ है। यह चित्र है चीन के दो प्रवासियों का, जो अपने देश में साढ़े तेरह-चौदह सौ साल पहले आए। एक फाह्यान और दूसरा ह्वेनसांग। दोनों की डायरियां हैं। उन्होंने जिस समय 'नालंदा विश्वविद्यालय' के बारे में लिखा था, उस समय वह बहुत ही अच्छी स्थिति में था। आज उनका लिखा हुआ पढ़ते हैं तो हमें अचरज होता है। वे लिखते हैं कि यह समाज कितना कमाल का है। यहां किसी के घर में ताला ही नहीं लगाना पड़ता। बस कुत्ता, जानवर न जाए इसके लिए दरवाजा ऐसे ही बेड़ देते हैं। कल्पना करो, अपने समाज की ऐसी स्थिति थी। निकटता से अपने समाज का उन्होंने अध्ययन किया और लिखा। सब उसको इतिहास मानते हैं, कोई कल्पना नहीं मानता। जैसे आजकल रामायण को भी कल्पना मानने लगे हैं। लेकिन सभी लोग फाह्यान और ह्वेनसांग का लिखा इतिहास मानते हैं। आज अपने समाज की स्थिति क्या है? बड़ी विचित्र है। रामायण का काल लीजिए। रावण बड़ा भारी शक्तिशाली और विद्वान् था। परंतु उसे लगा—राम हमारी संपूर्ण राज्य-व्यवस्था में बाधा बनता जा रहा है और हमारे राज्य विस्तार में काम आनेवाले राक्षसों का संहार

करता चला जा रहा है तो राम की पत्नी सीता को उठा ले गया। लेकिन राक्षस होकर, दैत्य होकर, दुष्ट होकर भी उसने सीता पर बलात्कार नहीं किया। आज जहां-तहां बलात्कार रोज हो रहे हैं। उस भूमि में जिस भूमि में खराब आदमी भी बलात्कार नहीं करता था। वह भी महिला के संबंध में, मन में ऐसी धारणा रखता था कि जबरदस्ती ठीक नहीं।

समाज के दायित्व

पहले राजनीति भ्रष्ट हुई। अब समाज में भ्रष्टता बढ़ रही है, झूठ बढ़ रहा है। आज यह जो दुर्दशा बढ़ रही है, ये कितनी व्यापक होगी, इसका विचार है? कोई हममें से इन सारी गड़बड़ियों से बचेगा ही नहीं। धीरे-धीरे अराजकता आ रही है और बड़े वेग से आ रही है। रोकनेवाला कोई नहीं है। यह ऐसा क्यों हो रहा है? उसका कारण है कि अपने जितने भी परिवार हैं, इन करोड़ों परिवारों को सामाजिक या राष्ट्रीय भावना से जोड़नेवाली किसी प्रेरक संस्था से इनका संबंध ही नहीं है। वे स्वयंभू हो गए हैं। इन परिवारों को यह बताने या समझानेवाला कि समाज भी कोई चीज है, राष्ट्र भी कोई चीज है, ऐसे लोगों के संपर्क में आने की कोई संभावना नजर नहीं आती। समाज के अंग के नाते उनका दायित्व क्या है? यह सोचने की बजाय अपना फायदा हो, चाहे जिस ढंग से, हो इतना ही परिवार सोच रहा है। परिवार चलानेवाले व्यक्ति के दिल और दिमाग में सर्वाधिकार व सर्वाधिक स्थान पत्नी, बेटे का है, फिर परिवार के अन्य किसी व्यक्ति का। नैतिकता-अनैतिकता, उचित-अनुचित का कोई विचार नहीं आता। बड़ी-बड़ी बातें बतानेवाले और बड़ी-बड़ी बातें न बतानेवाले, सभी एक से हैं। कोई अंतर नहीं। धार्मिक प्रवचन करनेवाले भी, अपने व्यवहार में पत्नी, बेटा और बेटे को इतना महत्व देते हैं कि उनकी बातों से कोई मेल नहीं खाता। उलट हो यह रहा है कि संकुचितताएं बढ़ानेवाला वातावरण बन रहा है। जातिगत संकुचितता बढ़ रही है, भाषागत संकुचितता बढ़ रही है, क्षेत्रीय संकुचितता बढ़ रही है, सांप्रदायिक संकुचितता बढ़ रही है, दलगत संकुचितता बढ़ रही है। समझाया जाता है कि दल का काम राष्ट्र का काम है। यह संकुचितता बढ़ानेवाला वातावरण चारों ओर पहुंच रहा है। दूसरी गड़बड़ है कि अपने समाज में असमानता-युक्त परिवार बढ़ रहे हैं। अपने समाज में कुछ शिक्षित हैं, बहुत से बेपढ़े भी हैं। कुछ लोग धनी हैं, कुछ लोग निर्धन हैं। अपने समाज में एक बुद्धिजीवी वर्ग चल पड़ा है और एक श्रमजीवी वर्ग। जो मेहनत करता है, वह श्रमजीवी जो कलम चलाकर आजीविका चलाता है, वह बुद्धिजीवी। वैसे ही शहरी और देहाती, ये अलग-अलग वर्ग एकत्रित आते हैं। इनके दायरे ऐसे अलग-अलग हो गए हैं कि एक विशिष्ट स्तर पर रहनेवालों को उनको विशिष्ट स्तर पर रहने की इच्छा होती रहती है, लेकिन लाखों लोग किस स्तर पर हैं, इसका विचार नहीं करते हैं। इनका कभी एकत्रित आना एक दूसरे के सुख-दुःख में सहभागी होना संभव ही नहीं होता।

यह जो वर्गीकरण है, इसके कारण एक-दूसरे के प्रति केवल सहानुभूति शून्यता ही नहीं, दुर्भावनाएं और घृणा बढ़ रही हैं। एक-दूसरे को तुच्छ समझते हैं। यह समाज की वस्तुस्थिति है। यह वस्तुस्थिति नारों तथा सत्ता से दूर होना संभव नहीं है। समाज को साथ लाने का काम शासन

विराट पुरुष

के द्वारा नहीं होनेवाला। संभव होगा यदि कुछ परिवारों ने तय किया कि हम समाज के लिए जिस प्रकार रहना आवश्यक है, उस प्रकार रहेंगे। समाज की रचना में जैसे लड़के-लड़कियां बननी चाहिए, वैसे हम अपने लड़के-लड़कियों को बनाएंगे। इसलिए कुछ परिवार इस दृष्टि से तैयार किए जाएंगे, जो दीनदयाल शोध संस्थान के काम में ही नहीं लगे हुए होंगे, बल्कि जहां भी रहेंगे, समाज शिल्पी परिवार के नाते अपनी जिंदगी बिताएंगे। इस प्रकार का संकल्प करेंगे। संभव है कि ऐसे शिविर हम देश में उन जगहों पर भी आयोजित करें, जहां हमारा कोई कार्य नहीं चल रहा, लेकिन पहले इसका सर्वांगीण विचार, कुछ विधि-विधान हम सोचें।

हर एक परिवार अपने स्वार्थ में लगा हुआ है। व्यक्ति चिंतन की दृष्टि से परिवार तक ही सीमित हुआ है। परिवार अपनी संतान तक सीमित हुआ है। ऐसी परिस्थिति में संतान यही संस्कार पाती है कि वह कितना भी बड़ा दायित्व निभानेवाला बन जाए, चाहे मुख्यमंत्री बन जाए, चाहे प्रधानमंत्री बन जाए, दायरा तो पारिवारिक हित है, पारिवारिक स्वार्थ है। उस जगह पर बैठकर भी वह राष्ट्र का भला करने की दृष्टि से न्याय नहीं कर सकता। समाज शिल्पी बनने की बजाय आज प्रत्येक परिवार समाज को बिगाड़ने का काम कर रहा है। यानी प्रत्येक परिवार समाज की आज की दुर्दशा का कारण है। यदि प्रत्येक परिवार, जैसा हम चाहते हैं, वैसा समाज शिल्पी परिवार बना तो उसके घर में पैदा होनेवाली संतान इस राष्ट्र के लिए भूषणावह बन जाएगी और आज की स्थिति ठीक हो जाएगी।

साधारण जन ही युग परिवर्तन के वाहक

जब कभी भी युग परिवर्तन हुआ है—किसके द्वारा हुआ है? इस पर विचार करो। राम का जीवन लो, राम का साथ देनेवाले लोग कौन थे? उस समय के तथाकथित बुद्धिजीवी नहीं थे। कृष्ण का जीवन देखें, कृष्ण का साथ देनेवाले लोग कौन थे? सुविधाजनक परिस्थिति में जाकर काम करनेवाला युग परिवर्तन नहीं कर सकता। आधुनिक काल को लीजिए। कोई भी लीजिए, अपने ही देश का नहीं विदेश का भी लीजिए। अब्राहम लिंकन ही लीजिए। इनकी जीवनी पढ़िए। मैं तो हमेशा आप लोगों से आग्रह करता हूँ कि जरा जीवनियां पढ़ो। उससे बहुत ज्यादा समझ में आता है। इतिहास भी समझ में आता है और लोग कैसे-कैसे परिस्थितियों में से गुजरे यह भी समझ में आता है।

पिछड़े वर्ग को मैं पिछड़ा नहीं मानता। कारण, तीन बातें इन लोगों में ऐसी हैं, जो युग परिवर्तन के लिए सर्वोत्कृष्ट हैं। एक, इन्हें यदि लगा कि हमें अपनाया जा रहा है तो उनकी आपके ऊपर भक्ति बड़ी अविचल होती है, वह डिगती नहीं। दूसरी, साहस इन लोगों में सबसे अधिक मिलेगा। तीसरा, त्याग भी इनमें सबसे अधिक मात्रा में मिलेगा। सुविधा से जिनको काम करना है, उन लोगों को सामाजिक नवरचना के झंझट में पड़ना ही नहीं चाहिए। यह केवल अपने परिवार का हित देखने का भाव कैसे बदल पाएंगे?

परिवर्तन करनेवाले अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करनेवाले कुछ परिवार हमारे इस समाज शिल्पी परिवार शिविर में आए हैं। हम लोगों को इसमें कई पहलुओं पर विचार करना है। इस

समाजशास्त्री

स्थिति को बदलने के लिए प्रत्येक परिवार एवं बच्चे आ सकते हैं। पुरुष आ सकते हैं। महिला आ सकती है। हर जगह बड़ा भिन्न-भिन्न स्तर है। स्तर भिन्न होने के बाद भी आत्मीयता का भाव रहना चाहिए। डिग्री पाया होगा या कम पढ़ा होगा, कमा नहीं रहा होगा, लेकिन मानव के नाते मानव नहीं है क्या वह? आदमी के दिमाग में कोई चीज एक बार बैठ जाए तो उसे ग्रहण करना कठिन नहीं। केवल बुद्धि से ग्रहण करना हो, ऐसी बात भी नहीं। यह तो हृदय से और बुद्धि से मिलकर के ग्रहण करना पड़ेगा। तब समाज शिल्पी की क्षमता हममें आएगी। ध्यान इतना रखना होगा कि ग्रहण करने की जो कुछ भी क्षमता कम-से-कम जिसमें है, उस स्तर की बात हम करें, नहीं तो दीनदयालजी का कहना है कि सब से जो अंतिम व्यक्ति है, निम्नतम व्यक्ति है उसका विकास ही आखिरी मापदंड होगा, यह बात लागू नहीं हो पाएगी। आप कह सकते हैं, इसमें तो बड़ी देर लगेगी। देर तो लग सकती है, यदि आप इसके महत्त्व को समझते हैं और करने के लिए तैयार नहीं हैं तो देर ही लगेगी, लेकिन करने के लिए हम तैयार हैं तो देर नहीं लगेगी।

ध्येयवादी बनें समाज शिल्पी

बहुत दिन से सोच रहा था कि अपने मन की बात आपसे कहूं या न कहूं। सोचता रहा कि आपसे ना कहूं तो और किससे कहूं और आपके सिवाय दूसरा मेरा कौन है। इस शिविर में समाज शिल्पी निर्माण और समाज शिल्पी परिवार निर्माण, यह दोनों चीजें साथ-साथ चलनेवाली हैं। दोनों चीजें समसमान आवश्यक, समसमान स्वाभाविक और समसमान महत्त्व की है। भगवान् ने ऐसा क्रम बनाया है कि समाज शिल्पी भी होंगे और समाज शिल्पी परिवार भी होंगे। दोनों साथ-साथ। यह समाज शिल्पी के दायित्व को समझकर उसे प्रामाणिकता से निभाने का काम करनेवाले समाज शिल्पी व समाज शिल्पी परिवार आगामी पंद्रह वर्ष में भारत के हर जिले में कार्यरत हों, इस वातावरण से, इस व्यवहार से कोई जिला वंचित न रहे, इक्कीसवीं सदी का शुभारंभ इस वातावरण में हो, ऐसी मन में बहुत तीव्रता के साथ आवश्यकता अनुभव हो रही है। अब यह बात बहुत बड़ी है, कठिन भी उतनी ही है, लेकिन मुझे लगता है असंभव नहीं है।

पता नहीं, मैं गलत निकलूंगा या सही, किंतु मुझे लगता है कि दीनदयाल शोध संस्थान के जीवन में और अपने राष्ट्र के जीवन में सन् 1986 का साल बहुत महत्वपूर्ण होगा। इसी साल में हमने दो शिविर किए। एक, समाज शिल्पी का; दूसरा समाज शिल्पी परिवार का। बहुत छोटे-छोटे शिविर किए हैं। पहला, लगभग एक माह का दूसरा तथा केवल एक सप्ताह का। अब एकदम इतनी बड़ी चाह कहो, आकांक्षा कहो, सपना कहो, क्यों मन में आया और यह कैसे साकार हो? मन में तो इसलिए आ रहा है कि अपने राष्ट्र की अपने समाज की दिन-प्रतिदिन स्थिति अधिकाधिक चिंताजनक होती जा रही है। आम लोगों को लगने लगा है कि भविष्य का क्या होगा? कैसे दिन आएंगे? क्या इससे भी खराब दिन आएंगे? यह पूछते समय उनके मन का भाव रहता है कि अच्छे दिन नहीं आएंगे। एक तो हम सैकड़ों साल गुलामी में रहे, और आजादी मिलने के

विराट पुरुष

बाद भी गुलाम बने हुए हैं। वर्तमान नेतृत्व यह भावना पैदा कर रहा है, हो सकता है, अनजाने में कर रहा हो कि सब सरकार करेगी। हमें अपना कोई पुरुषार्थ करना है, यह बात वातावरण से लगभग समाप्त हो रही है।

सब बनें पुरुषार्थी

आजादी के लिए क्या करना है, क्या नहीं करना, यह सबके सामने था। लेकिन आज देश को और अपने समाज को अधिकाधिक उन्नत करने के लिए साधारण व्यक्ति क्या कर सकता है, देश का नौजवान क्या कर सकता है, यह किसी के सामने किसी रूप में नहीं आ रहा है। आम लोगों का पुरुषार्थ राष्ट्र के नव-निर्माण में, समाज के नव-निर्माण में लग सकता है, ऐसा लोगों को लगता तक नहीं। सरकार हर मामले में फेल हो रही है। अब इस समय बहुत वर्णन नहीं करता, इतने भर से ही हम समझ जाएंगे। सरकार हर मामले में सफलता प्राप्त नहीं कर सकती। न जवान लड़कियों को बचा सकती है, न दंगों को रोक सकती है। भ्रष्टाचार तो इतना बढ़ गया है कि उसकी कोई सीमा नहीं रही। महंगाई इतनी बढ़ रही है कि सीमित आयवालों का गुजारा कैसे चलेगा, समझना कठिन है। अभी अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन ने आंकड़े निकाले थे। बड़े डरावने आंकड़े हैं भारत के लिए। गरीब या नव विकासमान कहो, या नए सिरे से आजाद हुए देश कहो, उन सबके लिए तो खराब ही हैं, लेकिन भारत के संदर्भ में कहा गया है कि यहां लगभग 94 प्रतिशत बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। मैं तो देखकर भरोसा नहीं कर पा रहा हूं। लेकिन जब मैं देखता हूं तो लगता है कि शायद ये आंकड़े गलत भी नहीं हैं। महंगाई ऐसी हो रही है कि बच्चों को पौष्टिक आहार देना भी संभव नहीं हो पाता। क्या दीनदयाल शोध संस्थान में लगे कार्यकर्ताओं को इसका विचार नहीं करना चाहिए? यह प्रश्न मेरे दिमाग में आता है। लोग मुझे कहते हैं कि क्या सबकुछ छोड़छाड़कर एक कोने में जा बैठे हो? वो क्या कहते हैं, महत्त्व का नहीं। मैं समझता हूं कि बिना साधना के, बिना तपस्या के कुछ भी कहीं कह दो, उसका कुछ असर होनेवाला नहीं। इसलिए एक जगह खोजकर के जमते हुए काम करना है। समाज शिल्पी परिवार या समाज शिल्पी ये दोनों बातें गोंडा, बीड़, सिंहभूम और नागपुर तक ही सीमित नहीं रखेंगे। हम दीनदयाल शोध संस्थान के कार्यकर्ताओं तक ही यह सीमित रखना नहीं चाहते। दीनदयाल शोध संस्थान शोधशाला के रूप में काम करेगा।

अब ऐसा दिख रहा है कि अराजकता इस देश में पूरी तरह आए बिना नहीं रहेगी। चाहे जिसकी हुकूमत आ जाए, चाहे कोई आए, क्योंकि उसको अपने गर्भ में आने के समय से समाज, राष्ट्र उसके प्रति समर्पण के संस्कार नहीं मिल रहे हैं। मैं गलत हो जाऊं तो बहुत अच्छा है। मुझे खुशी होगी कि मैं गलत सिद्ध हो गया, लेकिन वस्तुस्थिति को देखने के बाद किसी स्थिति को न समझना, यह मैं पाप समझता हूं। अब ऐसी परिस्थिति में समाज ही समाज को बचाएगा। भारत में यह चीज एक बार नहीं, अनेक बार हुई है। अब एक बात मैं याद दिलाता हूं। सन् 1946 के चुनाव होने के बाद मुसलिम लीग ने 18 अगस्त, 1946 को कलकत्ते में डायरेक्ट एक्शन प्रारंभ किया। डायरेक्ट

समाजशास्त्री

एक्शन माने कल्लेआम करना। हमारे नेता लोग सरकार में थे। सरदार पटेल ने कहा कि अब कोई किसी की रक्षा नहीं कर सकता। पुलिस, सेना किसी की रक्षा नहीं कर सकती। आप लोग स्वयं अपनी-अपनी रक्षा करो। किसने कहा था? लगभग सबसे शक्तिशाली मंत्री ने। यह स्थिति समाज में आती है, शासक देखता रहता है, कुछ नहीं कर सकता, आज यह स्थिति आ रही है। यह बढ़ेगी। ऐसे समय समाज ही समाज को टिकाए रखता है और इस परिस्थिति में से निकाल ले जाता है। यह गुण ईश्वर कृपा से अपने समाज में रहा है। उसके विवरण में मैं नहीं जाऊंगा। भगवान् किस पर दायित्व डालता है, कौन सा दायित्व डालता है, पता नहीं। हम पर यह दायित्व आया है।

ध्येय निष्ठा

सब कठिन परिस्थितियों के बावजूद हमारा यह अभियान आगामी पंद्रह सालों में देश भर में फैल जाएगा। कैसे फैलेगा? हमारे यहां एक बड़ी महान् गुरु-शिष्य की परंपरा है। गुरु किसी शिष्य को कब स्वीकार करता है, मुझे पता नहीं था। इस संदर्भ में एक घटना बताता हूं। मैं माना पास जा रहा था तो मैंने देखा कि चौदह हजार फुट ऊंचाई के आगे पत्थरों की एक गुफा बनी हुई थी। मानव ने नहीं बनाई थी, प्राकृतिक थी। उसमें एक व्यक्ति ध्यानस्थ बैठा हुआ था। यह सन् 1977 के जून की बात है। मेरी डायरी में लिखी है। मैं फोटो भी लेना चाहता था। मेरे पास कैमरा था, लेने नहीं दिया। मुझे ताज्जुब हुआ कि यह यहां बैठा हुआ है। जहां चिड़िया भी उड़ती दिखती नहीं है। चारों तरफ बर्फ है, यह कब तक रहेगा, क्या कर रहा है? मैं तो सेना के जवानों के साथ जा रहा था। वहां अपनी मरजी से कोई जा नहीं सकता। सारा इलाका सेना के अधिकार में है। बिना सेना के देश का साधारण व्यक्ति वहाँ नहीं जा सकता। मैंने व्यवस्था कर ली थी। तो सेना के ही दो जवान और एक सरकारी अधिकारी, ऐसे तीन लोग मेरे साथ थे। उनको सूचना मिली थी कि इनको ठीक से ले जाना है, जो कहे सो मानना है। तो हम उनके सबसे बड़े अतिथि बने हुए थे। मैं गुफा के पास जाने लगा तो वे कहने लगे, आप क्यों जा रहे हैं? मैंने कहा, मैं जाऊंगा। उन्होंने कहा, देर हो जाएगी, मैंने कहा, हो जाने दो, बर्फीला तूफान आएगा, मैंने कहा, आने दो। दो दिन बर्फ पर सोया, कुछ तकलीफ नहीं हुई। साधु तपस्वी ने आंखें खोली तो मुझे देखा और कहा, कौन हो तुम? किस काम के लिए आए हो? ऐसा लगा कि मानो काटने के लिए दौड़ा है। मैंने कहा, स्वामीजी, मैं बदरीनाथ से निकला था तो मैं समझ नहीं पा रहा था कि जिस किसी ने इसको तीर्थस्थान बनाया, उसको पता कैसे चला कि यहां ही गरम पानी का कुंड है। मन में आया कि आपके जैसा तपस्वी ही बता सकता है। बाकी मुझे कुछ नहीं चाहिए, मैं चला जाऊंगा। तो वह तपस्वी सबकुछ मुझे अंग्रेजी में बताने लगा। उसने कहा, तुम जानते नहीं हो, हिंदुस्थान की परंपरा बड़ी अजब है। हिंदुओं में बिना गुरु के कोई अपना जीवन नहीं चलाया करता था। गुरु शिष्य को पर्वत से लेकर समुद्र तक भेजता था। जाओ, सारा वर्णन लेकर आओ। जब शिष्य इस परीक्षा में खरा उतरता था, तभी उसे स्वीकार किया जाता था। यही ज्ञान पाने और फैलाने का आधार था। हमको इस परंपरा को, इस अध्ययन को सारे देश में फैलाना है। किसके द्वारा? परिवार और

विराट पुरुष

पति-पत्नी द्वारा। हम, महेशजी और कुछ लोग आपस में बातचीत कर रहे थे। हमारी संख्या दस से बढ़ नहीं रही, और यहां पति-पत्नी और भी कई, जिनके पति नहीं आ पाए, जिनकी पत्नी नहीं आ पाई, वे सब पंद्रह हो गए हैं। मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ। पहले दिन मैं बड़ा खुश हो गया। मैं बोल नहीं सकता था, मन की यह बात थी। आज संयोग से कह रहा हूं, किंतु यह इतना गंगा जैसे प्रवाह का उद्गम क्या है? भगवान् की दया से मैंने कई बड़ी-बड़ी नदियों का उद्गम देखा है। उद्गम बहुत छोटा सा है, लेकिन इस धरा को व्याप्त कर सकती है, जैसे गंगा का प्रवाह। मैं आपके सामने दिल की बात इसलिए कह रहा हूं कि आपके अलावा मेरा कोई नहीं है, जिसके सामने मैं अपना दिल खोलूं। आत्मीयता की दृष्टि से आप मुझे समझेंगे। आपने स्वयं इस राह पर चलना स्वीकार किया है। जो कर नहीं सकूंगा, वह दूसरे को करने के लिए भी नहीं कहूंगा। हम अपनी स्वयं की प्रताड़ना न करें। आत्म-प्रताड़ना क्या होती है कि कोई भी गड़बड़ी हुई कि खटाक से प्रतिक्रिया होती है। आदमी किसी-न-किसी को दोष देता है। यह गुलामी का लक्षण है। गुलामी में उत्तरदायित्व विहीनता का स्वभाव बनता है। देश राजनीतिक दृष्टि से आजाद नहीं है। इस कारण यह दो साम्य लगभग सब में है। मेरे में भी है। मैं रोज देखता हूं, अनुभव करता हूं, और मैं उसको दूर करने में लगा हूं। मैं वही साधना कर रहा हूं। मेरी डायरी में लिखा रहता है कि आज मेरे से क्या गलती हुई। दोष मेरा था, लेकिन मैं दूसरे को दे रहा था। मैं लिखता हूं, भगवान् की दया से और उसके कारण कुछ-न-कुछ सुधार होता है। तो हम स्वयं को धोखा न दें। ईमानदारी से समाज शिल्पी या समाज शिल्पी परिवार बनने का अपने मन में संकल्प लें।

अब दूसरी चीज मैं इसके साथ जोड़ता हूं, वह है संकल्प को व्यवहार में लाना। हमारा जो ध्येय है और हमारे जो प्रियतम संबंध हैं, इन दोनों में तनाव पैदा होता है। फिर पलड़ा आम तौर से प्रियतम लोगों के लिए भारी होता है, ध्येय के लिए नहीं होता। किंतु मैं ध्येयवादी हूं, यह दिखाने का मानस रहता है और उसी में आदमी अपने को धोखा देता है। थोड़ा सा काम हो पत्नी का या बच्चे का तो ध्येयवाद एक तरफ रह जाएगा। क्या बिना बाप के, बिना मां के बच्चे अपना भविष्य नहीं बना सकते? मैं हूं उसमें से। मैंने अपना भविष्य बनाया नहीं? कोई अभाव किसी प्रकार का खटकता नहीं। सारी सुविधाएं किसी को फायदा नहीं देती। अपने गलत ढंग के प्यार के कारण हम किसी को पुरुषार्थी नहीं बनाना चाहते।

ध्येय के साथ एकरूपता

अपने को यह सोचना होगा कि मेरा मन, मेरी बुद्धि, और मेरा आचरण, कृति, व्यवहार यह मैं अपने ध्येय के साथ तादात्म्य करूंगा। इसका अर्थ यह नहीं कि पति को पत्नी से प्यार नहीं करना चाहिए, इसका अर्थ यह नहीं कि पत्नी को पति से प्यार नहीं करना चाहिए, इसका अर्थ यह नहीं कि माता-पिता को अपने बच्चे को प्यार नहीं करना चाहिए। अर्थ यह है कि मेरे अपने जो हैं, उन सबको अपने ध्येय के साथ अभिन्न बनाऊंगा। यदि नहीं बना सकता तो भी मैं अपने ध्येय से दूर नहीं हो सकता। परिणाम चाहे जो निकले। अब आपको मेरा यह कहना बड़ा अव्यावहारिक भी

समाजशास्त्री

लग सकता है, लेकिन आप विचार करेंगे तो धीरे-धीरे समझ में आएगा। बहुत उदाहरण हैं इसके भी, मैं इन उदाहरणों के चक्कर में नहीं जा पड़ता। प्यार आदमी को ऊंचा उठाकर ले जा सकता है। हमें अपनी बुद्धि ठिकाने रखनी है और यह सोच बनानी है कि मेरे लगाव के या आत्मीयता के फलस्वरूप और मेरे मन में पत्नी की हर बात के लिए जो चिंता है, व्यथा है, उस कारण मैं उसको अपने ध्येय के साथ एकरूप बनाऊंगा, साथ ही यह सोच भी बनानी है कि मेरी बेटी, मेरा बेटा, ये सब मेरे ध्येय के मार्ग में मुझे अधिकाधिक बल पहुंचाने के लिए हैं। मैं परमात्मा से एकरूप हूँ, मैं ध्येयवाद से एकरूप हूँ, यदि यह भावना रही तो आदमी को फिर कष्ट नहीं होता। वरना जीवन में कष्टसाध्य मार्ग तो बार-बार सामने आते ही हैं।

अपने मन की व्यथा आज कहता हूँ। मैं घर बार छोड़कर के चला गया था। मेरे बड़े भाई साहब की बेटी की शादी हुई, मुझे याद नहीं किया। लेकिन जब पत्नी चल बसी तो मुझे याद किया। उन दिनों मुझ पर ओ.टी.सी. का दायित्व था, इसलिए नहीं जा पाया। किंतु उधर उनका 7-8 साल का बेटा भी बीमार पड़ गया। उसने भी प्राण छोड़ दिए। हमारा सारा परिवार वहां था। क्योंकि हमारा परिवार बड़ा अभिन्न था। अब जाने का दायित्व निभाना था। 1942 में संघ शिक्षा वर्ग का तृतीय वर्ष भी पूरा करना था। तो घर पहुंचा तीन तारीख को रात्रि में साढ़े आठ बजे। पांच तारीख को नागपुर ओ.टी.सी. में भी पहुंचना था। घर पहुंचा तो लोगों को समाधान तो हुआ किंतु गालियां भी खूब पड़ीं। लेकिन मन में यह कि सुबह साढ़े तीन-चार बजे निकलना है, नहीं तो नागपुर नहीं पहुंच पाऊंगा। ग्यारह बजे तक रोना-धोना, आग बबूला होना, यही चलता रहा, किंतु बड़े भाई के सामने हम मुंह नहीं खोलते थे। पुराने जमाने की मर्यादा थी। मैंने बंदू के पिता से कहा कि आबा, तू बात करेगा। समय निकला जा रहा था। आबा की हिम्मत नहीं हो रही थी, तो मैंने लगभग साढ़े ग्यारह-बारह बजे कहा कि भाई साहब, मुझे सुबह करीब चार बजे पैदल निकलना पड़ेगा। सब लोग जगे थे, लगभग सबने क्या-क्या कहा होगा, भाई साहब की क्या स्थिति थी, आप कल्पना करो। ऐसे प्रसंग जीवन में कष्टदायक नहीं बनने चाहिए। आज परिवार के लोग मेरी इज्जत करते हैं, प्यार करते हैं। मेरे जैसे आदमी का दिल भर आता है। एक बार अंत में कहता हूँ कि हम कोई-न-कोई आदर्श लेकर चल रहे हैं। इसलिए हमारा समय इसमें लगेगा। हमारे नातेदार, रिश्तेदार उनकी अपेक्षाएं अलग होंगी। उनकी समझ में आनी चाहिए कि यह तो काम में लगा रहता है तो उनको बुरा न लगे, वे चाहे दस दिन रहें, चाहे पंद्रह दिन रहें। इसका अपने को विचार करना होगा। प्रारंभ में पांच परिवार समाज शिल्पी के रूप में विकसित करने के लिए अपने लिए लें। चाहे जितना बड़ा कार्यकर्ता होगा, चाहे जितना भी आत्मविश्वासी होगा तो भी बहुत जल्दबाजी की कोई आवश्यकता नहीं। किंतु मेरा इतना ही कहना है कि देश में चल रही सारी परिस्थितियों से बचाकर अपने समाज को चलाना है।

□

समाजशिल्प तप से निखरेगा

आज की परिस्थितियों में मानव जीवन अनेक चुनौतियों से घिरा है। उन चुनौतियों को समझकर इनका मुकाबला करने से ही मानव विकास के लक्ष्य तक पहुंच सकता है। व्यक्ति विकास का माध्यम 'परिवार' है। परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। व्यक्ति का विकास करना है तो परिवार का विकास करना होगा। व्यक्ति और समाज के बीच परिवार खड़ा है। परिवार में समाज के प्रति कर्तव्य भाव जागे, यह वातावरण बनाना है। अच्छे परिवार के बिना समाज अच्छा नहीं होगा। समाज परिवर्तन के कार्य को परिवार संभाले—इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर समाज शिल्पी परिवार की कल्पना को मूर्त रूप दिया जा रहा है। प्रत्येक परिवार को समाज की आधारभूत इकाई बनकर इस पर विचार करना है। समाज शिल्पी का हमें नाटक नहीं करना है। हम चाहते हैं, समाज शिल्पी परिवार के पति-पत्नी तपस्वी बनें। समाज को अच्छा बनाना हमारा लक्ष्य है। समाज को ऐसा उन्नत बनाना है, जो संसार के लिए अनुकरणीय हो।

यह वह सपना नहीं है, जो कभी साकार नहीं होगा। इसके लिए युवा दंपतियों को अपनी संतान सुयोग्य बनानी होगी। समाज शिल्पी परिवारों की संख्या भी बढ़ानी होगी। अपने आचरण से ध्येय को प्रतिबिंबित करना है। लोगों को समझाना व उन्हें प्रेरणा देनी है। मैं अपने लोगों को प्रेरणा नहीं दूंगा तो दुनिया में फिलॉसफी झाड़ने से काम नहीं चलेगा। समाज के लिए कार्य करने से आत्मिक शक्ति मिलती है। विफल होने के बाद भी शक्ति मिलती है, जिससे जितना संभव हो, उसे समाज के लिए कुछ करना चाहिए। विफलता की चर्चा दिल खोलकर करने से भी आनंद मिलता है। सौ व्यक्तियों के लिए प्रयास करके 5 या 6 को भी कार्य दे पाएं तो सफलता ही समझनी चाहिए। शुरु में सफलता कम, विफलता अधिक मिलती है, परंतु कुछ काल के बाद सफलता मिलनी शुरु हो जाती है। यदि विफलता से निरुत्साहित होकर प्रयास छोड़ दिया तो ध्येय के साथ खिलवाड़ हो जाएगा।

विघटन का कारण अर्थ-प्रधानता

मानव अर्थ-प्रधान बन गया है। अर्थ-प्रधानता विघटन का कारण बनता है। मानव को मानवीयता से विभूषित होना चाहिए। हमारा लक्ष्य तो पूरा समाज है। हमें संपूर्ण समाज को अपना कुटुंब मानना है। हमें भावी पीढ़ी का रूप निखारना है तथा अपनी कमी को समझने के लिए

अहमदाबाद में आयोजित समाज शिल्पी शिविर 19-23 जून, 1989

समाजशास्त्री

आत्मनिरीक्षण करना है। आत्मनिरीक्षण किसी भी कार्यकर्ता का पहला अनिवार्य गुण है। गुण, धन, स्वच्छता तथा अच्छी आदत इन सभी अभावों की पूर्ति करनी है। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर संतान का पालन करना है। आस-पास के लोगों में जितना तादात्म्य होगा, उतना अच्छा होगा। प्रकल्प के लिए नए कार्यकर्ता तैयार करने होंगे।

हमें कोई-न-कोई प्रकल्प अपने हाथ में लेना है। मैं डॉक्टर हूँ तो मलहम पट्टी करने से छुट्टी नहीं होगी। हमें कुछ सामाजिक दायित्व निभाने होंगे। कालानुसार व्यवस्थाओं को रूपांतरित करना भी युगधर्म का कार्य है। अंग्रेजों के समय हमारे यहां जाति प्रथा ने अपना भयंकर रूप दिखाया। यह रोग हमारे समाज को दीमक की तरह अंदर से खोखला कर रहा है। अनेक समाज-सुधारकों ने ये कार्य करके समाज की अमूल्य सेवा की है। सामाजिक संरचना में कोई-न-कोई व्यवस्था बनाए रखना आवश्यक होता है। परंतु जाति व्यवस्था एक व्यवस्था न रहकर समाज के विघटन का कारण बन गई है। जाति व्यवस्था से स्वार्थपूर्ति हेतु लाभ उठाया जा रहा है। अतः जातिवाद उग्र होता जा रहा है। किसी समय में जाति व्यवस्था जीविकोपार्जन का साधन थी। अतः तोड़ी नहीं जा सकती थी, परंतु अब अर्थोपार्जन की दौड़ लगी हुई है। शिक्षा ने भी मानसिकता को बदल दिया है। अब ब्राह्मण का बेटा जूता बेचता देखा जा सकता है। पहले ब्राह्मण किसी की नौकरी नहीं करते थे। अब धंधा जाति के अनुसार नहीं किया जा रहा है, परंतु जातिवाद घटने का नाम नहीं ले रहा है।

सन् 1952 के चुनाव के बाद राजनीति के कारण देश में जातिवाद अधिक व्यापक हुआ है। लक्ष्य हो गया है चुनाव जीतना। समाज बरबाद होता है तो होता रहे। जाति व्यवस्था कालबाह्य हो गई है, परंतु स्वार्थी तत्त्वों ने उसका दामन पकड़ा हुआ है। हम जाति व्यवस्था को तोड़ने की बात नहीं कर रहे हैं। समाजसेवा जाति व्यवस्था के मूल में थी। हमें कोई नकारात्मक कार्य हाथ में नहीं लेना है। कुप्रथा के नाम पर न रोते हुए उसके स्थान पर सुप्रथा का विकास करना है। दीनदयाल शोध संस्थान एक परंपरा खड़ी कर रहा है। कोई चीज खराब कहकर काम नहीं चलेगा, अपितु उसकी जगह युगानुकूल सुप्रथाएं व्यवहार में लाने से कुप्रथाएं स्वयं धीरे-धीरे मिट जाएंगी।

समाज शिल्पी परिवारों के इस स्वाध्याय शिविर में दो प्रकार के लोग हैं। एक, वे जो प्रौढ़ हैं और कार्य कर रहे हैं। दूसरे, वे जिन्होंने कार्य शुरू किया, बाद में उनकी शादी हुई व आगे संतान हुई। समाज शिल्पी परिवार का नन्हे बच्चों के प्रति क्या दायित्व है? इस पर भी विचार करना है। इन बालकों का समुचित विकास होना चाहिए। इसकी व्यवस्था कैसे करें? समाज शिल्पी अपने कार्य के प्रति संदेहशील रहकर समाज शिल्पी नहीं बन सकता। साधन में संदेह होने से लक्ष्य के प्रति भी संदिग्धता उत्पन्न होती है। गीता संदेह को अच्छा नहीं मानती। स्वयं के विकास के लिए संदेह बाधा है। बच्चे को समाज के लिए पूरक बनाना है। उसे कैसा व्यवहार सिखाएं, क्या दिखाएं, कहाँ घुमाएं—इन सब बातों पर विचार करना है। हमें अनेक कार्यक्रम तथा प्रयोग हाथ में लेने होंगे। हमारे प्रकल्प स्वास्थ्य, अर्थ, शिक्षा सभी से जुड़े होंगे। इस सबको करते हुए हमें ध्यान रखना है कि हमें क्या करना है। हर व्यक्ति समाज के लिए पूरक बने। हमारे 6 केंद्रों के अतिरिक्त भी जहां दीनदयाल शोध संस्थान का कार्यकर्ता होगा, वहां अधिक-से-अधिक परिवार आपस में मेलजोल करके रहें, यह देखना है।

□

सामाजिक पुनर्रचना पथ युगानुकूल हो

गोडा, बीड तथा सिंहभूम जिलों में दीनदयाल शोध संस्थान के ग्रामोदय प्रकल्प चल रहे हैं। उनमें कृषि-विकास, पशुपालन, वृक्षारोपण, ग्रामोद्योग प्रशिक्षण, स्वास्थ्य संवर्धन, शिक्षा प्रसार, सुसंस्कार आदि कार्यक्रम अपनाए गए हैं। डोमरी ग्राम के निकट सोनदरा तालाब के तट पर अपना गुरुकुल विकास कर रहा है। नागापुर नगर में बाल-जगत्, मेरी बचत, चित्रकला प्रतिस्पर्धा, व्यक्तित्व-विकास आदि तथा औरंगाबाद में बाल-वाचनालयों का कार्य चलता है। अभी-अभी चित्रकूट धाम में 'चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय' का शिलान्यास संपन्न हुआ है।

देश के विभिन्न भागों में अनेक स्वयंसेवी संस्थाएं पहले से ही इस प्रकार के कार्य कर रही हैं। जहां तक कार्यक्रमों की बात है, उसमें हमारी कोई खास विशेषता है, ऐसा नहीं कहा जा सकता; किंतु दीनदयाल शोध संस्थान इन कार्यक्रमों के द्वारा गरीब, पिछड़े व उपेक्षित नागरिकों को अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचाने मात्र तक अपने को सीमित नहीं रखता।

युगानुकूल आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पुनर्रचना की प्रक्रिया चलते रहना समाज की अनिवार्यता है। अन्यथा उस समाज की सभ्यता एवं संस्कृति कुंठित होने लगती है। उन्नति की गति अवरुद्ध होती है। परिणामतः पतन प्रारंभ होता है। दुर्भाग्य से अपने समाज में इस प्राणदायी कार्य की सदियों से उपेक्षा हुई है। दीनदयाल शोध संस्थान ने इसी उपेक्षित कार्य को अपने हाथ में लिया है। हम अपने सभी कार्यक्रमों को युगानुकूल पुनर्रचना का साधन मात्र मानते हैं। दृश्य रूप में हमारे तथा अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यक्रमों में अंतर न दिखाई दे, किंतु गंतव्य की दृष्टि से बहुत बड़ा अंतर है। इसी कारण हमें विशेष ध्यान रखना होगा कि अपने विभिन्न कार्यक्रमों में सम्मिलित सभी बालक-बालिकाएं, युवक-युवतियां एवं महिला-पुरुष युगानुकूल आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना के प्रभावी माध्यम बनें।

मानव विकासशील प्राणी है। उसे जो कुछ उपलब्ध है, उसी में संतोष करना उसका स्वभाव नहीं है। अधिक सुविधाएं प्राप्त करने में तथा उन्नति के लिए अपनी क्षमता व गति बढ़ाने में उसका मस्तिष्क लगा रहता है। समाज के हर व्यक्ति के जीवन में यह बात अवश्य प्रगट न होती हो,

किंतु समाज में ऐसे ही कुछ प्रतिभासंपन्न एवं कर्तृत्ववान व्यक्ति इन कार्यों में लगे रहते हैं। इसी प्रक्रिया से वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति होती है।

गत कई शताब्दियों से भारत पराई हुकूमत में जकड़ा हुआ था। दो-ढाई सौ सालों की हमारी इस गुलामी की अवस्था के काल में पश्चिमी देशों में विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में विस्मयकारी प्रगति हुई है। भारत पर उन्हीं का प्रभाव रहा है। अतः स्वाभाविक ही था कि उस काल में भारत में प्रगति के नाम पर जो कुछ हुआ, उसकी दिशा वह ही रही, जो पराए शासक चाहते रहे। वस्तुतः स्वराज्य प्राप्ति के बाद भारत के नेतृत्व को अपनी परंपरा, सभ्यता व सांस्कृतिक विशेषताओं को समझना और तदनुसार अपनी प्रगति की दिशा व मार्ग निश्चित करना चाहिए था। इसके लिए महात्मा गांधी ने तत्कालीन नेतृत्व को सतर्क भी किया था, किंतु उसका अपेक्षित प्रभाव नहीं हुआ।

हमारी सभ्यता अनुभव संपन्न

पश्चिमात्य औद्योगिक क्रांति के कारण मानव की गति एवं गतिविधियों में कल्पनातीत प्रगति हुई है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी आविष्कार बहुत हुए हैं। उत्पादनों के साधन अधिकाधिक विशाल होते गए हैं। छोटी-छोटी आबादियों के स्थान पर बड़े-बड़े शहरों की संख्या बढ़ी है। उत्पादन का केंद्रीयकरण हुआ है। मशीनीकरण मानवीय जीवन पर हावी होता गया है। द्रुतगति से अधिकाधिक उत्पादन आधुनिक काल की कला बनी है। प्राकृतिक संपदा मानव के ही उपभोग के लिए उपलब्ध है, यह धारणा बनी है। अतः प्रकृति के शोषण की प्रक्रिया बहुत तेज हुई है। आर्थिक समृद्धि ही प्रगति एवं प्रतिष्ठा का विषय बनी है। उसी में से उपभोगवाद की सृष्टि हुई है। यही है पश्चिम में उपजी आधुनिक संस्कृति। संसार के सभी देश उसी दिशा में गतिमान हैं।

पश्चिम के देश हमारी तुलना में नए हैं। उनकी सभ्यता व संस्कृति अधिक अनुभव संपन्न नहीं है। उपभोग पर आधारित आर्थिक समृद्धि के दुष्परिणामों से वे ठीक से परिचित नहीं हैं। वे नहीं जानते कि उपभोगवाद की कोई सीमा नहीं रहती। उपभोगवृत्ति मानव को संवेदनहीन बनाती है। मानवीयता से वह वंचित हो जाता है। व्यक्तिवाद उस पर हावी होता है। सामाजिकता लुप्त होती है। समाज में असंतुलन, अव्यवस्था, अशांति व अराजकता पनपती है। जिसकी लाठी उसकी भैंस का जंगली जीवन प्रभावी होता है। पश्चिम की राह पर चलकर आजादी के गत चौवालीस साल में ही भारत इस संकटग्रस्त अवस्था में पहुंचा है।

इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से छुटकारा पाकर अपनी पूर्व-पुरातन किंतु नित्य-नूतन संस्कृति के आधार पर अपने समाज की पुनर्रचना कर उसे ठीक दिशा में गतिमान करने के लिए ही हम सब मिलकर दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य में संलग्न हैं।

इसका अर्थ यह नहीं है कि संसार में हुई वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति से हम अपना मुंह मोड़ना चाहते हैं—जीवनोपयोगी नूतन साधनों का तिरस्कार करने पर हम उतारू हैं—आधुनिक दुनिया से अपने को अलग-थलग रहने की हमारी मनीषा नहीं है। यह सत्य है कि हमारी अपनी विशेष जीवन-दृष्टि है। उस जीवन-दृष्टि के आधार पर आधुनिक काल में प्रगति करने के लिए

विराट पुरुष

हम आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पुनर्रचना करना चाहते हैं।

अपना सनातन जीवन-दर्शन सिखाता है कि सृष्टि में मानव ही अकेला प्राणी नहीं है। अनेकानेक प्राणियों में से वह एक है। निसर्गजन्य प्रत्येक चर-अचर अस्तित्व का अपना-अपना धर्म है। किसी का भी अस्तित्व उद्देश्यहीन नहीं है। इस वस्तुस्थिति की अनुभूति के आधार पर अपना समुचित विकास करना ही मानवधर्म है।

निसर्ग निर्मित पेड़-पौधे स्वभावतः मानव निर्मित दूषित वायु को ग्रहण कर प्राणवायु का सृजन करते हैं। इसी कारण मानव जीवन धारण किए रहता है। वृक्ष एवं मानव में परस्पर पूरकता की यह प्रकृतिप्रदत्त प्रक्रिया अखंड रूप से चलती है। इसी परस्पर पूरकता के नैसर्गिक सिद्धांत पर संपूर्ण विश्व टिका हुआ है। प्रकृति की इन रहस्यमय गतिविधियों को समझकर, उनमें बिना बाधा पहुंचाए, भारतीय संस्कृति अपना चतुर्दिक् विकास करती आ रही है। इसी संस्कृति ने अनंतकाल से प्राकृतिक स्रोतों के प्रति मानव मन में कृतज्ञता की भावना प्रस्फुटित की है। यह ही इस संस्कृति की विशेषता है, जिस कारण वह मानव संस्कृति का स्थान पा सकी थी।

प्राकृतिक जीवन की उपेक्षा

पश्चिम में हुई औद्योगिक क्रांति ने अपनी भोगप्रवण प्रगति की हवस में उपर्युक्त प्राकृतिक जीवन की सर्वथा उपेक्षा की। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में विस्मयकारी आविष्कारों के बावजूद दोहन के स्थान पर शोषण, प्राकृतिक संसाधनों को बढ़ाने के स्थान पर उनके विनाश, स्वस्थ एवं स्वच्छ वातावरण को बढ़ाने के स्थान पर प्रदूषण, संतुलन एवं समता के स्थान पर विषमता, परस्पर सद्भावना व सहयोग के स्थान पर विद्वेष, मानवीयता के स्थान पर दानवीयता अर्थात् नवनिर्माण के स्थान पर भयंकर प्रलय के मार्ग पर बड़ी तेज गति से बढ़ रहा है।

प्रगति के नाम पर मानव की इस अवनति से स्व. पं. दीनदयालजी व्यथित हुए। यह देखकर कि इस दानवीय दिशा को मानवीय दिशा देने के स्थान पर नवस्वतंत्र भारत भी उसी दिशा को अपनाए हुए है, वे अत्यधिक पीड़ित हुए। भारत की संतान ही अपने परंपरागत अनुभवसिद्ध जीवन-दर्शन के प्रतिकूल दिशा में चल पड़ी तो केवल भारत का ही नहीं, मानव मात्र का भविष्य भी अंधकारमय होगा, यह समझकर उन्होंने मानव जीवन को ठीक दिशा देने के लिए भारतीय समाज को सिद्ध करने की ठान ली।

उन्हें अविचल विश्वास था कि अपनी युगयुगों की कसौटियों पर खरी उतरी उदात्त संस्कृति के संस्कार, सुप्तावस्था में ही क्यों न हों, भारत की संतान के रक्त में विद्यमान हैं। उन्हें चालना मिली तो वे पुनः प्रवहमान हो सकते हैं। उसी से मानव मात्र पर आए हुए दानवीय संकट से मुक्त हुआ जा सकता है। मानव समाज फिर से मानवीयता के प्रकृतिजन्य मार्ग पर अग्रसर होकर विश्वकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर सकता है।

इसी एक आकांक्षा से उन्होंने भारतीय मानस को मानवीय विशेषताओं से अभिभूत करने की दिशा में कदम बढ़ाया। मानव के चतुर्दिक् व्यक्तित्व को फिर से प्रस्तुत किया। उन्होंने सुगम

समाजशास्त्री

वाणी में कहा कि मानव को अन्य शरीरधारी प्राणियों के समान केवल आहार, निद्रा, भय तथा मैथुन की प्रक्रियाओं तक सीमित रहने के लिए जन्म नहीं मिला है। शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का वह समन्वित एकात्म रूप है। शरीर धर्म के साथ-साथ उसमें अन्य अद्वितीय विशेषताएं हैं। आकलन की, कल्पकता की, अपनी कल्पनाओं को साकार करने की, प्रकृति के रहस्यों को खोजने की, दूसरों के प्रति संवेदना की, चराचर में आत्मतत्त्व के दर्शन की आदि असीम क्षमताओं से मानव एक परिपूर्ण प्राणी है। रचनात्मकता उसका स्वभाव है।

इन ईश्वरप्रदत्त गुणनिधि के होते हुए वह केवल वासना तृप्ति में व अपने संकुचित दायरे में ही जकड़ा रहा तो उसकी क्षमताएं ही बेकार नहीं होंगी, अपितु वह प्रदूषणकारी व विनाशवादी दानव बन जाएगा। यह दिशा अपने कुल के अनुकूल नहीं है। अपना परंपरागत कुलधर्म मानव को मानवीयता से विभूषित करने का है। इसी आकांक्षा को साकार करने के लिए दीनदयाल जी ने एकात्म मानव दर्शन को गढ़ा। उसे साकार करने में वे जी-जान से जुट गए। दुर्भाग्य से उन्हें असमय ही क्रूर काल ने अपने गाल में समा लिया। उनकी अधूरी आकांक्षा को दीनदयाल शोध संस्थान के माध्यम से साकार करने का दायित्व हम सबने स्वेच्छा से स्वीकार किया है।

वर्तमान काल में दीनदयालजी के स्वप्न को साकार करने के लिए हमें कहीं भी अनुकूल वातावरण मिल पाना बहुत कठिन है। उनके बताए मार्ग पर अगर हम नहीं चले तो विद्वता से विभूषित लोगों, प्रसिद्ध विचारकों, लोकप्रिय साहित्यकारों, विख्यात कथाकारों, प्रवचनकर्ताओं, तर्कशास्त्रियों और जननेताओं के व्यावहारिक व पारिवारिक जीवन में भी अपेक्षित अनुकूलता शायद ही मिलेगी। विद्यालयों या विश्वविद्यालयों तथा अध्यापकों या प्राध्यापकों के जीवन का रूप भी इससे भिन्न नहीं है। हमारी उदात्त परंपरा का कोई अंश शेष है, तो वह है केवल उपदेशात्मकता का, जो कथनी और करनी की असंबद्धता बढ़ा रहा है। किंतु इस प्रतिकूलता में ही अनुकूलता का अंकुर विद्यमान है। मानव सुशिक्षित हो या अशिक्षित, धनी हो या निर्धन, शहरी हो या ग्रामीण, महिला हो या पुरुष, प्रौढ़ हो या बालक, उसके अंतःकरण में अपनी सनातन जीवन-दृष्टि के प्रति आज भी संवेदना कायम है। यही अपनी परंपरागत पूंजी है। इसके सहारे हम दीनदयालजी के सपने को साकार करने में समर्थ हो सकते हैं।

दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा अपनाए गए विभिन्न कार्यक्रमों में सम्मिलित सभी आयु के लोगों का उपर्युक्त दिशा में सर्वांग परिपूर्ण विकास करने की विधियां हमें विकसित करनी हैं। यही अपने कार्यक्रमों की विशेषता बनेगी। सर्व साधारण व्यक्ति का व्यक्तित्व उपलब्ध वातावरण के अनुसार ढलता है। वस्तुतः परिवारों में या पास-पड़ोस में, विद्यालयों में या दफ्तरों में, बाजारों में या कारखानों में, बसों में या ट्रेनों में, खेल के मैदानों में या मनोरंजन के केंद्रों में अर्थात् सब उपलब्ध वातावरण में हर एक व्यक्ति अपने ही हित में संलग्न दिखाई देता है। परस्पर पूरकता का वहां नामोनिशान नजर नहीं आता। अतः हर एक को अपना ही हित गांठने की चिंता होती है। मेरा हित किसी के अहित का कारण न बने, इसकी उसे परवाह नहीं रहती। यही असामाजिकता व अमानवीयता है, जो अपने समाज की वर्तमान दुर्दशा का कारण है।

विराट पुरुष

इतनी लंबी-चौड़ी चर्चा इसलिए करनी पड़ी कि हम सबके आसानी से ध्यान में आए कि हम लोग किस प्रकार की परिस्थिति से घिरे हुए हैं और किस दिशा में गतिशील होना चाहते हैं। हमने स्व. दीनदयालजी के सरल शब्दों में मानव की विशेषताओं को समझने का प्रयास किया है। तदनुसार हम सब लोग किस प्रकार आगे बढ़ें, यह हमें सोचना है। हम अपनी ध्येयसिद्धि के लिए अपनी कथनी और करनी में एकरूपता लाना आवश्यक मानते हैं। अतः हम लोग मानव की मानसिकता को समझने का थोड़ा सा प्रयास करें।

इच्छा के अनुसार पर्याप्त खाने-पीने को मिलने मात्र से मानव संतुष्ट नहीं होता। उसकी प्यार पाने की भूख बनी रहती है। किंतु पुरुष को स्त्री से या स्त्री को पुरुष से प्राप्त प्यार से भी उसकी भूख नहीं मिटती। उसके अंतरतम में दूसरों से भी प्यार की अर्थात् अपनी सराहना की चाह रहती है। यही मानसिकता उसे उपभोग की प्रक्रियाओं में भी दूसरों की कोमल भावनाओं का आकलन करने की क्षमता प्रदान कराती है। इसी से उसमें दूसरों से तादात्म्य पाने की प्रेरणा अंकुरित होती है। इस प्रेरणा में से ही राम को, सीता के वियोग के बावजूद, बहुविवाह प्रथा प्रचलित होते हुए भी, एक पत्नीव्रत पालन करने की क्षमता व सीता को असंख्य यातनाएं सहते हुए भी एक पतिव्रत का आदर्श प्रस्तुत करने की सामर्थ्य प्राप्त हुई। इससे स्पष्ट होता है कि मानव ने मूलतः चराचर से तादात्म्य पाने के लिए ही इस अवनीतल पर जन्म पाया है। अतः उसमें जन्मतः अनंत क्षमताएं विद्यमान हैं। अन्यथा एक ग्वाल बाल कृष्ण पूर्णावतार के रूप में हमें न मिलता।

इसी मानसिकता ने उपलब्ध बुद्धि एवं आत्मा का सम्मिलित सामर्थ्य पाकर व्यक्ति परिवार, समुदाय व समाज की परस्पर-पूरक रचना खड़ी की है। हमें अपनी कार्यसिद्धि के लिए उन तत्वों को समझना आवश्यक है, जिन पर अपने सनातन समाज का ढांचा खड़ा हुआ था।

□

परस्पर-पूरकता हिंदू दर्शन का आधार

भगवान् ने ब्रह्मांड का निर्माण किया। उसमें कई ग्रह और तत्व विद्यमान हैं। पृथ्वी, जिस पर हम अनंत काल से रह रहे हैं, उन्हीं में से एक है। विश्व में स्थित सभी तत्व गतिशील हैं, फिर भी वे एक-दूसरे से टकराते नहीं। कारण, प्रकृति की रचना परस्पर पूरकता के आधार पर हुई है।

सृष्टि में जन्म पानेवाले मानवेतर प्राणियों में नवरचना करने की शक्ति नहीं है। वे स्वभावतः प्रकृति द्वारा निर्धारित जीवनक्रम से नियंत्रित हैं, किंतु मानव अपवाद है। वह विशेष बुद्धिवाला प्राणी है। अपनी बुद्धि तथा कर्मशक्ति के सहारे वह अपनी सुख-सुविधाओं के लिए स्वेच्छा से नवरचना करने की क्षमता रखता है। मानव की वासनाएँ अन्य प्राणियों के समान सीमित नहीं हैं, वे असीमित हैं। परिणामतः अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए वह ईश्वरप्रदत्त बुद्धि एवं कार्यकुशलता के द्वारा प्रकृति का दुरुपयोग कर नैसर्गिक संतुलन बिगाड़ सकता है। वह परस्पर पूरकता की प्राकृतिक संरचना में बाधा उपस्थित कर सकता है। अन्य प्राणियों एवं जीव-जंतुओं के अस्तित्व के लिए काल का कारण बन सकता है। अंततोगत्वा स्वयं के विनाश की भी स्थिति पैदा कर सकता है। आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति इसी दिशा में गतिशील है। ब्राजील के रियो डी जिनेरियो नामक खूबसूरत शहर में हुआ अंतरराष्ट्रीय पृथ्वी सम्मेलन इन्हीं दुष्परिणामों से मुक्ति पाने की चाह से आयोजित किया गया था।

हिंदू मनीषियों ने हजारों साल पूर्व उपर्युक्त संभावनाओं की कल्पना की थी। उसी कल्पना से हिंदू जीवन-दर्शन प्रस्फुटित हुआ था। परस्पर पूरकता के प्रकृतिप्रदत्त सिद्धांत के सुदृढ़ आधार पर उन्होंने मानव जीवन रचना (समाज रचना) खड़ी की थी। काल की कसौटी पर यह जीवन रचना सनातन अर्थात् शाश्वत सिद्ध हो रही है। किंतु अपनी शौर्यशाली परंपरा के बावजूद पराए आक्रमण की बाढ़ को रोकने में हम विफल हुए थे। स्वातंत्र्य-प्राप्ति के लिए संघर्षरत रहते हुए भी अपने देश व समाज को सदियों तक गुलामी में रहना पड़ा था। आक्रमणकारियों की सफलता व अपनी विफलता के दुष्परिणामों का अधिकांश लोगों की मानसिकता पर गलत प्रभाव पड़ा था। अपनी जीवन रचना के प्रति निष्ठा में कमी आई थी। इसी काल में पश्चिमी देशों में विज्ञान एवं

विराट् पुरुष

तकनीकी में आश्चर्यजनक प्रगति हुई। औद्योगिक क्रांति को जन्म मिला। भौतिक सभ्यता की धूम मची। विशालकाय कारखानों द्वारा उत्पादन में अत्यधिक वृद्धि हुई। समृद्धि के अंबार लगे। साम्राज्यों का विश्वव्यापी विस्तार हुआ। उपभोग की प्रेरणा ही इस तथाकथित प्रगति की आधारशिला रही। संपूर्ण दृष्टि मानव उपभोग के लिए ही है, यह गलत धारणा दृढ़ होती गई। इस घातक दिशा में विज्ञान एवं तकनीकी की द्रुत गति से प्रगति हुई। परस्पर पूरकता का नैसर्गिक सिद्धांत नजरअंदाज हुआ। प्राकृतिक संसाधनों का बेहिसाब शोषण होता रहा। इस उपभोगवादी दिशा के भयंकर दुष्परिणामों ने ढाई-तीन सौ साल में ही अनंत काल से टिकी हुई पृथ्वी को प्रलय के कगार पर पहुंचा दिया।

उपभोगवृत्ति की व्यापकता तथा विषमता का दानव

उपभोग के लिए शोषण की प्रवृत्ति प्राकृतिक संसाधनों के शोषण तक ही सीमित नहीं रही। समर्थ लोग बहुसंख्य मानव का निःसंकोच शोषण करने लगे। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' की जंगली जीवन-प्रणाली प्रगति की परिचायक बनी। दूसरों के शोषण पर अपने सुख-उपभोग का आनंद लेनेवाले व्यक्तियों, परिवारों एवं देशों को उन्नत मानने की अमानवीय कुप्रथा प्रतिष्ठा पाने लगी। परिणामतः महत्वाकांक्षाओं की देवता बनी—कांचन, कांता तथा सत्ता की त्रिमूर्ति। निरंतर बढ़ रही विषमता की विश्वव्यापी विभीषिका इसी भोगप्रवण जीवन-रचना का दुष्परिणाम है। अतः बहुसंख्यक अभावग्रस्त मानव के अंतःकरण में विद्रोह की अग्नि धधक रही है। संसार भर में पनप रहा आतंकवाद, हिंसाचार एवं बलात्कार विषमतापूर्ण सभ्यता की उपज है। विषमतापूर्ण अमानवीय जीवन-रचना के चलते किसी का भी शासन, किसी भी देश में शांति एवं व्यवस्था बनाए रखने में असमर्थ हो रहा है और होता रहेगा।

यह सांसारिक दुर्दशा जीवन-दर्शन के लिए चुनौती है। इस चुनौती को स्वीकारना भारत की हर संतान का परम कर्तव्य है। इस प्रलयकारी संकट का निवारण करना केवल भारत के लिए ही संभव है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का उद्घोष मानव हित के लिए अपने ही देश की देन है। हिंदू जीवन-दर्शन ने ही 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना को मानव जीवन का लक्ष्य बनाया था और तदनुसार सामाजिक जीवन रचना खड़ी की थी। मानव की अंतर्निहित संवेदनशीलता इस रचना की आधारशिला थी। मानव अन्य प्राणियों जैसा यथास्थितिवादी नहीं है। विकासशीलता उसकी विशेषता एवं निरंतर प्रगति उसका स्वभाव है। वासना एवं संवेदना—ये दोनों उसकी जन्मजात प्रवृत्तियां हैं। वासना उसे शारीरिक सुख तक सीमित रहने के लिए प्रवृत्त करती है। इसी प्रवृत्ति के प्रभाव में आनेवाला व्यक्ति स्वकेंद्रित अर्थात् व्यक्तिनिष्ठ बनता है, किंतु संवेदना का प्रभाव पूर्णतः भिन्न होता है। संवेदना व्यक्ति में दूसरों के प्रति सहानुभूति जगाती है। दूसरों के दुःखों का अनुभव कराती है। दुःखियों की सेवा कर उनका कष्ट दूर करने की प्रेरणा देती है। इस परोपकारी कार्य के लिए अपनी वासना पर संयम रखने की क्षमता प्रदान करती है। मानव में मानवीयता अर्थात् सामाजिकता की भावना पनपाती है। प्राणिमात्र में ही नहीं वरन् सृष्टि में अस्तित्व पानेवाली हर

वस्तु में देवत्व का दर्शन कराती है।

प्रत्येक व्यक्ति में उपर्युक्त दोनों प्रवृत्तियाँ विद्यमान होने के कारण उसमें अंतर्द्वंद्व चलता है। वस्तुतः मानव के अस्तित्व तथा कर्तृत्व के लिए इन दोनों प्रवृत्तियों का समान महत्व है। अतः इन दोनों मूलभूत प्रवृत्तियों में समुचित संतुलन बनाए रखना मानव के विकास के लिए आवश्यक है। यह संतुलन बनाए रखने की विधि का ही नाम है—संस्कृति। सौभाग्य से भारतीय संतान को यह संस्कृति विरासत में मिली है। उसी के आधार पर हम समाज का युगानुकूल पुनर्रचना कर पृथ्वी के अस्तित्व के लिए उपस्थित संकट का निवारण कर सकते हैं।

समाज में युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना की प्रक्रिया सदियों से बंद पड़ी है। यह प्रक्रिया ही समाज को सनातनत्व प्रदान करती है, किंतु अनेक शताब्दियों से तात्कालिक संकटों तथा समस्याओं के निराकरण में ही सबकी शक्ति लगती रही है। उससे केवल अल्पकालीन राहत प्राप्त होती है। सामाजिक अर्थात् राष्ट्रीय जीवन को अधिकाधिक अस्त-व्यस्त एवं शोचनीय बनने से बचाना संभव नहीं होता। वर्तमान दुर्दशा इसी प्रतिक्रियात्मक कार्यशैली का परिणाम है।

अनेक विचारकों एवं मनीषियों ने अपने अनुभवों के आधार पर सचेत किया है कि तकनीकी का प्रभाव संस्कृति पर अनिवार्य रूप में पड़ता है। वैज्ञानिक या तकनीकी प्रगति किसी भी देश में हो, वह संसार के सभी देशों में फैलती है। आधुनिक संचार साधनों ने उपर्युक्त गति को और भी बढ़ा दिया है। परिणामस्वरूप लोगों के रहन-सहन, बोल-चाल, खान-पान का व्यवहार प्रभावित हुआ है। अपने परंपरागत जीवनमूल्य केवल उपदेश देने के लिए ही रह गए हैं। उनका नूतन संतान के जीवन पर संस्कार करना असंभव हो रहा है। इसी कारण व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक तथा सामाजिक जीवन की निरंतर अवनति हो रही है। इसका एकमेव उपाय है—परंपरागत स्थायी जीवन-मूल्यों पर आधारित युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना करना। इसी उद्देश्य से प्रभु राम की तपोभूमि चित्रकूट में अपना समाजशिल्पी शिविर आयोजित हुआ है।

सभी लोगों की धारणा है कि शारीरिक वासनाओं की तृप्ति व्यक्ति की प्रमुख प्रेरणा है, किंतु यह धारणा पूर्ण सत्य पर आधारित नहीं है। क्या मानव शारीरिक सुख उपभोग के आवश्यक साधन उपलब्ध होने भर से संतोष पा सकता है? कदापि नहीं। हर व्यक्ति चाहता है कि दूसरे लोग उसे प्यार करें। उसे वे अच्छा कहें। लोग उसे प्रतिष्ठा प्रदान करें। यह इच्छा क्यों होती है? यह तो शारीरिक भूख नहीं है। यदि मानव का व्यक्तित्व पशु समान शारीरिक सुख-उपभोग तक सीमित होता तो यह चाह मानव मन में कदापि न उठती। यह चाह इस बात का संकेत है कि मानव में ऐसा कोई विशेष तत्त्व है, जो उसे शारीरिक सुखानंद तक सीमित नहीं रहने देता। इसी तत्त्व का नाम है 'आत्मा'। यह तत्त्व हर मानव में विद्यमान है। वह पढ़ा हो या अनपढ़, धनी हो या गरीब, सुसंस्कृत हो या अनाड़ी, महिला हो या पुरुष, भारतीय हो या अफ्रीकी, गोरा हो या काला, पाश्चात्य हो या पौरात्य, हिंदू हो या मुसलमान, ईसाई हो या पारसी, सभी में यह चाह समान रूप से अनुभव करने को मिलती है। इसी कारण एक-दूसरे के साथ तादात्म्य होने की उत्कंठा मानव मन में उदय पाती है। यही चाह उसे शारीरिक आवेग से ऊपर उठाने की केवल प्रेरणा नहीं देती,

विराट् पुरुष

अपितु जिस किसी से तादात्म्य की अनुभूति होती है, उसके हित के लिए सर्वस्व का बलिदान तक करने की तत्परता प्रदान करती है। भारत में साधकों, तपस्वियों तथा भक्तों की अनंतकाल से चली आ रही अखंड परंपरा मानव में अंतर्निहित आध्यात्मिक तत्त्व की ही परिचायक है। यह हिंदू संस्कृति की विशेष खोज है। इसी खोज के आधार पर सामाजिक जीवन रचना खड़ी की गई थी, किंतु काल के प्रवाह में तथा दुनिया में फैली चकावंध के प्रभाव में आकर इसकी उपेक्षा होने लगी है। आजादी के बाद से तो मानव जीवन के इस जीवनदायी पहलू को अव्यावहारिक एवं निरर्थक मानने की और भी भूल हो रही है।

आज सुख-सुविधाओं के नए-नए साधन उपलब्ध हैं। जीवनयापन के माध्यमों में पर्याप्त परिवर्तन हुआ है। यातायात के द्रुत गतिमान साधनों के कारण व्यापार ने विश्वव्यापी रूप धारण किया है। औद्योगिक सभ्यता ने पुरातन जीवन प्रणाली को एकदम बदल दिया है। इस स्थिति में अपनी परंपरागत संयुक्त परिवार पद्धति अव्यावहारिक सिद्ध हो रही है। ऐसी अवस्था में उत्पन्न परिस्थिति को समझकर हम अपने व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन की पुनर्रचना नहीं करेंगे तो अपने परंपरागत जीवन-मूल्य, वे चाहे जितने श्रेष्ठ हों, टिकना संभव नहीं होगा।

कौटुंबिक जीवन भारत की विशेषता

समाज के रचनाकार केवल कल्पना जगत् में विचरण करनेवाले कल्पक मात्र नहीं थे। उन मूलगामी मनीषियों ने मानव जीवन के सभी पहलुओं का साक्षात्कार किया था। मानव के लैंगिक आवेग को भी सार्थकता प्रदान कर उसे सनातनत्व के साथ जोड़ने की विस्मयकारी प्रथा उन्होंने प्रचलित की थी। नित्य नूतनता की क्षमतापूर्ण संस्कृति का आविष्कार कर उन्होंने सामाजिक जीवन को स्वस्थ एवं स्थायी रूप उपलब्ध कराया था। मानव मन की सर्वव्यापी शक्ति को अनुभव कर उसे व्यावहारिक जीवन में उतारने के लिए जहां 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का लक्ष्य निर्धारित किया था, उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उन्होंने मानव-सुलभ कौटुंबिक जीवन का माध्यम प्रस्तुत किया था। इस प्रकार व्यक्ति और विश्व को परस्पर संबंधित करने की विधि प्रस्तुत की थी।

व्यक्ति के कौटुंबिक जीवन के मूल घटक हैं—महिला एवं पुरुष। कुटुंब में ही नूतन संतान जन्म पाती है। अतः समाज के सनातनत्व के दायित्व का कुटुंब के द्वारा वहन किया जाता है। कुटुंब सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई है। मानव के सर्वांगीण विकास का कुटुंब ही प्राथमिक केंद्र है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना का उद्गम-स्थान कुटुंब ही है। कौटुंबिक महत्ता की यह पुरातनतम धरोहर काल के प्रवाह में अब लुप्त हो गई है। जिस उद्देश्य से कुटुंब व्यवस्था का शुभारंभ हुआ था, उसी आधार पर कुटुंब संस्था की पुनर्प्रतिष्ठा किए बिना समाज को सु-स्थिति प्रदान करना संभव नहीं हो सकता।

कुटुंब के मूल घटक महिला एवं पुरुष सामाजिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। अर्थात् कुटुंब और समाज एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। दोनों का जीवन एक-दूसरे पर निर्भर है। परस्पर पूरक

समाजशास्त्री

बनकर ही दोनों प्रगति कर सकते हैं। लंबे काल से अपने देश में यह परस्पर पूरकता लुप्त हो गई है। कुटुंब एवं समाज एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। व्यक्ति अपने कुटुंब तक और कुटुंब अपनी संतान तक सीमित हुआ है। कुटुंबीय घटकों की आबादी के निवासियों से (शहरों में अपने मोहल्लों के निवासियों से तथा ग्रामों में अपने ग्रामवासियों से) आत्मीयता के व्यावहारिक संबंध नहीं बचे हैं। इस कारण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' या 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' के परंपरागत मानवीय जीवन की महत्ता से हम पीढ़ी-दर-पीढ़ी वंचित होते जा रहे हैं। जिस उद्देश्य से कुटुंब व्यवस्था का निर्माण हुआ था, वह व्यावहारिक जीवन से गायब है। लोगों का समाज के नाते जीना अवरुद्ध हुआ है। सामाजिक पुनर्रचना का कार्य अपनानेवालों को कौटुंबिक अवधारणा के मूलभूत तत्वों को फिर से व्यावहारिक रूप प्रदान करने की दिशा में गतिमान होना होगा। कुटुंब ही समाज की आधारभूत इकाई है। इसकी पुनर्प्रतिष्ठा किए बिना सामाजिक पुनर्रचना एवं राष्ट्रोन्नति संभव नहीं हो सकती।

जिस प्रकार महिला एवं पुरुष के बिना कुटुंब की धारणा नहीं होती, उसी प्रकार महिलाओं एवं पुरुषों के बिना समाज का अस्तित्व संभव नहीं होता। कुटुंब हो या समाज—दोनों में महिला तथा पुरुष का समान महत्त्व है। यह व्यावहारिक जीवन में प्रतिबिंबित होना चाहिए। महिला तथा पुरुष में से किसी की महत्ता न कम है न अधिक। यदि कम-अधिक मानने की यह दोषपूर्ण प्रथा बनी रही तो न कुटुंब जीवन सुखी होगा, न सामाजिक जीवन में संतुलन रहेगा। गाड़ी के दोनों पहिए एक समान न रहे तो गाड़ी का आगे बढ़ना अर्थात् प्रगति पथ पर गतिशील होना संभव नहीं होता।

वस्तुतः महिला एवं पुरुष परस्पर पूरक तत्व हैं। एक के बिना दूसरा अधूरा है। इन दोनों तत्वों का परस्पर तादात्म्य ही सृष्टि की धारणा का मूल है। अतः सभी दृष्टियों से दोनों में समान स्तर की स्थिति निर्माण करना सामाजिक पुनर्रचना का प्राथमिक कार्य है। उपर्युक्त व्यवहार की परंपरा सदियों से टूट चुकी है। इस कारण यह कार्य संपन्न करना अत्यधिक कठिन है, किंतु इसके बिना अपने परंपरागत जीवन के स्थायी मूल्यों के आधार पर सामाजिक पुनर्रचना के अनिवार्य कार्य को व्यावहारिक रूप प्रदान करना संभव नहीं होगा।

मानव कुटुंब में ही जन्म पाता है। जन्म पाने के पूर्व शिशु नौ महीने अपनी मां के गर्भ में रहता है। यह प्रकृति की अपरिवर्तनीय रचना है। गर्भकालीन अवस्था में भी गर्भ अपने विकास के साथ-साथ संस्कार ग्रहण करता है। अतः गर्भावस्था में मां के मस्तिष्क में जो वैचारिक प्रक्रिया चलती है, भावनाओं की जो तरंगें उठती हैं, सुखदायी या दुःखदायी अनुभूतियां होती हैं, उसकी कल्पनाओं में गर्भस्थ शिशु के भविष्य की जो संभावनाएं तैरती हैं, उन सबका परिणाम गर्भ पर अनिवार्य रूप से होता है। इस तथ्य को आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। अतः देश और समाज का तथा विश्व और मानव मात्र का जो भविष्य हम बनाना चाहते हैं, उसकी एवं उसे कार्यान्वित करने की विधियों से गर्भ धारण करनेवाली महिला परिचित होनी चाहिए। देश के युवक-युवतियों को, जो कौटुंबिक जीवन में पर्दापण करने की आयु प्राप्त करने जा रहे हैं, मातृत्व एवं पितृत्व का समुचित दायित्व निभाने की जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। सामाजिक पुनर्रचना का यह कार्य अति महत्वपूर्ण पहलू है। इस दिशा में आवश्यक कार्यक्रमों को न अपनाया गया तो

विराट पुरुष

अपने पूर्वजों ने मानव के लैंगिक आवेग को मानवीय विकास की दृष्टि से जो उदात्तता एवं सार्थकता प्रदान की थी, वह निरर्थक सिद्ध होगी और उसके अपराधी हम होंगे।

मानव जीवन गर्भकाल से ही प्रारंभ होता है। तभी से उसके सर्वांगीण विकास की समुचित व्यवस्था अपेक्षित है। वह शिशु के रूप में परिवार में प्रगट होता है। उस प्रसंग पर खुशियां मनाई जाती हैं, किंतु पुत्ररत्न और कन्यारत्न के जन्म पर खुशी मनाने के रूप में अंतर आ जाता है। यहीं से सामाजिक असंतुलन प्रारंभ होता है। शिशु ने कन्या के रूप में जन्म पाया तो उसे पराए घर की धरोहर समझकर एक बोझ जैसी अनुभूति की जाती है। यह विस्मृत हो जाता है कि पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में महिलाओं एवं पुरुषों की आवश्यकता समान रूप से होती है।

कन्याओं की भावनाओं पर आघात अनुचित

वैवाहिक जीवन का शुभारंभ केवल परिवार के लाभ के लिए नहीं होता, उसका सामाजिक पहलू भी उतना ही महत्वपूर्ण है। आज पारिवारिक जीवन से यह अनुभूति मिट गई है। अपनी ही संतान के जन्म के सुखद प्रसंगों पर परिवार में भेद-भावना सामाजिक दृष्टि के अभाव को प्रगट करती है। यह वृत्ति परिवार के लिए भी घातक है। अपने कुटुंब के स्वार्थ तक ही सोचने की संकुचितता संतान के द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलकर सामाजिक जीवन का संतुलन बिगाड़ती है। इस वृत्ति के चलते मानो आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान का लाभ उठाकर (ईश्वर कृपा से जिसकी संभावना नहीं है) हर परिवार में कन्याओं का जन्म टाला गया तो परिवार के पुत्रों का विवाह किससे किया जाएगा? इस अनुचित चिंतन से केवल समाज का सनातनत्व ही नहीं मिटेगा अपितु हर वंश निर्वंश हो जाएगा।

इस प्रचलित कुप्रथा का कन्याओं की भावनाओं पर क्या परिणाम होता है? क्या उन्हें अनुभव नहीं कराया जाता कि कन्या का जन्म तथा जीवन पुत्र से निम्न कोटि का है? समाज में मातृत्व का दायित्व वहन करने का महत्वपूर्ण कार्य संपन्न करनेवाली कन्याओं में यह हीनभाव निर्माण होने देना सभी दृष्टियों से घातक एवं अन्यायपूर्ण है। क्या इस अनुचितता को लादे हुए हम समाज की उन्नति की अपेक्षा कर सकते हैं? पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन में महिलाओं एवं पुरुषों में परस्पर सद्भाव, सामंजस्य एवं सहयोग का सुखद वातावरण निर्माण करने के लिए उपर्युक्त कुप्रथा से मुक्ति पाना अनिवार्य है। इसके बिना सामाजिक पुनर्रचना संभव नहीं हो सकती।

मानव सभी प्राणियों में अत्यधिक बुद्धिसंपन्न प्राणी है, किंतु वह अपने बाल्यकाल में, विशेषतः शैशवावस्था में पूर्णतः परनिर्भर होता है। इसी से स्पष्ट है कि उसे गुण, ज्ञान एवं कर्तृत्व की दृष्टि से स्वयं को विकसित कर लेने में अन्य प्राणियों की संतान की तुलना में बहुत अधिक समय लगता है, किंतु शैशवावस्था की उसकी इस परनिर्भरता के कारण उसे पंगु या नासमझ समझना भूल है। उसकी आंखें एवं कान जन्म से ही बहुत कार्यक्षम रहते हैं। किसी की समझ में आए बिना इन दो अवयवों के माध्यम से उसके चारों ओर होनेवाली घटनाओं का वह निरंतर आकलन करते हुए अपनी ज्ञान-वृद्धि में जुटा रहता है। वस्तुतः बच्चा स्वयं वह भाषा सहज में ही बोलना प्रारंभ करता है, जो भाषा उसके घर में व पास-पड़ोस में बोली जाती है। किसी से सीखे बिना वह पूरे-के-पूरे

समाजशास्त्री

वाक्य बोलने लगता है। नाम कहाँ, विशेषण कहाँ, क्रियापद कहाँ प्रयोग में लाना चाहिए, यह अपने आप जान जाता है। उसे इस काल में अन्य भाषाओं के संपर्क में आने का अवसर मिले तो वह उन भाषाओं को भी सहज में ही सीख लेता है। इसी से समझ लेना चाहिए कि उसकी ग्रहणशीलता इस आयु में कितनी सशक्त होती है। आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक प्रयोगों पर आधारित अध्ययन से, इस निष्कर्ष पर पहुँचा गया है कि बच्चा पाँच वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते मस्तिष्क के कंप्यूटर का अस्सी प्रतिशत भाग अपनी दृष्टि एवं श्रवणशक्ति के माध्यम से भर लेता है। उसकी वृत्ति इसी काल में बन जाती है। वस्तुतः यही उसके व्यक्तित्व की नींव सिद्ध होती है। यदि नई पीढ़ी द्वारा राष्ट्र का नवनिर्माण एवं समाज की सर्वांगीण उन्नति होनी है तो माता-पिता का दायित्व निभानेवालों को इस तथ्य की जानकारी होनी चाहिए। समाज रचनाकारों का दायित्व है कि वे माता-पिताओं को इस दृष्टि से सक्षम बनाने की विधियाँ खोजें तथा उन्हें प्रचलित कराएं।

अपनी संतान के प्रति माता-पिताओं के अंतःकरण में स्वाभाविक रूप से असीम प्रेम व लगाव होता है। वे उसे प्रगट किए बिना नहीं रह सकते, रहना भी नहीं चाहिए, किंतु वर्तमान काल में प्यार का रूप क्या हो? तरीका क्या हो? उसकी मात्रा कितनी हो? उसे संतान के सर्वांगीण विकास का माध्यम किस प्रकार बनाया जाए, इन नाजुक विधियों की समुचित जानकारी माता-पिता को होना आवश्यक है। कारण, बच्चों की यह आयु बहुत ही संस्कारक्षम होती है। माता-पिता के व्यवहार का तथा उनमें होनेवाली आपसी चर्चा का बच्चे के व्यक्तित्व-विकास पर अनुकूल या प्रतिकूल परिणाम होता है। बच्चे इस आयु में, परिवार में अधिक आयु के लोग जो भी करते हैं, वही करने में सर्वाधिक रुचि रखते हैं। अतः जिस घर में शिशु एवं बालक-बालिकाएँ हैं, उस घरवालों पर ही उनके व्यक्तित्व के समुचित विकास का दायित्व है। वस्तुतः परिवार ही मूल संस्कार केंद्र है। अतः हर परिवार को संस्कार केंद्र बनाना राष्ट्र नवनिर्माण का श्रीगणेश है।

नन्हे शिशुओं में भी आत्मा की झलक अर्थात् अन्यो के साथ तादात्म्य होने की ललक देखने को मिलती है। माँ की गोद पर शिशु माँ को रोते देखकर रोने लगता है। माँ हँसती है तो वह मुसकराता है। उसके इस गुण का विकास इसी आयु में प्रारंभ किया जाना चाहिए। वर्तमान काल के लघु परिवार में साधारणतः माता-पिता एवं एक-दो बच्चे मात्र रहते हैं। उसी में माँ सहज में ही अपने शिशु को बताती है कि ये तुम्हारे पापा हैं, यह तुम्हारा भाई या बहन है। माँ के साथ जन्म से तादात्म्य अनुभव करनेवाले शिशु को व्यापक बनाने का काम माँ का ही है, किंतु वह यह कार्य परिवार तक ही सीमित रखती है। इसी कारण परिवार सामाजिक जीवन की आधारभूत इकाई नहीं बन पाता। यही सामाजिक अवनति का मूल कारण है। आवश्यकता है कि माँ और पिता अपने आचरण से शिशु एवं बालक-बालिकाओं पर सामाजिकता के संस्कार विकसित करें।

विवाह एक सामाजिक संस्कार

भिन्न गोत्र एवं अलग-अलग पारिवारिक वातावरण से आने के बावजूद वर-वधू का अपनी खुशी से अभिन्नता के सूत्र में आबद्ध होने की प्रक्रिया विवाह है। सहजीवन का यह शुभारंभ

विराट पुरुष

सामाजिक पुनर्रचना के युगानुकूल कार्य में योगदान करने का सु-अवसर प्रदान करता है। एक दूसरे के गुणों की कद्र करना तथा प्रचलित प्रथा के कारण कन्या होने के नाते यदि पत्नी के मन में स्वयं के प्रति थोड़ा भी हीनभावना का अंश हो, तो उसे निर्मूल करना पति का दायित्व है। सुखी सहजीवन की यह परमावश्यकता है।

पारिवारिक जीवन की प्रगति तभी संभव है, जब इस जीवन के माध्यम से अधिकाधिक व्यापकता अर्जित करने की प्रक्रिया निरंतर बढ़ती रहे। वस्तुतः वैवाहिक जीवन व्यक्तिगत अस्तित्व की अनुभूति तथा सामूहिक जीवन को पल्लवित, पुष्पित एवं फलित करने का अनोखा माध्यम है। ऐसे वातावरण में जन्म पानेवाली संतान, कुल का दीपक, राष्ट्र का प्रकाश-स्तंभ एवं विश्व का सूरज सिद्ध हो सकती है।

किंतु उपर्युक्त संस्कार विस्मृति की कोख में विलीन हो गए हैं। विवाह व्यक्तिगत सुख-सुविधाएं अर्जित करने का साधन बन गया है। आए दिन ऐसी घटनाएं प्रकाश में आ रही हैं कि नववधु यातना का शिकार हो रही हैं। वर्तमान युवाओं के लिए विवाह भी धनार्जन का माध्यम बन गया है। प्रचलित शिक्षा युवावर्ग में संवेदनशीलता, राष्ट्रीयता एवं मानवीयता विकसित करने के स्थान पर स्वार्थ तथा लोलुपता बढ़ा रही है।

सामाजिक दुर्दशा की परवाह किए बिना धनपति एवं राजनेता अपनी संतान के विवाह पर अधिक अपव्यय तथा आंखों में खटकनेवाला ऐश्वर्य का प्रदर्शन कर समाज में असंतुलन बढ़ा रहे हैं। देखा-देखी आर्थिक स्थिति ठीक न होनेवाले जवान भी विवाह को खर्चीला बनाकर परिवार को आर्थिक विपदा में डालने लगे हैं। इस अमानवीय वृत्ति पर अंकुश लगाए बिना वैवाहिक जीवन के उद्देश्य की पुनर्प्रतिष्ठा संभव नहीं है। उसके लिए युवावर्ग की मानसिकता में आवश्यक परिवर्तन करना होगा।

वैवाहिक प्रसंगों पर विदेशीकरण की वृत्ति पुनीत संस्कारों की महत्ता को समाप्त कर रही है। सूट-बूट के साथ विवाह मंडप में प्रवेश करने तक ही यह झूठी शान सीमित नहीं रहती। हवन के समय भी उसे बनाए रखने का आग्रह किया जाता है। पंडित महोदय दक्षिणा के लालच में सब कुछ सहते हुए विवाह विधि संपन्न करते हैं। संस्कार की पवित्रता के स्थान पर विवाह में व्यक्तिगत प्रतिष्ठा एवं पुरुष की श्रेष्ठता को प्रदर्शित कर समानता व सामाजिकता की अवहेलना की जा रही है।

बारात के साथ बैंड की ताल पर युवक-युवतियों के फूहड़ नृत्य की नवीन रीति प्रचलित हो रही है। वैवाहिक संस्कार की पवित्रता समाप्त करने में ही संपूर्ण ऊर्जा लगाई जा रही है। ऐसे वातावरण में विवाह के मंगल प्रसंग पर वर-वधू कौन सी प्रेरणा पा सकेंगे? इन गलत संस्कारों को रोककर अच्छे संस्कारों की पुनर्प्रतिष्ठा स्थापित करना समाज शिल्पियों का दायित्व है।

गृहस्थाश्रम का स्वाभाविक दायित्व है परिवारजनों के उदर-भरण की व्यवस्था करना। प्राण को अन्नमय कहा गया है। यह सत्य है। शरीर के स्वास्थ्यपूर्ण अस्तित्व के बिना व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक या राष्ट्रीय कर्तव्य संपन्न करना संभव नहीं होता। 'शरीरमाद्यं

खुलधर्मसाधनम्' का अपने पूर्वजों का संदेश यथार्थ है। इसके लिए अर्थार्जन अवश्यभावी है।

मानव अकेला नहीं रहता। वह परिवारों में जन्म पाता है। परिवार के बिना जीना, पलना, बढ़ना और समर्थ बनना संभव नहीं होता। उसी प्रकार परिवार भी अकेला नहीं रहता। संसार में एक परिवार की आबादी कहीं नहीं मिलती। छोटे-से-छोटा ग्राम कई परिवार से मिलकर बसा होता है। बड़े-बड़े शहरों में परिवार मोहल्लों के रूप में सामूहिक जीवन का अभ्यस्त रहता है। बिना परस्पर पूरकता के सामूहिक रूप से रहना संतोषप्रद और सुखावह नहीं होता। अर्थार्जन की विधि भी इसी अनिवार्य तत्त्व के आधार पर विकसित हुई थी।

जीवन में अर्थार्जन की महत्ता बढ़ती जा रही है। कारण, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का अर्थ माध्यम बना है। इस अर्थार्जन के विकासक्रम को समझ लेना सामाजिक पुनर्रचना करने में सहायक सिद्ध होगा।

स्वरोजगार से अर्थोपार्जन

मनुष्य जिस आबादी में रहता है, उस आबादी के निवासियों की कई आवश्यकताएं होती हैं। उनकी पूर्ति करने की ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए, जिससे सभी नागरिक संतोष पा सकें। इसी आधार पर प्राचीन पद्धति प्रचलित रही है। इस पद्धति में हर परिवार आबादी के निवासियों की कम-से-कम एक आवश्यकता पूर्ण करने का दायित्व निभाया करता था। यह कार्य करने में केवल उदर-भरण की प्रेरणा नहीं होती थी, अपितु समाज-सेवा की भावना अधिक महत्त्व रखती थी। कबीर कपड़ा बुनते समय मन में सोचा करते थे कि ताने या बाने का कोई धागा कमजोर न रहे। मुझे भगवान् की संतान के लिए कपड़ा बुनना है, अतः मेरे कपड़े में कोई दोष नहीं रहना चाहिए। इसी प्रकार कुम्हार मटके बनाने के लिए मिट्टी तैयार करते समय सोचा करता था। समाज भी अपनी आवश्यकता पूर्ण करनेवालों को परिवार चलाने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रहने देता था। पूरी आबादी में परस्पर पूरकता का ध्यान रखते हुए सुखानंद और आत्मीयता के साथ सभी निवासी रहा करते थे।

इस युग में, जबकि विज्ञान एवं तकनीकी का विस्मयकारी विकास हुआ है, पुरानी प्रथा जिस रूप में थी, उसी रूप में चलाना संभव नहीं है। अपना-अपना जीवनक्रम चलाते समय समाज-सेवा की जो भावना प्रचलित थी, वह भावना वर्तमान काल में भी उतनी ही व्यावहारिक हो सकती है। व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो किसी को भी धनार्जन करना तभी संभव होता है, जब वह समाज की कोई-न-कोई आवश्यकता पूर्ण करता है। लोगों की छोटी या बड़ी आवश्यकता पूर्ण न करनेवाले काम से अर्थार्जन संभव नहीं होता। समाज की कोई-न-कोई आवश्यकता पूर्ण कर धनार्जन संभव है। इसलिए केवल धनार्जन की दृष्टि न रखकर सेवा की दृष्टि से काम किया जाना चाहिए। इससे अधिक मुनाफा कमाने के लालच से वस्तुओं में मिलावट करने की या उत्पादन को उचित स्तर का न बनाने की असामाजिक वृत्ति का निवारण किया जा सकता है। इसी से समाज में परस्पर विश्वास बढ़ेगा, स्नेह पनपेगा तथा सहयोग संभव होगा। ये तीन बातें

विराट पुरुष

सामाजिक स्वास्थ्य एवं उन्नति के लिए नितांत आवश्यक हैं। सामाजिक पुनर्रचना करते समय इस पहलू को प्रचलित करना होगा।

सामाजिक संस्कार की महत्ता

व्यक्ति मूलतः बहुआयामी व्यक्तित्व है। वह एक ही समय में चार प्रकार से जीवनयापन करता है—व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, व्यावसायिक जीवन तथा सामाजिक जीवन। इनमें से प्रथम तीन पहलुओं की हर व्यक्ति पग-पग पर अनुभूति करता है। ये तीनों पहलू उसे एक-दूसरे से अभिन्न दिखाई देते हैं, किंतु सामाजिक पहलू सबके जीवन से उपेक्षित हो गया है। इसी कारण अपना समाज एवं राष्ट्र वर्तमान दुर्दशा का शिकार बना हुआ है।

वस्तुतः सामाजिक पहलू मानव के लिए सर्वाधिक सहायक होता है। उसकी उपादेयता ध्यान में नहीं आती। कारण, समाज निर्हेतुक तत्त्व है। वह श्रेय का पिपासु नहीं है। वह अपना दायित्व सहजता के साथ निभाता रहता है। संभवतः इसी कारण उसकी सर्वाधिक उपेक्षा होती है, किंतु इसके दुष्परिणाम प्रत्येक परिवार तथा परिवारों को हरेक घटक को भुगतने पड़ते हैं। इसके बावजूद लोग वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास नहीं करते।

व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन तथा व्यावसायिक जीवन में सामाजिक दृष्टिकोण अपनाकर चलें तो सभी का जीवन सहज में ही सुखदायी और उन्नत हो सकता है। व्यक्ति एवं परिवार समूह के रूप में मोहल्ले या ग्राम में रहते हैं। इसके पीछे केवल सुरक्षा मात्र ही कारण नहीं होती। परिवार की कई आवश्यकताएं होती हैं। उन सभी आवश्यकताओं की पूर्ति कोई व्यक्ति या परिवार स्वयं नहीं कर सकता, उनकी पूर्ति समाज के विभिन्न लोग किया करते हैं। सब कुछ पाने के पीछे केवल धनार्जन का ही एकमेव दृष्टिकोण रहा तो हर वस्तु और व्यवहार की भी गुणवत्ता निरंतर घटने लगती है। इसकी शिकायत सभी लोग करते हैं, किंतु कोई सुधार होता दिखाई नहीं देता।

वर्तमान काल में सामाजिक दायित्व का निर्वाह करने का काम सरकारों का है, यह हमारी धारणा है। परिणामस्वरूप हर व्यक्ति, समूह तथा संगठन हर कमी के लिए शासकों, प्रशासकों और न्यायाधीशों को दोष देने में इतिश्री मानता है। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि शासक, प्रशासक या न्यायाधीश दोषमुक्त हैं, किंतु दोष देनेवाले इस बात को भी समझने का प्रयास करें कि उपर्युक्त लोगों में दिखाई देनेवाले दोष के कारण क्या हैं? दुःख है कि वे यह प्रयास नहीं करते।

प्रत्येक व्यक्ति और परिवार अपना व्यवसाय करते समय न पड़ोसी के हित-अहित का ध्यान रखता है, न अपनी आबादी के अन्य निवासियों का, न ही समाज और देश के हित का। वह तो केवल अपना और अपने परिवार के हित का ही ध्यान रखता है। उसका और उसके परिवार का हित दूसरों के अहित का कारण बनता है, यह जानते हुए भी वह अपने हित में दूसरों का अहित करने में संकोच नहीं करता। इस व्यवहार का परिणाम उनकी संतान की मानसिकता पर पड़ता

समाजशास्त्री

है। इन्हीं संस्कारोंवाले युवा सामाजिक प्रतिष्ठानों में या प्रशासन के विभिन्न पदों पर विराजमान होते हैं। वे ही शासन, प्रशासन चलाते हैं तथा न्यायदान करते हैं। उनमें सामाजिक भावना का अभाव रहता है। सामाजिक भावना के संस्कार न परिवार में प्राप्त होते हैं, न विद्यालयों में। हम चाहते हैं कि शासन एवं प्रशासन के द्वारा हम लोगों को न्याय मिले। न्यायालय प्रामाणिकता से काम करें। यह चाह तभी पूर्ण होगी, जब साधारणतः हर व्यक्ति तथा परिवार अपने व्यवहार एवं व्यवसाय में सामाजिक हित का ध्यान रखकर व्यवहार करना आरंभ करे। तब जाकर शासन, प्रशासन और न्यायदान में प्रामाणिकता आएगी। अतः व्यक्ति को व्यक्तिगत जीवन विकसित करते समय यह ध्यान रखना होगा कि जैसे वह अपना जीवन पारिवारिक जीवन के लिए पूरक बनाता है, उसी प्रकार उसका पारिवारिक तथा व्यावसायिक जीवन संपूर्ण समाज के लिए पूरक बने। तभी सामाजिक जीवन के प्रतीकात्मक रूप अर्थात् शासकीय, प्रशासकीय तथा न्यायालयीन व्यवहार व्यावसायिक, पारिवारिक तथा व्यक्तिगत जीवन के लिए पूरक सिद्ध होंगे।

साधारणतः शिशु अपने बलबूते पर चलने और बोलने लगता है तो उसकी चंचलता जहां घरवालों को लुभावनी अनुभव होती है, वहीं वह परेशानी का भी कारण बन जाती है। बच्चे चुपचाप बैठ नहीं पाते, घर के बाहर जाने के लिए मचलते रहते हैं। वे हर वस्तु की उठा-पटक में आनंद पाते हैं। उनके द्वारा तोड़-फोड़ होती है। इसी में वह कई बार चोट भी खाते हैं। इन्हीं शरारतों के कारण उन्हें बड़ों की फटकार सहनी पड़ती है। कभी-कभी मार भी खानी पड़ती है।

वस्तुतः मानव शिशु जन्मतः सृजनशीलता का स्रोत होता है। उसकी उपर्युक्त गतिविधियां ज्ञानार्जन की परिचायक होती है। इसी मर्म को समझकर उसे आवश्यक रचनात्मक दिशा प्रदान करने की क्षमता साधारणतः माता-पिता में नहीं होती। उनका अपने बचपन में इस दृष्टि से परिवारों में तथा किशोरावस्था या युवावस्था में विद्यालयों में कोई मार्गदर्शन नहीं करता। अतः समाज शिल्पियों का दायित्व है कि वे सृजनशीलता के स्रोत इन नन्हे-नन्हे बालक-बालिकाओं की जन्मजात निधि को राष्ट्र नवनिर्माण की दिशा में विकसित करने की समुचित व्यवस्था खड़ी करें। देशसेवा का या युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का यह प्राथमिक कार्य है। इससे जहां शिशु जगत् का उपर्युक्त दिशा में विकास होगा, वहीं युवा पीढ़ी तथा माता-पिता को अपने आप आवश्यक जानकारी भी प्राप्त होगी।

प्रत्येक आबादी में अर्थात् ग्रामों एवं शहर के मोहल्लों में पच्चीस-पचास शिशुओं का आमोद-प्रमोद केंद्र प्रारंभ करना उपयुक्त रहेगा। इस केंद्र को गंभीर नाम देकर केंद्र के वातावरण को बोझिल बनाने का प्रयास इन नन्हे-नन्हे बालक-बालिकाओं की मानसिकता के अनुकूल नहीं होगा। बच्चों की इस आयु में खेलने, कूदने, दौड़ने की सहज प्रवृत्ति होती है। सदैव प्रसन्न रहना एवं बार-बार खुलकर हंसना इनके संवर्धन के लिए पौष्टिक आहार है।

पच्चीस-पचास बच्चों के आमोद-प्रमोद केंद्र के लिए जहां तक संभव हो, खुली जगह होनी चाहिए। ग्रामों में इसकी समस्या कम होगी। यह कार्यक्रम सफल बनाने के लिए दो-चार युवाओं को प्रशिक्षित करना होगा। इनके लिए ऐसे ही युवाओं का चयन करना होगा, जिनकी स्वयं

विराट पुरुष

खेलकूद में रुचि हो, जो सब प्रकार के खेलकूद, व्यायाम, आसन आदि करके दिखाने में सक्षम हों। वे ही कम समय में प्रशिक्षण प्राप्त कर उन बातों में स्वयं को निपुण बना लेंगे। इन्हें बच्चों लायक रुचिपूर्ण कथा-कहानियां कहने की कला भी आत्मसात् करनी होगी। कविताएं, चौपाइयां, दोहे, पहेलियों का सुरुचिपूर्ण संग्रह करने का काम भी उन्हें करना होगा। तभी वे बच्चों को नित्य नई कहानियां, बच्चों के समझने लायक रुचिकर व विनोदपूर्ण कहानी सुना सकेंगे तथा कविता, दोहा चौपाई या सरल सुभाषित सप्ताह में कम-से-कम एक याद भी करा सकेंगे।

वस्तुतः इसी आयु से बच्चों का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक विकास एक साथ हो, इसकी विशेष व्यवस्था किए बिना राष्ट्र का सही अर्थ में पुनर्निर्माण संभव नहीं होता। समाज की वर्तमान अवस्था में इस विकास व्यवस्थावाले परिवार से अपेक्षा करना व्यावहारिक नहीं है। उन्हें इसकी न कल्पना है, न उनमें इस कार्य से अवगत कराने की कोई विधि अस्तित्व में है। ऐसी स्थिति में समाज के संवेदनशील व्यक्तियों को ही यह अनिवार्य कार्य संपन्न करना होगा। उपर्युक्त चारों तत्त्व हर बच्चे में जन्म से ही विद्यमान रहते हैं। इन चारों तत्त्वों के संगम का ही नाम मानव है। इन चारों तत्त्वों के गुणधर्म अलग-अलग होते हुए भी वे एक-दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। एक का विकास शेष तीनों के विकास के बिना सार्थक नहीं होता। शारीरिक गतिविधि शेष तीनों तत्त्वों से एकात्म रहनी चाहिए। वह अन्य तीनों तत्त्वों से वंचित रही तो वासना पूर्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बचेगा। परिणामस्वरूप मानव पशुतुल्य सिद्ध होगा।

बच्चों की आयु के अनुसार शारीरिक विकास प्राकृतिक प्रक्रिया है, किंतु वर्तमान सामाजिक अवस्था में सभी वर्गों के बच्चों को नितांत आवश्यक पौष्टिक आहार भी उपलब्ध नहीं होता। परिणामस्वरूप लाखों बच्चों का मानसिक तथा बौद्धिक विकास इसी कोमल आयु में अवरुद्ध हो जाता है। यह केवल उन बच्चों की या उनके परिवारों की ही हानि नहीं है, अपितु राष्ट्र की बहुत बड़ी हानि है। आधुनिक युग में राष्ट्र पुनर्निर्माण का ठेका सरकारों को दिया गया है। शासकीय प्रक्रिया में सहृदयता पाना कठिन हो गया है। अतः हर आबादी में कुपोषण का शिकार बनी इन नन्हों-नन्हों कलिकाओं को मुरझाने से बचाने का तथा उनके समुचित संवर्धन का दायित्व समाज को निभाना होगा। यह समाज का ही काम है। वही स्थायी तत्त्व है, सरकारें तो आती-जाती रहती हैं।

प्रत्येक आबादी में एक सुंदर उद्यान निर्माण करना चाहिए। साधारणतः यह कार्यक्रम एकदम नया होगा। हर गांव में गांव सभा की जमीन होती है। गांव के युवक-युवतियों व बालक-बालिकाओं के सहयोग से सुंदर सा उद्यान निर्माण करना सहज संभव है। उसी में शिशु भी बड़े उत्साह से काम करने के लिए उतावले दिखाई देंगे। उन्हें रोकना नहीं चाहिए अपितु उनके द्वारा हो पानेवाला काम उनसे कराना चाहिए। उनके द्वारा शीघ्र फूल देनेवाले पौधे भी लगवाने चाहिए। बरसात होते ही हर गांव में चारों ओर घास उग आती है। उस दूब घास को जड़ सहित उखाड़कर उद्यान में लगाकर हरा मैदान तैयार किया जाना चाहिए। सुंदर दिखनेवाले और सुगंधित फूलों के पौधे घास के हरे मैदान के चारों ओर लगवाने चाहिए। औषधीय जड़ी-बूटियां भी लगाना उपयोगी होगा। अधिक जगह हो तो विभिन्न फलों के वृक्ष लगाए जाने चाहिए। गांव के बालक-बालिकाओं तथा

समाजशास्त्री

युवक-युवतियों द्वारा हर ग्राम में एक सुंदर एवं मनोरम उद्यान का निर्माण सहज संभव हो सकता है। इससे गांव की शोभा ही नहीं बढ़ेगी, अपितु यह बच्चों व बालक-बालिकाओं में प्रकृतिप्रदत्त सृजनशीलता को पनपाने का एक लोकप्रिय माध्यम सिद्ध होगा। सृजनशीलता लोगों में जीवन मूल्यों को विकसित करने का सुगम माध्यम है।

खेलों की भारतीय परंपरा में व्ययसाध्य खेलों की पद्धति कभी नहीं रही। उनमें साहस, समझ-बूझ, चपलता और कुशलता की महत्ता थी। हमें ग्रामीण अंचल में ऐसे खेलों का चयन करना चाहिए। सामूहिक खेल होते हुए भी उनमें प्रत्येक खिलाड़ी को पर्याप्त परिश्रम का अवसर मिलना चाहिए। स्वराज्य प्राप्ति के बाद इस ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया गया है। यह कार्य सामाजिक जीवन का अनिवार्य अंग है। अतः गांव-गांव से ऐसे खेलों को फिर से प्रचलित करना समाजशिल्पियों का दायित्व है। खेलों के बिना नई पीढ़ी का सर्वांगीण विकास संभव नहीं हो सकता।

खेलों की रचना आयु के अनुसार करनी होगी। रचना करते समय इस बात का ध्यान रखना होगा कि शिशुओं से लेकर युवाओं द्वारा खेले जानेवाले खेलों में सामंजस्य बना रहे। इसी से खेलों की कला शृंखलाबद्ध हो सकेगी।

- चलना, तेज चलना, दौड़ना, तेज गति से दौड़ना, प्रतिस्पर्धा में दौड़ना।
- कूदना, लंबी कूद, ऊंची कूद।
- उपर्युक्त क्षमताएं सभी प्रकार के खेलों में उपयोगी होती हैं।
- छोटे बच्चों को दंड बैठकों का अभ्यास कराना (सोलह वर्ष पूर्ण होने तक) उचित नहीं है। सूर्य नमस्कार लाभदायी होते हैं।
- सामूहिक भाव विकसित करते हुए परिश्रम की दृष्टि से शारीरिक व्यायाम के रुचिपूर्ण काम व्यवहार में लाने चाहिए। इनका चयन करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि शरीर का प्रत्येक अवयव परिश्रम पा रहा है या नहीं।
- बच्चों को इसी आयु से सुगम आसनों का अभ्यास प्रारंभ कर धीरे-धीरे सभी आसन आठ-दस वर्ष की आयु तक कराना सहज संभव है। इससे आजीवन रोगमुक्त रहा जा सकता है।
- इसी आयु से अनेक प्रकार के शारीरिक-कलात्मक प्रयोगों का अभ्यास कराना चाहिए। इनके अतिरिक्त बच्चों को समता एवं संचलन का भी अभ्यास कराना चाहिए। आयु के अनुसार संचलन गीत (मार्चिंग सांग) तैयार करने चाहिए। गीत गाते हुए संचलन करने से बच्चों को अधिक आनंद अनुभव होता है और सहज में ही तालबद्धता का भी अभ्यास होता है।
- बच्चों में सहयोग की भावना विकसित करने की उपेक्षा हो रही है। परिणामस्वरूप नई पीढ़ी सामाजिक भावहीन अर्थात् स्वकेंद्रित हो रही है। यह वृत्ति मानव जीवन के लिए उपयोगी नहीं है। बच्चों के लिए खेलों तथा बाग-बगीचे के काम मिलकर करने के कार्यक्रम आयोजित किए जाएं। इसकी अनुभूति करानेवाले कार्यक्रम सहज में ही आयोजित किए जा सकते हैं। ऐसे कार्यक्रमों

विराट पुरुष

से बच्चों में सहयोग तथा सामूहिकता की भावना पनपती है।

खेलते हुए गिरना, चोट खाना मानव के ये विशेष गुण हैं। ऐसे प्रसंगों का लाभ उठाकर चोट खाए हुए बच्चों की सहायता व सेवा का काम अन्य बच्चों द्वारा कराने का प्रयास करना चाहिए। इससे सहज में ही बच्चों में मानवीय मूल्यों का विकास होता है।

शहरी बच्चों के लिए प्लास्टिक के कई प्रकार के खेल प्रचलित हैं। उनमें घर बनाने के इंजीनियरिंग आदि के खेल होते हैं। ग्रामीण जीवन के बच्चों में भी घर और झोंपड़ियां बनाने की कला देखने को मिलती है। इसी प्रकार के विविध निर्माण कार्यों के खेलों की रचना कर बच्चों में सृजनात्मक कलाओं का विकास करना संभव है। एक बार दिशा स्पष्ट हुई तो कितने ही खेल रचे जा सकते हैं। खेलों में विविधता बच्चों के लिए अधिक रुचिकर होती है।

श्रद्धा का भाव जीवन को उदार बनाता है। हर आबादी में एकाध श्रद्धा का केंद्र अवश्य होता है। सप्ताह में कम-से-कम एक बार बच्चों को ऐसे स्थानों पर सामूहिक रूप में ले जाना चाहिए। वहां के परिसर को साफ-सुथरा रखने का काम स्वयं के साथ बच्चों से कराना चाहिए। ऐसे कार्यक्रमों में आबादी के बड़े बाल-बालिकाओं को शामिल करना आवश्यक है। पूजा परिसर को फूलदार पौधों से युक्त करने की दिशा में यदि बच्चे रुचि लेंगे तो शेष निवासी भी सहज में ही सहयोग करेंगे। इसके अतिरिक्त एक निश्चित दिन मंगल या गुरुवार को जो देवता का विशेष दिन हो, उस दिन सायंकाल सब बच्चे शुचिर्भूत होकर पूजा की सामग्री के साथ आराधना के लिए पहुंचें। उन्हें छोटे किंतु अर्थपूर्ण मंत्र याद कराकर रखने चाहिए। मंत्रोच्चार के साथ जब सब बच्चे अपनी-अपनी आरती (मिट्टी के दीपक में ही क्यों न हो) नन्हे-नन्हे हाथों में लेकर करेंगे तो अनोखे धार्मिक संस्कार का पावन व मनोहारी दृश्य प्रस्तुत होगा। सहज में ही संस्कारक्षम वातावरण पूरी आबादी में फैलेगा। इससे सामाजिक समरसता का सुसंस्कार सभी पर होगा।

संस्कारहीनता से उपजी सामाजिक विषमता

पारिवारिक जीवन में सामाजिक हित का दृष्टिकोण न रखने के दुष्परिणाम केवल सामाजिक जीवन में ही प्रतिबिंबित नहीं होते, उन्हें व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन में भी भुगतना पड़ता है। माता-पिता पारिवारिक एवं व्यावसायिक जीवन में अपनी संतान के नाम पर सामाजिक हित की अवहेलना करते हैं, इसके गलत संस्कार उन्हीं की संतान पर होते हैं। बच्चे माता-पिता से ही सीखते हैं कि अपनी संतान के हित में उचित-अनुचित बातों की परवाह करना अनावश्यक है। पारिवारिक हित में प्रामाणिकता या अप्रामाणिकता को आड़े नहीं आने देना चाहिए। ऐसे वातावरण में पले बच्चे बड़े होकर जब स्वयं माता तथा पिता बनते हैं तो वे भी अपनी पत्नी या पति में एवं संतान में इतने निमग्न हो जाते हैं कि अपने माता-पिता की अपेक्षाओं तथा सुविधाओं का विशेष ध्यान नहीं रखते। माता-पिता अपने पुत्र के परिवार में अपना अस्तित्व अप्रासंगिक अनुभव करने लगते हैं। पुत्र एवं बहू के साथ अधिक दिन रहना उन्हें अच्छा नहीं लगता। परिणामस्वरूप देश में वृद्धाश्रमों की संख्या निरंतर बढ़ रही है। इस पर इन वृद्ध माता-पिताओं की प्रतिक्रिया होती है

समाजशास्त्री

कि यह वर्तमान युग का परिणाम है। वे इस बात को स्वीकार करना पसंद नहीं करते कि यह तो उनके अपने असामाजिक जीवन दृष्टिकोण का दुष्परिणाम है।

सामाजिक पहलू के साथ-साथ आर्थिक पहलू पर भी विचार आवश्यक है। अन्न मानव जीवन की अनिवार्यता है। मांसाहारी लोग भी बिना अन्न के जीवन नहीं चला पाते। अन्नोत्पादन सर्वथा कृषि भूमि पर निर्भर करता है। वह सीमित है। क्योंकि भूमि बढ़ा नहीं करती, किंतु मानव संख्या निरंतर बढ़ती रहती है। हम आजाद हुए तब खंडित भारत की जनसंख्या बत्तीस करोड़ थी। पैंतालीस साल बाद जनसंख्या 86 करोड़ का आंकड़ा पार कर चुकी है। अन्नोत्पादन का एकमेव साधन—कृषि भूमि—जितनी थी उतनी ही है। निरंतर बढ़ रही जनसंख्या उदरभरण का संकट और अधिक तीव्र बना देगी।

इस तथ्य की अनुभूति पुरातन काल में भी की गई थी, जब कृषि भूमि की समस्या नहीं थी। कुटुंब में पिता एवं पुत्र की संतान का साथ-साथ जन्म महान् संकट का संकेत माना जाता था। पुत्र युवावस्था प्राप्त करता था तो पिता-माता अपने पुत्र पर पारिवारिक दायित्व सौंपकर वानप्रस्थ ग्रहण कर सामाजिक सेवा में अपना जीवन लगाते थे। बेहिसाब आबादी न बढ़े तथा समाज सतत विकासशील बना रहे, इसी हेतु से ये प्रथाएं चलाई गई थीं, जो विस्मृति की खाई में पट गई हैं।

परिवार नियोजन समय की आवश्यकता है। उसके बिना सुखद व समृद्धिपूर्ण भविष्य निर्माण करना संभव नहीं होगा। सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में संलग्न महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं का दायित्व है कि वे आम लोगों में विशेषतः नवयुवक एवं नवयुवतियों में ऐसी मानसिकता विकसित करें, जो उनके व्यावहारिक, व्यक्तिगत, पारिवारिक, व्यावसायिक एवं सामाजिक जीवन में परस्पर पूरकता प्रतिबिंबित कर सकें। तभी युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना संभव होगी।

ग्रामीण जीवन में प्रकृति के साथ सदैव सान्निध्य बना रहता है। वहां सहज में ही अनुभव होता है कि मानव का अस्तित्व पूर्णतः प्रकृति पर निर्भर करता है। हिंदू मनीषियों ने हजारों साल पहले इस तथ्य को अनुभव किया था। उन्होंने जिससे अपना जीवन चलता है, उसके प्रति हृदय में कृतज्ञता भाव धारण करनेवाली संस्कृति का (परिष्कृत जीवन-व्यवहार का) आविष्कार किया था। धरती माता, गंगा माता, गौ माता आदि धारणाएं उसी में से प्रस्फुटित हुई थीं। हिंदू संस्कृति के लिए यह अनमोल देन है। संस्कृति की उपयुक्त विशेषता के कारण ही हजारों साल जीवनयापन करने के बावजूद अपने समाज को प्राकृतिक संसाधनों का न अभाव अनुभव हुआ था, न प्रदूषण की विभीषिका कभी स्पर्श कर पाई थी। हिंदू समाज प्रकृति को मां मानकर मातृभक्त संतान के नाते प्राकृतिक संसाधनों से अपना पोषण कर लेता रहा। उपभोग की भावना से कभी भी उसने प्रकृति का शोषण नहीं किया। फलस्वरूप समाज का पोषण भी होता रहा तथा प्रकृति की समृद्धि भी बनी रही।

आधुनिक काल की उपभोग वृत्ति के प्रभाव में आने के कारण कृतज्ञता की भावना लुप्त हो गई। उपभोग के लालच का कोई अंत नहीं होता। अतः प्राकृतिक समृद्धि की अवहेलना कर उसका शोषण होने लगा और दो-ढाई शतक में ही प्राकृतिक संसाधनों के अभाव से प्रदूषण के

विराट पुरुष

दानव ने मानव का जीवन दूभर कर दिया है। इस दुष्चक्र की चपेट से मुक्ति पाने का एकमेव मार्ग है, ग्रामीण अंचल से उपर्युक्त खतरनाक परिस्थिति में परिवर्तन प्रारंभ करना।

कृषि उपज मानव की आवश्यकता है। मांसाहारी लोग भी केवल मांसाहार पर निर्भर नहीं रहते। उन्हें भी अन्न, शाक-सब्जी, फल का सहारा लेना पड़ता है। संसार में कृषि भूमि सीमित है। उसकी वृद्धि संभव नहीं है, किंतु मानव संख्या कितनी भी नियंत्रित की जाए, तब भी उसमें वृद्धि होती ही रहेगी। अतः भूमि की उपजाऊ शक्ति बनाए रखना अधिक महत्वपूर्ण कार्य हो गया है। फसलों का बढ़ना जैविक प्रक्रिया है। इसलिए फसलों को उगाने में कृषि भूमि की उर्वरा शक्ति काम आती है। इस उर्वरा शक्ति को कायम रखने का काम रासायनिक खादों से पूरा नहीं होता। उसके लिए जैविक खाद की ही आवश्यकता होती है। वह खाद जानवरों के गोबर तथा हरे पौधों से ही उपलब्ध होती है।

समृद्ध किसान, समृद्ध देश

आजकल कृषि के यंत्रीकरण का दौर जोरों पर है। उसके लिए डीजल की आवश्यकता होती है। डीजल भूगर्भ तेल है। वह सीमित है। उसका पुनर्निर्माण संभव नहीं है। अतः डीजल पर निर्भरता अस्थायी माध्यम है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि कृषि एवं पशु-शक्ति का मेल ही सब दृष्टियों से उपयुक्त है। बैलों से कृषि कार्य करना सर्वोत्तम है। पशु साधारणतः फसल का वह भाग खाते हैं, जो मानव के खाने योग्य नहीं होता। साथ ही वे अपने गोबर एवं मूत्र से जैविक खाद की आवश्यकता पूर्ण कर कृषि भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ाते हैं।

इसके अतिरिक्त मानव के लिए नितांत आवश्यक पदार्थ गो-दुग्ध उपलब्धता है। इसलिए कृषि एवं पशु परस्पर पूरक तत्व हैं और मानव जीवन का आधार हैं। इसी पद्धति से भारत में हजारों साल से कृषि कार्य होने के कारण कृषि भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रह पाई है। इस वस्तुस्थिति को ध्यान में रखकर ग्रामीण अंचल में डीजल पर निर्भर यंत्रों के साथ रासायनिक खाद के उपयोग को निरुत्साहित करना चाहिए। घर-घर में गाय पालन को प्रोत्साहन देना चाहिए।

आधुनिक तकनीकी के कारण पश्चिमी देशों में शहरी सभ्यता की प्रधानता है। वही सभ्यता भारत में बढ़ रही है। हमारी सरकारें इस दिशा को प्रोत्साहन दे रही हैं। शहरी आबादी में दूध की मांग निरंतर बढ़ती जा रही है। सरकारी योजनाओं से हर जिले में सहकारी दुग्ध योजनाएं प्रारंभ की गई हैं। ये दुग्ध सहकारी समितियां गांव-गांव से दूध खरीदकर शहरों की आवश्यकता पूर्ण करने में जुटी हैं। परिणामतः देहातों में बच्चों को भी दूध मिलना संभव नहीं रहा। नवजात देहाती बच्चे कुपोषण के शिकार हो रहे हैं। इस कुपोषण निवारण के लिए ईसाई मिशनरियों द्वारा विदेशों से पाउडर मिल्क मंगाकर वितरण के काम को प्रोत्साहन दिया जा रहा है। यह कितना विचित्र एवं हास्यास्पद प्रयास है!

हर छोटे-बड़े किसान को एक या दो गाय पालने के लिए प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। उन गायों की नस्ल सुधार का कार्य चालू रखना होगा, जो सहज संभव है। इससे गांव की

नई पीढ़ी कुपोषण का शिकार नहीं बनेगी। सबके लिए दूध, दही, मट्ठा, मक्खन एवं घी उपलब्ध हो सकेगा। किसान के लिए आर्थिक आय का सहायक साधन उपलब्ध होगा। खेतों के लिए अपने ही घर के बैल उपलब्ध होंगे। खाद के लिए धन खर्च करने की आवश्यकता नहीं होगी। घर की ही खाद आवश्यक मात्रा में उपलब्ध होगी। खेती की उपजाऊ शक्ति बनी रहेगी। गोबर गैस के द्वारा ईंधन की समस्या दूर हो सकेगी। हर गांव में इस प्रकार के उदाहरण प्रस्तुत कर किसानों में इस प्रथा को लोकप्रिय बनाना देश की समृद्धि का कारण बनेगा।

जहां कहीं कृषि के अयोग्य भूमि उपलब्ध हो, वहां वृक्षारोपण का काम कराना चाहिए। वृक्षारोपण करते समय ध्यान रखना चाहिए कि हमारी सभी आवश्यकताएं पूर्ण हो सकें। वृक्षों के द्वारा हमारी तीन आवश्यकताएं पूर्ण हो सकती हैं। पहली, विभिन्न प्रकार के फलों की प्राप्ति। हमें हर मौसम में कोई-न-कोई फल उपलब्ध होता रहेगा। दूसरी, हमें इमारती लकड़ी भी आवश्यक होती है। वह दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक महंगी होती जा रही है। इस समस्या को इमारती लकड़ी के वृक्षों को लगवाकर दूर किया जा सकता है। इससे आवास निर्माण पर आनेवाला व्यय घटाया जा सकेगा। तीसरी, हमें आवश्यकता ईंधन की होती है। गोबर गैस के साथ जलाऊ लकड़ी का प्रबंध आवश्यक है। अतः ईंधन उपलब्ध करानेवाले वृक्षों का भी रोपण एवं संवर्धन लाभदायी होगा। वृक्षारोपण एवं संवर्धन के कारण खेती के लिए व पीने के पानी के लिए आवश्यक जलवृष्टि का परिमाण बढ़ेगा। बढ़ रही गरमी की समस्या भी घटेगी।

आबादी में भी वृक्षारोपण जरूरी है। इससे गांव में छाया एवं शोभा बढ़ती है। पेड़ प्राणवायु प्रदान करते हैं। उनका आबादी में होना अनेक दृष्टियों से लाभदायक है। पीपल एवं बरगद के वृक्ष आबादी के लिए मंगलकारी व स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं। नीम का वृक्ष भी आबादी के लिए उपकारक होता है। फूलों के वृक्ष एवं पौधे आबादी के लिए पौष्टिकता बढ़ाते हैं तथा पूजा-अर्चना की सामग्री प्रदान करते हैं। अनेक बार देखा गया है कि गांववाले मंदिर में भगवान् की मूर्ति पर केवल पानी चढ़ाकर संतोष कर लेते हैं। पूजा की उत्तम सामग्री अर्थात् फूल गांव में उपलब्ध नहीं होते। घर-घर में भक्तगण होते हुए भी गांव में फूलों का, खासकर सुगंधित व सुंदर फूलों का अभाव होना बेमेल बात है।

हर गांव में पंचायत घर रहता है या बनाया जाता है। यह अच्छी बात है। पंचायत घर गांव सभा के जमीन पर बनाया जाता है। उसके चारों ओर फूल व औषधीय पौधों का सुंदर उद्यान बनाना बहुत उपयोगी होगा। एक से एक सुंदर पौधे उगाने, उन्हें पानी, खाद देने का काम बालक-बालिकाओं द्वारा कराने से नई पीढ़ी में कलात्मकता के साथ सृजनात्मक वृत्ति का विकास हो सकता है। उनके बेकार समय का सदुपयोग हो सकता है। गांव का रूप सुंदर एवं वातावरण रमणीय बनाया जा सकता है।

पंचायत घरों में या फुलवारीवाले बगीचे में महिलाओं-पुरुषों द्वारा सुविधानुसार अलग-अलग समय कीर्तन आदि के सामूहिक कार्यक्रम नियमित रूप से आयोजित करना सांस्कृतिक चेतना बढ़ाने में उपयोगी रहेगा। इससे परस्पर सद्भाव व उदारता बढ़ाई जा सकती है। इससे संपूर्ण

विराट पुरुष

गांव में अच्छा वातावरण बनाए रखा जा सकता है। गांव के नन्हे शिशुओं एवं बालक-बालिकाओं के लिए यह उद्यान मनोरंजन एवं खेल-कूद का स्थान बन सकता है। ऐसे वातावरण में ही संस्कार केंद्र अधिक प्रभावी हो सकते हैं। बगीचे में काम करने का अभ्यास स्वयं में एक रचनात्मक संस्कार है।

सामाजिक समरसता की बाधाएं

जाति व्यवस्था कभी सामाजिक जीवन का पोषक तत्व रही है, किंतु अब वह कालबाह्य हो गई है। वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति द्वारा जिन परंपरागत व्यवस्थाओं को अप्रासंगिक बनाया गया, जाति व्यवस्था उन्हीं में से एक है। अप्रासंगिक बनने के कारण यह प्रथा धीरे-धीरे खत्म हो रही थी। जिस पारिवारिक परंपरा की आधारशिला पर वह खड़ी हुई थी, वह आधार ही मिट गया है। उसकी जगह सहज रूप में व्यावसायिक संगठन ले रहे थे। इस परिवर्तनशील काल में भारत के स्वातंत्र्य प्राप्ति की प्रक्रिया प्रारंभ हुई। भारत ने संविधान अपनाया, जो ब्रिटिश शासन-पद्धति की लगभग नकल मात्र है। विभाजन का विषैला घूंट पीकर देशवासियों को सदियों बाद सत्ता प्राप्त हुई थी। सत्ता का आकर्षण इतना अधिक था कि तथाकथित नेताओं ने सत्ता के मोहपाश में अपने परंपरागत जीवन-मूल्यों को भुला दिया है। नव-स्वतंत्र देश के नागरिकों ने राष्ट्र पुनर्निर्माण में सक्रिय बनाने के स्थान पर समाज में व्याप्त कमजोरियों को व्यक्तिगत सत्ता पाने के लालच में बढ़ावा देना प्रारंभ किया। जिस जाति प्रथा के उन्मूलन में वे संलग्न थे, उसी जातिवाद को खाद-पानी देने में वे जुट गए। परिणामस्वरूप जातिवाद प्रेत-भूत बनकर राजनेताओं के सिर पर सवार है। सामाजिक समरसता में यह रोड़ा बना हुआ है।

दूसरा आधुनिक आर्थिक प्रणाली बड़ा रोड़ा है। पश्चिम में उपजी आधुनिक तकनीकी के आधार पर खड़ी विशालकाय औद्योगिक विधि ने विषमता के दानव को जन्म दिया है। वह दानव मानव-मानव में विद्वेष और कलह की फसल उगा रहा है, जो समरसता की जड़ों को पनपने नहीं देता।

तीसरी बाधा सर्वव्यापी बेकारी की है। वह उदर-भरण के अतिरिक्त किसी अन्य उदात्त व सामाजिक भावना को, जो समरसता के लिए आवश्यक है, पसंद नहीं करती।

चौथी बाधा रहन-सहन के स्तर की है। इसने समाज में अलग-अलग वर्ग बना दिए हैं। ये वर्ग एक ही आबादी में रहते हुए एक-दूसरे से इतने दूर हैं कि उनका व्यक्तिशः तथा परिवारशः सामूहिक कार्यक्रमों के निमित्त अनौपचारिक मिलन संभव ही नहीं होता। मिलते हैं तो मालिक, नौकर या प्रबंधक और कर्मचारी के नाते, मानव-मानव के नाते नहीं।

पांचवीं भीषण बाधा अपनाई गई शासन की दलीय प्रणाली है। हिंदू संस्कृति ने अपनी अखंड परंपरा के अनुभवों के आधार पर आत्मस्तुति एवं परनिंदा को महापाप माना है। उसी विद्वेषमूलक आधार पर कार्यरत पश्चिम की दलीय शासन प्रणाली को हमने अपना रखा है। इस पद्धति के दुष्परिणाम हमें पग-पग पर अनुभव हो रहे हैं। इसने हर आबादी में और हर राजनीतिक पार्टी में विघटन के बीज बोए हैं। विदेशी शासक 'फूट डालो और राज करो' की षड्यंत्रकारी नीति के

समाजशास्त्री

आधार पर डेढ़ सौ साल यहां शासन करते रहे। फिर भी हर आबादी में सबके विश्वासपात्र अर्थात् सर्वमान्य लोग मिलते थे, जो समाज में समरसता टिकाए हुए थे, किंतु अब तो हमने स्वयं दलीय प्रणाली को स्वीकार किया है। परिणामतः गत चालीस साल में ही (सन् 1952 में पहले चुनाव हुए थे) ऐसी स्थिति पहुंच गई है कि देश में और देश की हर आबादी तथा मोहल्ले में सर्वमान्य व्यक्ति ढूंढने पर भी मिलना संभव नहीं रहा। इसी से स्पष्ट है कि दलीय पद्धति समरसता अर्जित करने में कितनी भीषण बाधा बन गई है।

उपर्युक्त बाधाओं के बावजूद समरसता के लक्ष्य को सिद्ध करना वर्तमान युग की आवश्यकता तथा हम सभी का आद्य कर्तव्य है। इस लक्ष्य सिद्धि के लिए आवश्यक परंपरागत तत्त्व हमारे रक्त में विद्यमान है। हर एक व्यक्ति, परिवार एवं समूह में उदारता ढूंढ निकालना हमारे लिए संभव है। चराचर में भगवान् के अस्तित्व की अपनी सनातन धारणा इस युग में भी सत्य सिद्ध कर दिखाना हमारा काम है। इन्हीं सब बातों के सहारे हम सामाजिक समरसता का लक्ष्य सिद्ध कर सकते हैं।

न्यायपूर्ण व्यवस्था का निर्माण

गांव-गांव में सर्वांगीण विकास के मार्ग खोज निकालने की आवश्यकता है। इसके बिना गांव में बिखरी पड़ी प्रतिभा काम नहीं आएगी। स्वयं अपना विकास करने की भावना अंकुरित नहीं होगी। आजादी के बाद भी औरों पर व सरकार पर निर्भर रहने की, परमुखापेक्षी बने रहने की गुलामी की आदत बनी रहेगी। अरबों रुपए का विदेशी कर्ज लेकर भी स्वावलंबन का सपना साकार होने के स्थान पर परावलंबन के शिकंजे में ही जीवन जकड़ा रहेगा। गांव की आवश्यकता पूर्ति गांव के आधार पर ही संभव है। आजादी को सार्थक बनाने का यही मार्ग है। अतः गांव-गांव में खोज और विकास के प्रयास समाज-शिल्पियों को प्रारंभ करने होंगे।

अंग्रेजों के शासनकाल में ऐसी न्याय व्यवस्था प्रारंभ हुई है, जो गांव को कंगाल बनाती जा रही है। हर जिले की कचहरी का दृश्य देखें, देहातियों का मेला लगा हुआ दिखेगा। हर वकील की चौपाल पर न्याय खरीदने के लिए गांव-गांव से देहाती पहुंचे हुए देखने को मिलेंगे। वे अपना मुकदमा जीतने के लिए वकील को मुंहमांगा दाम देते हैं। ये मुकदमे सालोसाल चलते हैं। आपसी कलह के कारण देहाती लोग बरबादी खरीदते हैं। देहातियों की बरबादी पर वकीलों की एक से एक बढ़िया कोठियां खड़ी हो रही हैं। आजाद भारत के आधुनिक शिक्षा से विभूषित वकीलों, न्यायाधीशों एवं शासकों के दिलों को स्वजनों का यह दयनीय दृश्य स्पर्श तक नहीं करता, मानो उनकी संवेदनशीलता चेतनाशून्य बन गई है। इस दारुण दशा से मुक्ति पाने के लिए ग्रामीण स्तर पर ही उपाय करने होंगे। गांव के झगड़े गांव में ही निपटाने की प्रथा पुनर्जीवित करनी होगी। उपर्युक्त बरबादी की अनुभूति हर गांव के एक-एक निवासी को है, किंतु उन्हें इस समस्या का उपाय सुझानेवाला कोई नहीं है। इस दिशा में पहल करने का काम हम लोगों को करना होगा।

उपर्युक्त लक्ष्य सिद्धि के लिए हमें ग्राम पंचायतों से कार्य प्रारंभ करने होंगे। क्योंकि विधान

विराट पुरुष

सभाएं, लोकसभा, राज्यसभा ग्राम पंचायतों का मार्गदर्शन करने में पूर्णतः अक्षम सिद्ध हुई हैं। इन सदनों में तथाकथित जन प्रतिनिधि आरोप-प्रत्यारोप, गाली-गलौज और हंगामे का दृश्य आए दिन उपस्थित करते हैं। ऐसे लोगों से प्रेरणा लेकर ग्राम पंचायतें काम करेंगी तो राष्ट्रजीवन ध्वस्त हो जाएगा। ईश्वर कृपा से साधारणतः ग्राम पंचायतें उपर्युक्त सदनों से अभी तक अधिक सभ्य बनी हुई हैं। वर्तमान परिस्थिति में सुधार ऊपर से नीचे की ओर होने की संभावना नहीं रही। आज सुधार का क्रम नीचे से ऊपर की ओर बढ़ाने की आवश्यकता है।

ग्राम एक छोटी इकाई है। इन आबादियों में सबसे व्यक्तिगत संपर्क साधना सहज संभव है। संपर्क के माध्यम से अनुमान लगाया जा सकता है कि आबादी में कौन-कौन ऐसे व्यक्ति हैं, जिन पर सबकी सहमति संभव हो सकती है। इस अनुमान के आधार पर पंचायत के चुनाव सर्वसम्मति से संपन्न करने का प्रयास करना लाभकारी रहेगा। गांव के हर परिवार का हित सर्वसम्मति चुनाव में ही है। यह बात लोगों के दिल और दिमाग में जमाना अधिक कठिन नहीं है। इसके लिए निरंतर प्रयासरत रहना होगा। इस कार्य को किसी एक राजनीतिक दल की ओर से करना फलदायी नहीं होगा। गैर-राजनीतिक आधार पर ही यह कार्य संभव है। इसी प्रक्रिया से ग्रामों में सर्वमान्य व्यक्ति पनप सकेंगे। तभी ग्राम-ग्राम में आपसी अनबन या झगड़े स्थानीय आधार पर सबके विश्वासपात्र पंचों द्वारा निबटाए जा सकेंगे। इसी से कचहरियों में गांव व गांव के परिवारों की हो रही बरबादी रुक पाएगी।

हर आबादी में सबके विश्वासपात्र, पक्षपातरहित अर्थात् सर्वमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति के बिना देश में एकता एवं एकात्मता का विकास संभव नहीं है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में ऐसी कार्यपद्धति अपनाना, जो निष्पक्ष एवं सर्वमान्य व्यक्तियों के विकास में बाधक हो, राष्ट्र की एकता एवं अखंडता तथा एकात्मता पर कुटाराघात है। अतः ऐसी विघटनात्मक पद्धतियों को देश से निकाल बाहर करना नितांत आवश्यक है।

□

मातृभाषा संस्कार रचना का आधार

आदरणीय सभापति महोदय! उपस्थित स्नेहमयी बहनो एवं साहित्य के प्रशंसक बंधुओ! मेरे प्रति स्नेह के कारण ही एक साहित्य कृति का लोकार्पण करने के लिए मुझे यहां आमंत्रित किया गया है। मैं तो कोई साहित्यकार नहीं हूं। हिंदी मैंने पढ़ी नहीं, हिंदी भाषा-भाषियों के बीच में सन् 1935 से मैं रह रहा हूं, संघ के आदेश के कारण। मेरी मातृभाषा मराठी रही। हिंदी व्याकरण से तो मेरा कोई नाता-रिश्ता ही नहीं रहा है। ऐसे अनभिज्ञ व्यक्ति के द्वारा हिंदी की एक साहित्यक कृति का लोकार्पण संभवतः आप सब लोगों को अटपटा लग सकता है। मैंने प्रारंभ में ही कहा कि केवल आत्मीयतावश, स्नेहवश डॉ. शर्मा ने मुझे आग्रह किया कि तुम आओ। संसार में आत्मीयता से अधिक प्यारी या अधिक लुभावनी कोई चीज हो सकती है, इसकी मैं कल्पना नहीं कर सकता। आत्मीयता का बड़प्पन से नाता-रिश्ता नहीं। आत्मीयता सुंदर-असुंदर की विभेदकारी भावना से नहीं देखती। इस पुस्तक में अनेक पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। इसमें आत्मीयता शब्द का पर्यायवाची शब्द है या नहीं, मुझे नहीं पता। मैंने कोशिश की देखने की, मुझे नहीं मिला। संभवतः इसका कोई पर्यायवाची शब्द हो ही नहीं। इसी कारण हिंदी से अनभिज्ञ हिंदी के ज्ञान से कोसों दूर और हिंदी के व्याकरण से अपरिचित होते हुए भी आज मैं इस पुस्तक का विमोचन करने के लिए यहां उपस्थित हुआ हूं।

क्या है इस पुस्तक में? हिंदी को राष्ट्रभाषा कहा गया है, किंतु इसको व्यावहारिक धरातल पर राष्ट्रभाषा बनने नहीं दिया गया है। 50 साल हो गए, स्वतंत्रता की स्वर्णजयंती मनाई जा रही है, किंतु लगता है हिंदी प्रभु राम की तरह वनवासी है। उस हिंदी की व्यावहारिक संरचना के बारे में आज लिखना पड़ रहा है। क्या कहूं इसे? अपने मित्र सत्येंद्र का मैं अभिनंदन करूं या देश के राष्ट्र नेताओं के प्रति मन में जो आक्रोश है, उसे प्रकट करूं, यह समझ में नहीं आता, किंतु और किसी के लिए इस पुस्तक का उपयोग हो, न हो, मेरे लिए बहुत है। मैं इसमें से बहुत कुछ सीखूंगा, सीखा भी है। थोड़ी पढ़ी है, पूरी मैं पढ़ नहीं पाया, झूठ बोल नहीं सकता, समय नहीं मिला। धीमी चाल से चलना आयु के कारण नहीं, स्वभाव के कारण है। पढ़ता भी धीरे-धीरे हूं। सवा तीन-साढ़े तीन बजे रात को उठकर साढ़े नौ बजे तक पढ़ता हूं, लेकिन ऐसे कुछ कार्य पीछे पड़े रहते हैं।

डॉ. सत्येंद्र शर्मा की हिंदी कृति के विमोचन के अवसर पर नानाजी का संबोधन, 1997

विराट् पुरुष

मैं तो हिंदी का कोई ज्ञाता नहीं, हिंदी का कोई अध्ययनशील कार्यकर्ता भी नहीं। हिंदी का भक्त अवश्य हूँ। कारण, हिंदी के बिना देश का गौरव नहीं है। जब तक हिंदी देश भर की भाषा नहीं बनेगी, तब तक हम अंग्रेजी, तमिल और पंजाबी में आपस में बात कर पाएंगे क्या? कोई दूसरी भाषा भारतीयों को एक-दूसरे के हृदय को समझने की हो ही नहीं सकती। ऐसे में हिंदी की व्यावहारिक संरचना आवश्यक है।

इस पुस्तक के लेखक ने सरलता के माध्यम से अपने अध्ययन की गहनता इस पुस्तक के एक-एक शब्द में अंकित कर रखी है। बहुत सरल है, मेरे जैसे आदमी की समझ में आ रही है तो सरल ही होनी चाहिए। मुझ पर बड़ी कृपा की सूरदास वाजपेयी ने। इनका नाम शायद आप लोगों ने सुना होगा। हिंदी के व्याकरणाचार्य माने जाते थे। मेरा-उनका घर का संबंध था। हरिद्वार जाता था तो मुझे डांटते थे कि तू यहां क्या कर रहा है, चल मेरे घर। उनकी आर्थिक हालत खराब थी, लेकिन हृदय बहुत विशाल था। उनसे बात करता था, कुछ व्याकरण की बातें होती थीं तो लगता था कि व्याकरण का भाषा में बड़ा महत्त्व है। किंतु कई बार व्याकरण भाषा को जटिल बना देता है। व्याकरण के नियमों का अनुसरण करते हुए सरल भाषा लिखना, जो व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध हो, लेकिन साधारण-से-साधारण व्यक्ति के लिए भी सुगम हो, यह बहुत कठिन है। यह काम डॉ. सत्येंद्र शर्माजी ने किया।

मां बननेवाली युवती को यह किताब गीता की तरह पढ़नी चाहिए। संस्कार भी व्यावहारिक संरचना के साथ न हो तो बच्चा अभिव्यक्ति ठीक नहीं कर पाएगा और ये अभिव्यक्ति मानव की विशेषता है। जिस मानव में अपने मन के भाव को शब्दों के रूप में प्रकट करने की क्षमता न हो, क्या उसे मानव मानना चाहिए? और युवती जो बच्चे को जन्म देनेवाली है, मानव को जन्म देनेवाली है, उसकी तो सबसे पहली आवश्यकता है भाषा की व्यावहारिक संरचना। इस पुस्तक में यह ज्ञान पर्याप्त मात्रा में है, संपूर्ण मात्रा में है।

आज बड़े दुर्भाग्य की बात है कि जब से आजादी मिली, तब से इस देश के प्रत्येक राष्ट्रपति, संजीव रेड्डी को छोड़कर, शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने की बातें अपने भाषणों में सम्मिलित करते रहे। फिर भी किसी प्रधानमंत्री ने हमारी शिक्षा-पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस नहीं की। आज तक शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन तो क्या, ऊपरी परिवर्तन भी नहीं हुआ। यह सरकार से नहीं होगा, सरकार का काम भी नहीं है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में हम प्राथमिक में पढ़ते हैं, माध्यमिक में पढ़ते हैं, विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं, लेकिन मुझे ऐसी आवश्यकता दिखाई पड़ रही है कि पूर्व वास्तविक प्राथमिक पढ़ाई तो गर्भ काल से ही शुरू होती है। अभिमन्यु ने कहा पढ़ा था चक्रव्यूह का भेदन?

अब अमरीका के नार्थकोटो विश्वविद्यालय में इसका शोध चल रहा है कि बच्चा मां के गर्भ में कौन से महीने से सुनने लगता है। महाभारत में जो लिखा है कि अभिमन्यु मां के गर्भ में ही चक्रव्यूह भेदन की विधि सीख गया। तो यह मां के पेट में शिक्षित होने के तथ्य पक्के हैं या मिथ्या हैं, केवल यह जानने के लिए हम प्रयोग कर रहे हैं। उनके प्रयोगों में तो सिद्ध हुआ है कि यह

समाजशास्त्री

तथ्य है। मैं देख आया 15 दिन अमरीका में रहकर कि बच्चा साढ़े चार महीने से सवा पांच महीने की स्थिति में माता-पिता की क्षमता के आधार पर पेट में बाहर की बातों को सुनता है। तो प्राथमिक शिक्षा तो गर्भकाल में ही शुरू होती है। यह शिक्षा है मां बननेवाली महिलाओं को, बाप बननेवाले पुरुषों के लिए। मां-बाप को शिक्षक का दायित्व निभाना ही पड़ता है, भले ही वे शिक्षक न हों।



संस्कार निर्माण भारत को विश्वगुरु बनाएगा

मैं शुरु में कुछ बातों को आपके सामने रखूंगा, जिन पर आपको विचार करना चाहिए और अपने-अपने क्षेत्र में समयबद्ध कार्य योजना बनाकर उसे कार्यान्वित करना चाहिए। कुछ मोटी-मोटी बातें हम सबको ध्यान में रखनी पड़ेंगी, जिसमें अपने को स्पष्ट होगा कि अपने काम की दिशा क्या है? अपना लक्ष्य क्या है? दोनों बातें हमारे ध्यान में रहेंगी तो हमारी कार्य योजना दोषमुक्त रहेगी। शायद आप लोगों में से उन दिनों में कोई मौजूद नहीं था, जिन दिनों में देश की आजादी के लिए संघर्ष चल रहा था। यह मेरा सौभाग्य ही कहिए कि मैं उस संघर्ष के काल में संघ के प्रचारक के नाते प्रत्यक्ष कार्य में जुटा हुआ था। उन दिनों संघ का काम बिलकुल नया था। नया था कहने के बजाय यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि काम की शुरुआत थी। लोग जानते ही नहीं थे कि संघ क्या है? इस कारण संघ का कार्य प्रारंभ करने के लिए हमें समाज के हर प्रकार के लोगों से मिलना पड़ता था। कुछ कर भी नहीं पाए थे, लोग कुछ जानते ही नहीं थे तो बने-बनाए योगदान के स्रोत से लोग परिचित भी नहीं थे।

लेकिन उन दिनों का नक्शा हमारे सामने साफ था कि देश की आजादी के लिए काम करना है। शहर के कुछ पढ़े-लिखे लोग मार्गदर्शन करते थे और स्वयं भी जुड़ते थे, लेकिन जो लोग जवान थे, उनमें से लगभग 99 प्रतिशत गांव के होते थे। सब प्रकार का सत्याग्रह करते, लाठीचार्ज सहते। उनमें लगभग सभी लोग देहात से होते थे। वे ऐसे जवान थे, जो शहरों में पढ़ने के लिए आते थे। गिने-चुने नेता शहरों के थे, जो नेता कहलाए गए। वे बड़े हो गए, उनका नाम हो गया। उन दिनों में साहस चाहिए था, प्यार चाहिए था और बलिदान चाहिए था, जिसकी क्षमता गांव के लोगों में ही होती है, शहर के लोगों में नहीं। लेकिन ये गांव के लोग शहर में पढ़ते थे। विद्यालय छोड़ने का मामला आया तो यही सामने आए। अब आजादी आ गई, आजादी के 50 साल बीत गए, आज भी शहरों में ज्ञानियों की बड़ी होड़ लगी हुई है। उसके बावजूद यदि आंकड़े देखें तो 72 फीसदी लोग गांव से आते हैं, फिर भी गांव की हालत खराब है। इन 50 सालों में गांव का विकास नहीं हुआ।

चित्रकूट में समाजशिल्पी दंपतियों के बीच नानाजी का संबोधन। अक्टूबर, 1998

समाजशास्त्री

दुनिया भर की बड़ी कंपनियां, जिनको हम बहुराष्ट्रीय कहते हैं, जिनके अनेक देशों के अंदर व्यापार हैं, कारखाने हैं, ऐसी सब कंपनियां हिंदुस्तान में आना चाहती हैं। आई भी हैं और जमी भी हैं। वे हिंदुस्तान में क्यों आना चाहती हैं? इसलिए आना चाहती हैं कि हिंदुस्तान का बाजार बहुत बड़ा है। उनको लगता है कि हमारी चीजें खूब बिकेंगी, उनको पैसा मिलेगा और उनका कारखाना बहुत बढ़ेगा। हवाई चप्पल बनाना तो हिंदुस्तान की कंपनियों ने शुरू किया, लेकिन आज ज्यादातर हवाई चप्पलें बहुराष्ट्रीय कंपनियों की बिक रही हैं। ये कंपनियां विदेशी हैं। खाने की सभी चीजें उनकी ही हैं। भुजिया, मकई की लाई, जिसे कॉर्नफ्लेक्स कहते हैं, ऐसी आम खाने की चीजों का उत्पादन करने में भी सबसे ज्यादा क्षमता विदेशी कंपनियों की है। हमारे देश की नीति क्या है? बहुराष्ट्रीय कंपनियों का विरोध करके काम नहीं चलनेवाला, स्वदेशी जागरण करके नहीं चलेगा। उसका उपाय खड़ा करना है, उसका भी ध्यान देना होगा। परंतु सब प्रकार के विकास का दृश्य शहरों में ही दिखता है, गांव में नहीं।

मैंने विदेश जाने के पहले आप लोगों को पत्र लिखा था। खासकर जितने समाजशिल्पी हैं उनको। विदेशों में भी बड़ी गड़बड़ियां हैं। एक तरफ तो बहुत पैसेवाले हैं और दूसरा एक वर्ग वह खड़ा हो रहा है जिसको काम नहीं मिल रहा। मैं अभी इंग्लैंड गया था। मैंने वहां ज्यादा अध्ययन करने की कोशिश की। वहां जितने बेकार हैं, जिन्हें काम नहीं मिलता, उनको सरकार की ओर से पैसा मिलता है। मैंने एक लार्ड से पूछा, जो अपर हाउस का मेंबर होता है, यह कब तक चल पाएगा? वे बोले कि बड़ा मुश्किल है। हमारी इकोनॉमी बड़ी खराब हो रही है।

मैं मैनचेस्टर गया तो वहां देखा कि खूब पैसेवाले लोग बढ़ रहे हैं। अपने देश में मुश्किल से 7 प्रतिशत लोग हैं, जिनके पास खूब पैसा है। इसका विचार किया तो कुल 13 प्रतिशत लोग समाज में हैं, जिनके द्वारा हमारे कारखाने चल रहे हैं। सरकारें मार्केट के आधार पर अपनी योजना बना रही हैं, जिसमें मानव की फिक्र नहीं है। कम आदमी लगानेवाली तकनीकी काम में लाई जा रही है। यह टिकनेवाला नहीं है। यह सारी व्यवस्था अगले 25 से 30 साल में अपने आप धराशायी हो जाएगी। जैसे रशिया में कम्यूनिज्म समाप्त हो गया। तो फिर संसार का क्या होगा। संसार में यह कोई नहीं सोच रहा है कि 20 से 40 साल के बाद जो स्थिति आनेवाली है, उस समय सारे संसार को किस रास्ते पर जाना होगा।

समाज के लिए अपनी संतान पर संस्कार क्या होने चाहिए, यह मां और बाप को पता होना चाहिए। अब तो धीरे-धीरे परिवार में भी गड़बड़ हो गई है। बेटा मां-बाप की ज्यादा परवाह नहीं करता, क्योंकि अपने पूरे गांव के लोगों की परवाह करने के संस्कार कुटुंब में बचे नहीं हैं। हम खुशी इस बात की मनाते हैं कि मेरा बेटा ज्यादा-से-ज्यादा कमाई कैसे कर रहा है। यह कितना गलत है। यह भारतीय विचार के अनुसार नहीं है। अपने को यहां से शुरुआत करनी है कि मेरा कुटुंब कैसा हो, मेरा बेटा कैसा हो, मेरी बेटी कैसी हो, उसको क्या पढ़ाऊं, उसके दिमाग में कौन सा विचार डालूं। व्यक्ति कुटुंब का अभिन्न सदस्य है, लेकिन वह समाज का भी हो, क्योंकि कोई भी कुटुंब संसार में अकेला नहीं रहता है। गांव में रहता है, शहर में रहता है और मोहल्ले में

विराट पुरुष

रहता है। पति-पत्नी के नाते हम उन लोगों को कार्य में लगा रहे हैं। तुम्हीं केवल काम कर रहे हो इतना भर से काम नहीं चलेगा। तुम्हारे छोटे बच्चों को भी करना है। तुम्हारे गांव के अंदर किसी के यहां कोई बीमार हो, गरीब हो, तुम सेवा करने जाओगे। साथ में बच्चा भी जाएगा, तो बच्चे को लगेगा—हां भाई, जो गांव के अंदर तकलीफ है, उसके विषय में विचार करना है। यदि एक सज्जन इस काम में लग भी गए और पत्नी समाज के किसी काम में सक्रिय नहीं है, तो उनकी संतान समाज के किसी काम की नहीं होगी। जिनके बच्चे सामाजिक दृष्टि से जीवन में कार्यरत नहीं होंगे तो चाहे वे जितने बड़े नेता हों, कोई मतलब नहीं।

मैं जब सोचता हूं तो मुझे आज भी लगता है कि भारत को ही सारे संसार में मानवमात्र का मार्गदर्शन करना पड़ेगा, अमरीका को नहीं। उनका चलनेवाला नहीं है और न ही जापान का चलनेवाला है। किसी का चलनेवाला नहीं है, क्योंकि हमारे रक्त में, परंपरा में वे चीजें हैं, जो हमारे ऋषि-मुनियों ने पुरातन काल में सोचीं। आखिर उन्हीं का रक्त तो हमारी धमनियों में बह रहा है। हमको एक बार पता चल जाए कि इस रास्ते पर चलना है तो हम अपने को ठीक बना सकते हैं, परंतु काम बहुत कठिन है, इसमें कोई शक नहीं। तुम लोग संसार के लिए बड़ा अनुकरणीय नमूना खड़ा करने जा रहे हो। उसमें आप सबको सफलता मिलनी चाहिए। यही मेरी प्रभु राम के चरणों में प्रार्थना है।

□

तृणमूल विकास सबल समाज का आधार

संसार में हर स्थान पर समाज को तीन कालों के आधार पर समझने की कोशिश की जाती है। वे हैं—समाज का भूतकाल, यानी बीता हुआ काल, वर्तमान काल और भविष्य काल। ऐसे तीन कालों में कोई भी देश पहचाना जाता है। हर देश का भूतकाल होता है। किसी का बहुत पुराना भूतकाल होगा, किसी का कम पुराना होगा, कोई देश नए से अस्तित्व में आएगा। जैसे पाकिस्तान नया देश बन गया, 50 साल हो गए। बांग्लादेश है उसको 27 से भी कम वर्ष हुए। वर्तमान काल भी सबका होता है और भविष्य सबको बनाना है। सब काल एक जैसे नहीं होते। सब काल परिवर्तनशील, गतिशील हैं। अपने को यह सोचना पड़ेगा कि भूतकाल में जो कुछ हुआ, वह हो गया। अब वर्तमान काल भी भूतकाल में बदल रहा है।

शिवाजी ने जैसा साहस किया, उससे प्रेरणा मिलती है। मगर जो शिवाजी ने किया, उसकी आज आवश्यकता नहीं। भविष्य वर्तमान से अलग बननेवाला है। लक्ष्य सिद्धि की दृष्टि से सोचना पड़ेगा। भूतकाल से संयम की प्रेरणा ले सकते हो, साहस की प्रेरणा ले सकते हो, गुणों की प्रेरणा ले सकते हो, काम की प्रेरणा नहीं ले सकते। भाव की प्रेरणा ले सकते हो, व्यवहार की प्रेरणा नहीं ले सकते हैं। इसलिए समझदारी की बात है कि भूतकाल से प्रेरणा लो। जो भूतकाल पर आश्रित रहता है, उसका भविष्य बननेवाला नहीं है। वर्तमान काल का अर्थ है—‘भविष्य के लिए प्रयोग करना।’ जो वर्तमान काल का प्रयोग भविष्य निर्माण के लिए नहीं करेगा, वह अपने जीवन में अयशस्वी होगा, उसे यश नहीं मिलेगा। यदि अपने देश का भविष्य बनाना है तो भविष्य काल में क्या परिस्थिति बनेगी, उसका ध्यान रखना होगा। हमारा भूतकाल तो अखंड भारत का था, अब अखंड भारत तो है नहीं। बनेगा क्या? जैसा था वैसा बनेगा क्या? आजादी भविष्य निर्माण के लिए मिली। अगर यह सोचा गया होता तो आज यह स्थिति नहीं रहती। भविष्य के चित्र को यदि हम लोगों के दिमाग में खड़ा नहीं कर सकते तो वर्तमान नष्ट कर रहे हैं। यही 50 साल पहले हुआ, आजादी पाने के लिए अपने देश में संघर्ष हुए। तब जो तरीके हमने अपनाए जैसे कि हड़ताल करो, बंद करो, सत्याग्रह करो, वह सब विदेशी सरकार के खिलाफवाले तरीके थे। पटरी

विराट पुरुष

उखाड़ दो, तार तोड़ दो, पुल नष्ट कर दो, क्योंकि रेल नहीं तो सेना नहीं पहुंचेगी, तार तोड़ दो सूचना नहीं पहुंचेगी। अब ये तरीके परिवर्तन नहीं लाएंगे। अध्यापक अपनी तनखाह बढ़ाने के लिए हड़ताल करेंगे तो विद्यार्थी कैसे अच्छे बनेंगे? भारत की संतान में कौन सा परिवर्तन लाकर काम करना होगा, इसका चित्र सामने नहीं होगा तो भारत की भक्ति केवल वाणी में रहेगी, व्यवहार में नहीं उतरेगी।

प्रयोग करो, प्रयोग की कोई परंपरा नहीं होती। हमारे जीवन की खासियत कायम रहे। हमारी संतान में कायम रहे, हमारे समाज में कायम रहे और हमारे राष्ट्र में कायम रहे। समय गतिशील है, परंतु मूल्य बदलते नहीं, वे स्थिर रहते हैं। उधर हमारा ध्यान नहीं, इसलिए गड़बड़ हो रहा है। जीवन के प्रयोग जितने हमने किए, उतने किसी देश में नहीं किए गए। अपना मूल्य है 'वसुधैव कुटुम्बकम्।' इसका अर्थ है—मैं खुशहाल बनूं और संपूर्ण वसुंधरा पर रहनेवाले लोग खुशहाल बनें, यह कोशिश करना। भारत का लक्ष्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं। हमारा शरीर बदलता है, हमारे तौर-तरीके बदल जाते हैं, लेकिन हेतु हमारा वही होता है। समाज की ये संस्कृति है, सभ्यता है, विशेषता है। तो ये चीज चिरस्थायी है, बाकी परिवर्तनशील है। मैं जिस आबादी में रहूंगा, उस आबादी में कोई दुःखी नहीं रहेगा, गरीब नहीं होगा, बेपढ़ा-लिखा नहीं होगा। यदि तुम्हारे रहते कोई दुःखी रहा तो तुम हिंदू रहे नहीं। यह ध्यान न रहा तो स्वतंत्रता और स्वाधीनता बेमानी। अपना देश आज इसलिए गरीब है, क्योंकि दूसरे लोगों से सहायता चाहता है, दुनिया की दया पर अपनी प्रगति चाहता है। दूसरे की दया से जीना ये भारत की परंपरा नहीं है।

वास्तव में वर्तमान काल है—भविष्य काल को संवारने के लिए। जिस गांव में हम जाएंगे, उसे समृद्ध बनाएंगे। अपनी संतान के लिए भी प्रयोग करने पड़ेंगे, तब गांव के बच्चों के लिए भी प्रयोग सफल होंगे। तब समाज स्वास्थ्य शिल्पी हम सही अर्थ में हैं। 50 साल में जो काम बड़े-बड़े नेताओं ने नहीं किया, वो काम हम छोटे कहलानेवाले लोग करनेवाले हैं। यह ऐतिहासिक कार्य होगा।

भूमंडलीकरण यानी लूट भावना

आजकल तुमने सुना होगा या अखबार में पढ़ा होगा 'ग्लोबलाइजेशन।' ग्लोबलाइजेशन की भावना से पूरा विश्व काम कर रहा है। इसके पीछे कोई कल्याणकारी भाव नहीं है। एक-दूसरे को लूटने की भावना है, जिसकी लाठी उसकी भैंस। अमरीका, जर्मनी, जापान सब इसी चक्कर में हैं। ज्यादा सरदार बन रहे हैं। ये जो सोच है, यह आज की सोच है, पर हजारों-हजार साल पहले जब दुनिया शुरू हुई, तब अपने देश ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' कहा। सारी पृथ्वी हमारा कुटुंब है, परिवार है। संपूर्ण विश्व, संपूर्ण पृथ्वी के लोग एक परिवार के हैं, सब एक-दूसरे के सहायक हैं। हम लोगों ने हजारों साल पहले सोचा था, सारा विश्व हमारा परिवार है, जिसके सुख के लिए हम कष्ट सह सकते हैं। इससे एक बात साफ है कि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में परिवार की भावना है। अब सारे विश्व की मूल इकाई कौन सी है? वह गांव है। गांव खुशहाल नहीं किया जा सका

समाजशास्त्री

तो विश्व खुशहाल नहीं कहा जा सकता। इसीलिए आज अपना देश रो रहा है। यानी हम थोड़ी सी चीज ठीक नहीं कर सकते तो शहर को क्या कर सकेंगे। शहर में लोग गंदी बस्ती में रह रहे हैं। सरकार की नजर इन पर नहीं पड़ती। ऐसे लोग नेता बनते हैं, जिनसे आम लोग मिल नहीं सकते। घंटा-डेढ़ घंटा, सवा दो घंटा काम करनेवाले भी 10-15 हजार रुपया महीना लेंगे। किंतु देश में बहुत लोग हैं, जिनको दोनों समय खाने को रोटी नहीं मिलती। यदि गांव उन्नति करेंगे तो देश तरक्की करेगा।

जड़ से शुरू करो। असली जड़ें गांव हैं। ग्राम यदि बढ़िया हो जाएंगे तो देश बढ़िया हो जाएगा। हमने तय किया कि दुनिया में दिखा देंगे कि गांव अपने बलबूते अपने पैरों पर खड़े होंगे। ऐसे 500 गांव खड़ा करेंगे। तब अपना देश रास्ते पर आएगा। अपना देश अभी भटक रहा है, लोगों की नजर में अभी हम लोग बेवकूफ हैं। जिनको शर्म है, उनको इस काम में नहीं आना चाहिए। गांवों को ठीक किया तो सारा देश ठीक होगा, इसलिए प्राथमिकता गांव की है। ग्रामोदय के पीछे हमें हाथ धोकर पड़ जाना है। धीरे-धीरे सब होगा। ग्रामोदय के लिए हम दोनों पति-पत्नी जुट जाएँ। राम और सीता जुट गए थे। गांवों का उद्धार करनेवाला राम शरीर से नहीं है, पर अमर है। सत्य वही है, जिसने मूल को ठीक किया। हमने नगरोदय छोड़कर ग्रामोदय लिया, यह मूल चीज है।

संवेदनशीलता या भोगवादिता

हम लोग एक बात प्रारंभ से ही समझने का प्रयास कर रहे हैं कि परिवार, आबादी, देश और विश्व ये निरंतरता लिये हुए हैं। जो चीज निरंतर है, वह अच्छी हालत में रहनी चाहिए, लेकिन हम कहीं अच्छी हालत, कहीं बहुत ही दयनीय हालत देखते हैं। ऐसा क्यों होता है, यह समझे बिना समाज स्वास्थ्य शिल्पी के नाते हमको क्या करना है, यह समझ में नहीं आया। इस अच्छी-बुरी हालत के पीछे कारण क्या हैं? कारण मानव है, हम हैं। यह कैसे? इसे समझने के लिए मानव को समझना पड़ेगा।

मानव का मतलब शरीर भर नहीं है। मानव का मतलब मन ही नहीं है। मानव केवल बुद्धि नहीं है। मानव में आत्मा भी है। इनको अलग-अलग नहीं किया जा सकता। ये चारों चीजें इकट्ठी रहती हैं। जैसे ही ये चारों चीजें अलग हुईं, आदमी मर जाता है। ये चारों चीजें जब इकट्ठी होती हैं तो मानव में कर्तृत्व जागता है। कुछ कर दिखाने की शक्ति चारों के इकट्ठे होते ही प्रगट होती है। बाकी जितने प्राणी हैं, उनमें कोई कर्तृत्व नहीं। उनके प्रकृति ने जो नियम बना दिए, वही करेगा। स्वयं सोच करके कोई नई चीज नहीं करता। हम लोगों ने वनवासी बालक-बालिकाओं के लिए ये आश्रमशाला बनाई है। क्या मानव को छोड़कर ऐसी कोई चीज, दुनिया का कोई भी प्राणी कर सकता है, नहीं कर सकता है। नई-नई चीजें करने की क्षमता मानव में है। ये जब चारों चीजें होती हैं—शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—तो मानव अजब-गजब करिश्मा करके दिखा सकता है।

विराट पुरुष

अब समझना पड़ेगा कि मानव जीवन के इन चारों पहलुओं—शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा—के गुण धर्म क्या हैं? ये गुणधर्म प्रकृति ने ही तय किए हैं। आत्मा का गुण-धर्म संवेदनशीलता के माध्यम से प्रकट होता है। यह भी प्राकृतिक है। किसी को दुःखी देखा तो मन में आता है इसका दुःख दूर करो। ये सहज भाव पैदा होता है, यह आत्मा के कारण होता है। फिर यदि अपने पास कुछ हो, जिससे उसका दुःख दूर हो, तो आत्मा कहती है—दे दो। शरीर कहता है—ले लो। हमारे शरीर के व्यक्तित्व के ये दोनों अभिन्न पहलू हैं, एक बटोरना चाहता है, दूसरा देना चाहता है।

अपने यहां संस्कृत में कहा है न—‘अति सर्वत्र वर्जयेत’। मानव शरीर और आत्मा में संतुलन रखना। कारण क्या है कि आत्मा कितनी भी अच्छी हो, वह शरीर के बिना काम नहीं कर सकती। अच्छे-बुरे दोनों काम कौन करेगा? शरीर ही करेगा। इसलिए सबसे बड़ी जरूरत है शरीर और आत्मा इन दोनों में संतुलन रखना।

वह मां-बाप का काम है, शिक्षा और संस्कार देना। मानव के लिए शिक्षा इसीलिए चाहिए कि वह शरीर और आत्मा के गुण-धर्मों में संतुलन रखे। आदमी की प्रतिभा अच्छे काम के लिए आनी चाहिए। नहीं तो अमरीका ने 1945 में जापान के हिरोशिमा-नागासाकी में ऐसा बम डाला कि सबके सब मारे गए। मानवीय कृत्य है, मानव अच्छे कार्य करता है, मानव बुरे भी कार्य करता है। मानव सृजनशील भी है और मानव विध्वंसकारी भी है। इसका कारण है कि आज हमारे परिवार, आबादी, देश और विश्व से यह बात गायब हो रही है। मानव को मानव बनाना, मानव को मानवीयता से विभूषित करना, इसके संस्कार कहीं मिलते नहीं, इसकी शिक्षा संसार में नहीं मिल रही है। अब इन चीजों को लेकर के अपने को अपने-अपने निर्धारित क्षेत्र में जाना है। उपदेश देना हमारा काम नहीं है, लेकिन जीवन का हरेक काम मानवीयतापूर्ण कैसे हो, यह सोच-समझकर जिनके भी हम संपर्क में आएं, या जिनके संपर्क में रहकर हमको काम करना है, उनमें शरीर और आत्मा का संतुलन विकसित करने का प्रयास करना है।

सबका हित ही अपना हित

हर व्यक्ति में, चाहे महिला हो या पुरुष, पढ़ा हो या अनपढ़, छोटा हो या बड़ा हो, भगवान् ने उसके अंदर एक बहुत बढ़िया बुद्धि दे रखी है। ये पैदाइशी बुद्धि है। उस बुद्धि का नाम है—सत्-असत् विवेक बुद्धि। अपने यहां ऋषि-मुनियों ने कहा है—‘परदारेषु-मातृवत्’, मतलब दूसरे की पत्नी मां है। अब यह तो आप जानते हो। कई बार अपनी पत्नी से दूसरे की पत्नी ज्यादा खूबसूरत होती है। ये तो भगवान् का दिया हुआ रूप है, लेकिन लोगों के मन में पाप आता है। पाप हुआ, लालच हुआ, सत्-असत् पर विचार न करना हुआ, ये बचपन से हमें आकृष्ट करता है। परंतु साथ ही आत्मा इन कामों से रोकती भी है। जब हम छोटे थे, चौथी में पढ़ते थे और हम तीन-चार लड़के एक साथ रहते थे, रिश्तेदार थे आपस में। अलमारी में कुछ-न-कुछ मिठाई रखी रहती थी। दिखाई पड़ता था कि अब अलमारी की तरफ किसी बड़े का ध्यान नहीं है, तो झट से

समाजशास्त्री

अलमारी खोलकर मीठा मुंह में डाल लेते थे। कुछ निकालकर जेब में रखते थे। लड्डू निकालते समय भी मन में पाप रहता है, नहीं करना चाहिए। लेकिन खाने की लालच तगड़ी होती है। मन कहता है अरे! ये मत करो, मार खाओगे, लेकिन लालच कहती है—कोई नहीं आता, लो। तो छोटे में भी सत्-असत् विवेक-बुद्धि काम करती है, हरेक के पास रहती है।

मानव के स्वभाव में द्वंद्व चलता रहता है। इसलिए अपने बच्चों पर ऐसी बातों के संस्कार करने चाहिए कि उसकी विवेक-बुद्धि मजबूत हो जाए, वह लालच में न आए। विवेक-बुद्धि इसी को कहते हैं, संस्कार और शिक्षा इसी को कहते हैं। ये अपने को कहां से शुरू करना है। हर चीज अपने से शुरू होनी चाहिए। मैं भी करूंगी, हम पति-पत्नी दोनों करेंगे, और हमारे बच्चे भी करेंगे। नहीं तो मां-बाप बनने का कोई मतलब नहीं। जो अपने में नहीं करेगा, वह गांव के सब लोगों में कैसे क्या कर पाएगा?

शरीर लालची भले हो, लेकिन शरीर का महत्व किसी चीज से कम नहीं। आत्मा से भी कम नहीं, क्योंकि यदि शरीर न रहे तो आत्मा भी कुछ नहीं कर सकती। इसलिए अपने शरीर को रोगरहित रखने का दायित्व भी हम पर है। केवल अपने शरीर का ही नहीं, हमें तो 'सर्वभूत हितैरतः', सबका हित देखना है।

अब जब सबका हित साधना है, सबके हित साधन की जरूरी चीजें कौन सी हैं? हम व्यावहारिक दृष्टि से विचार करेंगे। पहला, सबको भोजन मिलना चाहिए। जितना आवश्यक है, उतना भोजन, संतुलित भोजन। दूसरा, शरीर को ढकने के लिए कपड़े, पैर में कांटे न चुभे तो कम-से-कम जूते, चप्पल, और तीसरी आवश्यक चीज मकान है। सभी के लिए, अपने भर के लिए नहीं। यह मानवीय चिंतन अपने अंदर आना चाहिए।

अब सबकी जरूरत किस माध्यम से पूरी होगी? उपयुक्त माध्यम खेती और दूसरा उद्योग है। खेती में कपास तो हो जाएगा, लेकिन साड़ी, धोती, कमीज, ब्लाउज तो नहीं बनेगा। इसके लिए तो उद्योग ही चाहिए, कारखाना चाहिए। खेत सरसों तो पैदा कर लेगा, पर बिना कोल्हू में सरसों से तेल तो निकलेगा नहीं। तो हम लोग जहां भी जाएंगे, जहां भी काम करेंगे, उन गांवों में खेती कैसे अच्छी हो? खेती इस ढंग से हो कि सबके खाने-पीने की जरूरत पूरी हो जाए। यदि सबकी जरूरतें पूरी हो रही होतीं तो कुपोषण की बातें क्यों आतीं? हम जिन गांवों में काम करेंगे, वहां कुपोषण नाम की चीज नहीं रहने देंगे।

अपने देश की परंपरा में हम लोग अपने देश को मातृभूमि कहते हैं, धर्मभूमि भी कहते हैं और कर्मभूमि भी कहते हैं। अपने देश को कर्मभूमि मानने की प्रथा भारत को छोड़कर कहीं नहीं है। हमारी कर्मभूमि होने के कारण अपने गांव में, अपने परिसर में अपने कार्य-क्षेत्र में कोई भी कर्महीन न रहे। बेकार न रहे का मतलब केवल कमाने भर से नहीं। इसका मतलब है अपने समाज की कोई-न-कोई आवश्यकता पूर्ण करें, मरते दम तक। यह एक बात है, जिसकी तरफ किसी का ध्यान नहीं।

भगवान् की दया से अपनी भूमि संसार की भूमि में सबसे बढ़िया है। अपने यहां का मौसम

विराट पुरुष

दुनिया के मौसमों में सबसे बढ़िया है। हमारे देश में गरमी, बरसात और जाड़े सब प्रकार के दिन हैं। इससे खेती बहुत बढ़िया होती है। अभी अपने देश में फसल अच्छी नहीं हो रही है। हमको खेती बहुत अच्छी करनी है। हमारे गांव-गांव के उद्योग बंद पड़ गए। गांव के लोगों के पास काम ही नहीं बचा। अब गांव में कोई तेली नहीं दिखता। जाति से होगा, काम से नहीं। अब कुम्हार भी बहुत कम मिलते हैं। बढ़ई भी हर गांव में मुश्किल से मिलता है। लौहार भी कहां दिखाई पड़ता है। यानी गांव के सब धंधे, सब उद्योग बंद पड़ गए। इसलिए क्या होगा? खेतिहर मजदूरों की संख्या निरंतर बढ़ रही है और काम नहीं। तो बेचारे शहरों में जाते हैं। गंदी से गंदी बस्ती में रहते हैं, नर्क क्या होता, यह देखना हो तो शहर में गंदी बस्ती में चले जाइए। एक ही जगह स्वर्ग भी है और एक ही जगह नर्क भी। ये शहरों के हाल हैं। अब यह सब अपने को बदलना है। ऐसा काम हम करने जा रहे हैं, जो दुनिया में कोई नहीं कर रहा है। बातें तो करते हैं, सेमीनार होते हैं, बड़ी-बड़ी किताबें लिखी जाती हैं, लेकिन कोई काम नहीं करता। अब ये सब काम हमको करने हैं।

गांव से आएका शहरों में बदलाव

हम लोग गांवों में काम करेंगे। सारे गांव के लोग इकट्ठा रहते हैं। सभी के मकान अलग-अलग है, सबकी खेती अलग-अलग है। कोई व्यापार करता हो तो वह अलग है, कोई धंधा करता हो या उद्योग लगाता हो, वह अलग है। लेकिन रहते एक गांव में हैं। इकट्ठा रहने का मतलब क्या है? परिवार में हम इकट्ठे रहते हैं और सबकी जरूरतें पूरी करते हैं। कोई बूढ़ा हो गया तो घर के लोग उनकी चिंता करते हैं कि नहीं। बच्चा पैदा होता है तो वह कुछ करता-धरता नहीं, उसकी भी चिंता करते हैं। घर के रहनेवाले लोग कोई ज्यादा खाता है, कोई कम खाता है, लेकिन क्या हम उसका विचार करते हैं कि अरे तू ज्यादा क्यों खाता है? सबको जितना लगता है, खाता है, यानी परिवार में हम सब लोग सबकी फिक्र करते हैं। कोई कमाई करता हो, चाहे कोई कमाई न करता हो, परिवार में जितने भी लोग रहते हैं, सब अपनी-अपनी जरूरत का खाते हैं, अपने-अपने जरूरत के कपड़े पहनते हैं। गांव जब पूरा इकट्ठा होता है, चाहे सौ घर हों, चाहे तीन सौ हों, चाहे हजार हों, जब सब लोग इकट्ठा होते हैं तो परिवार के जैसे ही सब लोगों की चिंता की जाती है, सब लोगों की जरूरतें पूरी की जाती हैं। घरों में पैसा कितना है, कितना नहीं इस बात का विचार किए बिना कोई बूढ़ा मरनेवाला भी होगा तो भी उसकी दवा की जाती है। यह तो नहीं सोचता कोई कि भाई ये तो दो-चार दिन में मर जाएगा, क्यों दवा करें। इसका शरीर क्यों साफ करें। तो जब गांव इकट्ठा रहता है, सौ, दो सौ, पांच सौ हजार घर इकट्ठा रहते हैं तो सब लोगों में यह भाव पैदा होना चाहिए कि भाई हमारे गांव में कोई आदमी अभावग्रस्त, कोई आदमी भूखा न सोए, नंगा न रहे। जिसके कोई बच्चा नहीं है, जिसकी कोई देखभाल करनेवाला नहीं है, बीमार पड़ता है, अपने गांव का है, उसकी फिक्र करनी चाहिए।

अब गांव की व्यवस्था देखिए। हमारे गांव में अपने आम के बगीचे थे, लेकिन जब आम तोड़ने लायक होते थे तो गांव के सब लोगों का हिस्सा होता था। मरे जानवर उठानेवाले का हिस्सा,

समाजशास्त्री

तेली का हिस्सा, माली का हिस्सा, चर्मकार का हिस्सा, लौहार का हिस्सा। यानी बगीचा किसका? एक आदमी का, लेकिन गांव में कोई आदमी नहीं था, जिसको आम न मिले। सबका खलिहान होता था, लेकिन सबका हिस्सा होता था। हर दशहरे के दिन चर्मकार हर परिवार में जाकर जूता देते थे। हर दशहरे के दिन हर घर में छोटे बच्चे के लिए गांव में जितना दूध होता था, वह उनके यहां दिया जाता था। जो मट्ठा बनता था, मक्खन निकलता, गांव के सब लोगों को पीने के लिए दिया जाता था। यह मेरे सामने का गांव का जीवन था।

दूसरी बड़ी मजे की चीज थी, ऐसे कुछ किसान होते थे, जिनके पास बैल नहीं होते थे या एक ही बैल होता था तो गांव के सब लोग मिलकर बारी-बारी से सब के खेत जोत देते थे। सब के खेतों को बो देते थे। यानी सारा गांव एक परिवार जैसा रहा करता था। अंग्रेजों ने इस चीज को आगे चलने नहीं दिया। अपने को गांव में जाकर बदलना है, गांव बदलेंगे तो शहर बदलेंगे। आजकल शहर से चीजें गांव में जा रही हैं, गांव से भी तो शहर में जानी चाहिए, जो चीजें गांव में अच्छी हैं।

अधिकार का घमंड अजीब है। अपने समाज में इतने लोग हैं, वे जिंदा रहते हैं या मरते हैं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वे खाली अपने लिए, अपने उपभोग के लिए जी रहे हैं। गांव के लोगों का, समाज का भला उससे नहीं होता। ऐसा आदमी मर गया तो किसी को ख़ास दुःख होता नहीं। काहे के लिए दुःख। वह तो किसी के काम में आता नहीं। ऐसे-ऐसे लोग हैं, जो समाज में आपसी विश्वास की जड़ें खोद रहे हैं।

मैं एक दुकान पर गया, परिचित लोग हैं। बहुत पुराने साथी हैं, वह कई चीजें बेचता है। मैंने पूछा कि भाई, तुमको इसमें कितना नफा होता है? बोले—नानाजी, जो चीज हम चार-पांच सौ के बीच में बेचते हैं, उसमें तो हमको पच्चीस प्रतिशत का नफा होता है, लेकिन जो चीजें हम हजार-डेढ़ हजार में बेचते हैं तो उसमें लगभग 150 प्रतिशत का नफा होता है। यानी चीज 100 रुपए की और बेचता 200 रुपए का है। कुछ चीजें उसकी दुकान में थीं, जो 25 हजार तक में बिकती थीं। बोले—ये 15 हजार से ऊपर की जो चीजें दिखती हैं, उसमें हमको नफा पांच सौ, छह सौ प्रतिशत मिलता है। अजब हाल, और कहते हैं बड़े खुशहाल हैं। इनको खुशहाल कहना चाहिए कि राक्षस?

एक किस्सा है इलाहाबाद का। मैं संघ का प्रचारक था। तो यूनिवर्सिटी के पास में एक यादव परिवार रहता था। तीन भैंसें रखता था, दूध-घी बेचता था। उसके लड़के की शादी थी तो उसका काम करने को सब स्वयंसेवक जुटे थे। वह स्वयंसेवक था। हम भी जुट गए। शादी अच्छी तरह हो गई। दो दिन मैं उसी के यहां रहा। उसको बहुत खुशी हुई। तीसरे दिन सुबह मैं नाश्ता करके निकला, तो उसने एक किस्सा सुनाया। बोला—सन् 1948-49 की जनसंघ बनने के पहले की बात है। संघ का प्रतिबंध हटा ही था। एक प्रोफेसर साहब हमारे पास आए और कहने लगे—भाई, घी चाहिए हमको। हमने कहा—हां सर, कितना चाहिए? एक किलो चाहिए। तो उन्होंने पूछा, क्या भाव है? हमने कहा सर! बाईस रुपया। हमने कहा बिलकुल शुद्ध है। तो वे बोले, अरे छोड़ो, दुनिया

विराट पुरुष

में कहीं कोई शुद्ध बेचा करता है। तुमको बाईस रुपया चाहिए, देता हूं, लेकिन यह शुद्ध थोड़ी होगा।

अब यह बेचारा कहीं मिलावट करता ही नहीं था। हम जानते थे, संघ का स्वयंसेवक, रोज शाखा में आनेवाला प्रभात शाखा में। परंतु आज कोई यह मानता ही नहीं कि कोई चीज शुद्ध बेचता भी है। भले शुद्ध हो। यानी इतना लोगों का एक-दूसरे पर से विश्वास उठ गया है। अब यह भरोसा फिर से समाज में कायम नहीं होगा तो अपना समाज टिकेगा नहीं। समाज नहीं टिकेगा तो परिवार नहीं टिकेगा, परिवार नहीं टिकेगा तो आदमी नहीं टिकेगा।

अपनी शक्ति पर करें भरोसा

अपना यह जो शिविर है, यह कोई व्याख्यान सत्र नहीं है। सबके सामने कुछ भाषण देना अपना हेतु नहीं है। अपने शिविर का हेतु है कि हमको चुने हुए क्षेत्र में प्रत्यक्ष काम कैसे करना है? उस काम का लक्ष्य क्या है? इस पर विचार करना।

दीनदयाल शोध संस्थान में हम किसी को गाली नहीं देना चाहते, गाली देने से क्या होगा कि इन्होंने ही बिगाड़ा है। अरे, बिगड़ तो चुका है। अपना लक्ष्य है कि सरकार का मुख्यापेक्षी न होते हुए लोगों की अपेक्षाएं पूरी करना। हम नेता नहीं, कोई बात नहीं। हम बड़े नहीं, हमारा नाम नहीं, हमारा फोटो छपता नहीं, दूरदर्शन हमारी परवाह करे न करे, हम काम करेंगे। हम तो फोटो और नाम छपाने के लिए नहीं हैं। हम यह नहीं मानते कि हमको पूछकर करना चाहिए, यह राजनीतिक घमंड है। हम तो एक परिवार के नाते काम कर रहे हैं।

जिस परिवार में कोई भी यह कहेगा कि 'मैं', वह परिवार टूट जाएगा। आजकल परिवार-तोड़क खूब हैं, परिवार को बनाए रखनेवाले कम हैं। काम करने में बाधा कब आती है? जब आदमी का 'मैं' जागता है। मैं यह कर रहा हूं। मैंने यह किया। मैं करके दिखाऊंगा। जो मैं को नहीं भुला सकता, वह सामाजिक कार्यकर्ता बन ही नहीं सकता। गुरुजन हैं, नई पीढ़ी को पढ़ाते हैं। लेकिन अपनी तनख्वाह बढ़ाने में लगे रहते हैं। दो-तीन घंटे पढ़ाते हैं, 25 हजार तक चाहिए। कुपोषण से मरनेवाले कितने हैं, इसके प्रति कोई ध्यान, संवेदना नहीं है।

देश की जरूरत पूरी करना ही देशभक्ति

अपने देश में 70 फीसदी लोग गांव में रह रहे हैं। लगभग 28 से 30 फीसदी लोग शहरों में रह रहे हैं। शहर में तो खेती होती नहीं। हमारे खेतों में इतना अनाज पैदा किया जाए कि गांव के खाने-पीने की दृष्टि से पूरा पड़े और कुछ अनाज हम शहरों के लिए दें, क्योंकि उनके यहां खेती नहीं होती। यह जिम्मेदारी हमारी है। असल में आजकल की देशभक्ति क्या है? हर नागरिक बड़ा हो चाहे छोटा हो, वह देशभक्त होना चाहिए, मतलब देश की जरूरत पूरी करनेवाला होना चाहिए। यह खेती के साथ जुड़ी हुई हमारी जिम्मेदारी है। हर युग में देशभक्ति का रूप बदला करता है, देश आजाद नहीं था तो आजादी पाना देशभक्ति थी। अब देश आजाद हो गया तो यही देशभक्ति है कि हम देश भर के लोगों के लिए खाने का पर्याप्त अनाज पैदा करें। अब यदि किसान को पता

चले, उससे देश का विकास हो रहा है तो बड़ा खुश हो जाएगा।

बड़े किसानों के पास सब साधन हैं, लेकिन छोटे किसान के पास साधन नहीं। क्यों? साधन जुटाने के लिए जो पैसा चाहिए, वह उनके पास नहीं है। इससे क्या हो रहा है? इससे बड़े किसान खाने का अनाज रख काफी बेच लेते हैं। छोटे और बड़े किसान यदि दूसरे के लिए पूरक बन जाए, तो कहीं गड़बड़ नहीं होगी। तो हमको यह देखना पड़ेगा कि छोटे-बड़े का आपस में प्यार बने और खेत में उपज पैदा करने के लिए किसी को साधन का अभाव न रहे। अब कैसे करना है? इसके लिए कोई नियम नहीं है। यह तो हमारी कुशलता है, उपदेश से नहीं होगा, हमको किसी को किसी के साथ जोड़ना पड़ेगा। ये हमारी होशियारी होगी। ये हमारी अकलमंदी होगी। देश के छोटे-से-छोटे किसान की अपने एक-डेढ़ एकड़, दो एकड़, जमीन में ज्यादा-से-ज्यादा पैदावार करने के लिए जरूरतें कैसे पूरी की जाएँ, यह गांव के लोग मिलकर देखें।

देशभक्ति का दूसरा तरीका है कि आज देश के अंदर खेत के लायक जमीन है, उससे जितना ज्यादा अनाज हम पैदा कर सकें, वह हमको करना चाहिए। लेकिन हम उपज बढ़ाने के लिए ऐसे तरीके न अपनाएं, जिससे हमारी खेती की उपजाऊ ताकत घट जाए। यदि हमारे खेती की उपजाऊ ताकत घट गई तो अगली पीढ़ी भूखी मर जाएगी। जमीन उतनी ही रहनेवाली है। आबादी बढ़नेवाली है।

फसल कैसे बढ़े, कौन-कौन सी खाद हो सकती है? यह हमको सोचना पड़ेगा। रासायनिक खाद से खेती की उपजाऊ ताकत घट जाती है। शुरू में पैदावार बढ़ती है, लेकिन रासायनिक खाद मिट्टी की ताकत बढ़ाने के बजाय मिट्टी की ताकत को चूसती है। जैसे आदमी है, जरा शराब पिला दो तो मस्त हो जाएगा, लेकिन टिकेगा नहीं, कमजोर होता जाएगा। उसकी किडनी भी गड़बड़ हो जाएगी। 75 साल जीनेवाला होगा तो 55 साल में दुनिया से चल बसेगा। वैसा ही रासायनिक खाद के साथ है। जिन लोगों ने रासायनिक खाद को शोध करके प्रचलित किया, वे अब इसको छोड़ रहे हैं। अमरीका में यह खाद लगातार काम में लाने से 21 लाख हेक्टेयर जमीन बंजर बन गई। इसके दुष्परिणाम सामने आएंगे ही। हमारी सरकार सब्सिडी देकर कैमिकल खाद बेच रही है और ऐसे-ऐसे नेता हैं कि सब्सिडी कम कर दी तो राम! मर गए। दुनिया के लोग चिल्ला-चिल्लाकर कह रहे हैं कि भाई, ये कैमिकल खाद काम में मत लाओ और हिंदुस्तान की सरकार नए-नए रासायनिक खाद के कारखाने खोल रही है। सरकार इन सब चीजों में हर साल 1 करोड़ 40 लाख रुपए की सब्सिडी देती है। सरकार खेती को बरबाद करने के लिए एक करोड़ 40 लाख रुपए मुफ्त बांट रही है।

हम जिन इलाकों में जाएंगे, उन इलाकों में बताएंगे कि गोबर से बनाया हुआ खाद फायदेमंद है। पेड़ के पत्तों को गोबर के साथ मिलाओ, मिट्टी के साथ मिलाओ। हम सब्जी काटते हैं तो जो डंटल वगैरह काट करके अलग करते हैं, उनको डाल दो। चावल धोते-पकाते समय, उसका पानी उसमें डाल दो, वह खाद बढ़िया खाद है और मुफ्त की खाद है। खाद बनाने के लिए हम कारखाने की तरफ ध्यान न दें। उसकी बजाय यदि गाय लें तो दूध तो मिलेगा ही, साथ में एक

विराट पुरुष

दिन में तेरह से पंद्रह किलो गोबर भी मिलेगा। बछड़ा 4-5 किलो रोज गोबर की खाद देता है। हमारे खेत के लिए पर्याप्त खाद हमारे ही घर में है। खाद का कारखाना भी अपने ही घर में। खेती की उपजाऊ ताकत हमेशा के लिए बनी रहे, यह बतानेवाला कोई नहीं, कोई समझता भी नहीं, क्योंकि लोगों को देशभक्ति का पता नहीं।

गांव में ऐसे लोग हैं, जिनके पास खेती नहीं, लेकिन खेती में मजदूरों का काम करते हैं। इनको भूमिहीन खेतिहर मजदूर कहते हैं। अब उन सबको काम कब मिलता है? बुवाई और कटाई के दिनों में। बाकी साल भर क्या करें? गांव के लोगों को यह सोचना पड़ेगा। इस बारे में अपनी महिला कार्यकर्ता महिलाओं से बातचीत करेंगी। वह पत्नी ही नहीं सहयोगिनी भी है। जितने पुरुष देश के काम में लगे हैं, उतनी महिला भी देश के काम में लगी हैं, इसीलिए तो पति-पत्नी के जोड़े हम लोग काम में लगा रहे हैं। लोगों को लगे कि यार, पति-पत्नी दोनों काम कर सकते हैं, हम क्यों न करें।

समाज स्वास्थ्य शिल्पियों को जो बताया जा रहा है, वह दीनदयाल शोध संस्थान के हर विभाग में काम करनेवाले आदमियों को समझना चाहिए। नहीं तो हम कर नहीं पाएंगे। हम वह रास्ता अपना रहे हैं, जो रास्ता देश आजाद होते ही सबको अपनाना चाहिए था। 50 साल नहीं अपनाया, इसलिए अपना देश पिछड़ गया। अभी कुछ आंकड़े निकले हैं। दुनिया भर के 174 देशों में समाज के विकास की सीढ़ी पर भारत का नंबर 135वां है। प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भारत का नंबर दूसरा है। यानी प्रकृति ने, भगवान् ने हमको इतना दिया है, जितना दूसरे देशों को नहीं दिया, लेकिन संपन्नता की दृष्टि से, विकास की दृष्टि से 135वां नंबर है। इसकी शर्म किसी को नहीं है। हर दिन की बातचीत मैं आप लोगों को बहुत सोच-समझकर बता रहा हूं। उसे आप नोट कर रहे हैं, लेकिन उसको नोट 'नेता' कर रहे हैं कि नहीं, मुझे पता नहीं।

औद्योगिक केंद्र बने गांव

आदमी का खाने भर से तो काम नहीं चल पाता। कपड़े बनाने पड़ते हैं, बरतन जरूरी है। मकान बनाना है तो ईंटें चाहिए, सीमेंट चाहिए, लकड़ी चाहिए, लोहा भी चाहिए। अरे क्या-क्या गिनें। घड़ी भी चाहिए, गहने भी चाहिए। लेकिन ये सब बनाने के लिए जरूरी चीजें होती कहां हैं? वे शहर में नहीं होतीं, गांव में होती हैं। जंगल शहर में नहीं है, जंगल भी गांव में ही है। लोहा चाहिए और कई किस्म के धातु चाहिए। सोना भी चाहिए, किसी को हीरा भी चाहिए। ये खदानें कहां हैं? फर्श पर पत्थर लगाना है, मार्बल लगाना है, कहां मिलेगा? इनकी खदानें कहां हैं? ये भी गांव में ही हैं, शहर में नहीं हैं। जानवर चाहिए, कई किस्म के जानवर चाहिए। ये भी गांव से मिलेंगे। खेती देहात में, जंगल देहात में, खदानें देहात में, पशु देहात में, यानी दुनिया भर की जरूरत की चीजें देहात में हैं। अब जब सबकुछ देहात में हैं तो देहात उजड़ क्यों रहे हैं? आदमी भागकर देहात से शहर में क्यों जा रहा है? भगवान् ने हर चीज देहात में पैदा की है। आदमी शहर की ओर भागा जा रहा है, जहां कुछ नहीं। मजे की चीज है कि नहीं! शहर में जा के बड़े सुख से रहता है क्या? गंदी बस्ती में रहता है। नर्क तुल्य आबादियां खड़ी करता है। सारी दुनिया

उलटी चल रही है, और जिस दिशा में दुनिया चल रही है, इससे सब समस्याएं बढ़ रही हैं।

यह समस्या समझने के लिए हमें थोड़ा इतिहास में जाना होगा। अंग्रेजों ने हमें बेवकूफ बना दिया। उन्होंने बड़ी चालाकी की। अंग्रेजों से पहले जो लोग आए, यहीं रह गए। चाहे शक आए, हूण आए, मुसलमान आए, वे यहीं रह गए। अंग्रेज तो आए व्यापार करने के लिए। व्यापार काहे के लिए? अपने देश को खुशहाल बनाने के लिए। उस व्यापार में से उनके हाथ में हुकूमत आ गई। वैसे उनको यहां रहना नहीं था। सन् 1857 में जो पहला स्वतंत्रता संग्राम हुआ था, तभी उन्होंने कह दिया था कि भाई, हम यहां रहेंगे नहीं। तुम लायक बनोगे तो हम छोड़ के चले जाएंगे। यानी अंग्रेज आने तक जितने हमले हुए, आक्रमण हुए, हमको गुलाम बनाया, तो गुलाम बनानेवाले लोगों के मन में यही था कि हम वापस अपने देश नहीं जाएंगे। यहीं रह गए। उनको लगा, इतना बढ़िया देश तो हमारा है नहीं, चलो यहीं रहें।

अंग्रेजों की नजर यह नहीं थी। अंग्रेजों ने औद्योगिक क्रांति के दौरान अपनी मैनचेस्टर की मिलों का कपड़ा बेचने के लिए भारत के उद्योगों को नष्ट किया। यहां गांवों में बढ़िया कपड़ा बुने जाते थे। ढाका की मलमल बहुत प्रसिद्ध थी, लेकिन अंग्रेजों ने कहा, भारत तो कृषिप्रधान है। उद्योग नष्ट कर दिए। कृषिप्रधान देश सभी होते हैं। कृषि तो सभी देशों में होती है, कम-अधिक मात्रा में, अच्छी-बुरी। लेकिन हिंदुस्तान के पढ़े-लिखे लोग कहते हैं कि हमारा देश कृषिप्रधान है। ऐसे हम खुद बेवकूफ बन गए। देश आजाद होने के बाद से भी यही कहा गया कि हमारा देश कृषिप्रधान है। अब तो सन् 1998 है। आप यदि देखोगे तो सन् 1813 तक हमारे सब गांवों में गांव की जरूरत पूरी करनेवाले कारखाने थे। एक भी आबादी नहीं थी, जहां लोहे का काम न होता हो, जहां सोने का काम न होता हो। लौहार, सुनार, बढ़ई, कुम्हार, चर्मकार, तेली आदि खेती नहीं करते थे। तो गांव के लोगों के लिए जिन चीजों की जरूरत थी अनाज के अलावा, वे चीजें भी गांवों में बनती थीं।

हर गांव में मैंने ठठेरा देखा, जिसको कहीं 'तमोली' कहते हैं, तो कहीं 'ताम्रकार' कहते हैं। तो तांबे की, लोहे की, पीतल की, खेती तो होती नहीं और इन सब चीजों की हर गांव में खदान भी तो नहीं होती, लोगों की आवश्यकता देखकर हर गांव में उद्योग चलते थे। हर गांव में, हर आबादी में। यहां तक कि हर गांव में बीड़ी बनती थी। बड़ा कारखाना नहीं था, जो करोड़ों-करोड़ों कमाता है, परंतु सब चीजें हर जगह बनती थीं और वह सब कृषि प्रधान नहीं थी। जहां प्राकृतिक चीज मिलें, जहां कच्चा माल मिले, वहीं उसका यदि पक्का माल बनाया तो सस्ता पड़ता है। पहले मिलावट इसलिए नहीं होती थी कि सब चीजें आंखों के सामने बनती थीं। जो चीज सामने बनती थी तो जीवन में गड़बड़, धोखा, बेईमानी की स्थिति ही नहीं आती थी। हर आदमी को काम मिलता था, बेकार में शहर जाने की जरूरत क्या है?

गांव में जो त्योहार मनाते थे, वह सच्चा ग्राम्य जीवन था। उन दिनों में बहुत पैसेवाला और बहुत गरीब नहीं होता था। एक बड़ा संपन्न और दूसरा पूरा अभावग्रस्त नहीं होता था। अभाव किसी घर में होता ही नहीं था। गरीब-से-गरीब, जिसकी अपनी कोई खेती नहीं, वे दूसरे के घर

विराट पुरुष

की फिक्र करते थे। आजकल के कारखानों के मारे सब देशों में जो बड़े देश माने जा रहे हैं, वहां पर भी, खूब पैसेवाले और खूब गरीब समाज में रह रहे हैं। विषमता पल रही है।

अमरीका की बात है। मैं वाशिंगटन गया। हमारे राजदूत की पत्नी बोली कि मैं आपको अमरीका दिखाऊंगी। हमने एक दिन पूछा, यहां कोई गंदी बस्ती भी है? तो वह बोली कि वहां मत जाइए, लोग मार डालेंगे, वहां बड़े हत्यारे, बड़े खूंखार लोग रहते हैं, वे अभावग्रस्त हैं। देखते हैं कि कोई अच्छा है तो उसका कत्ल कर देते हैं, कहते हैं—निकाल तेरे पास जो है, नहीं तो मार डालूंगा। अब हमें तो देखना था सो ड्राइवर को बोला, जरा फलाने इलाके में ले चलो। अरे राम! कितने गरीब। लेकिन हमको किसी ने नहीं मारा। लोग बेमतलब डरते रहते हैं। मैंने उनसे जानना चाहा तो वे बोले कि अरे साहब, ये देश तो वह है, जो गरीबों को लूटता है। नए कारखाने की पद्धति में ऊपर से सब शानदार लगता है, लेकिन भीतर से समझने की कोशिश कोई नहीं करता।

इन तौर-तरीकों के चलते धनी और गरीब बिल्कुल अलग-अलग वर्ग बन चुके हैं। इसी पद्धति के कारण प्रदूषण बढ़ता है, हवा खराब हो जाती है, रोग बढ़ते हैं, अस्पताल खुलते हैं, बेकारी बढ़ती है। यानी अमरीका में, जापान में भी बेकारी बढ़ने लग गई है। हम लोग समझते हैं कि बड़े विकसित देश हैं। जो तरीका विकास के नाम पर चल रहा है, वह मानव को तकलीफ दे रहा है। कुछ लोगों को तो सुख मिल रहा है, किंतु ज्यादातर लोग तकलीफ में हैं। कोई व्यवस्था, जिसमें आदमी आदमी में इतना फर्क हो जाए, भिखारी बढ़ जाए, प्रदूषण बढ़ जाए, जवान लड़के और लड़कियां बहुत बड़ी संख्या में आत्महत्या कर लें, अमरीका में ऐसी व्यवस्था चल रही है। तो आपको देखना है कि अपने यहां उद्योगों की दृष्टि से विचार करते समय ऐसी गड़बड़ियां न हों। खेती के साथ-साथ उद्योगों के बारे में भी सोचना है।

शहर कृत्रिम, गांव प्राकृतिक

कल हम लोगों ने प्राकृतिक संसाधनों का विचार किया था। उसके पहले कृषि के बारे में सोचा था और हम लोगों ने यह पाया कि कृषि कार्य से देशभक्ति का एक नया रूप उभरता है। देशभक्ति तब साकार होती है जब हर किसान अपने खेत में इतना अनाज पैदा करे कि अपनी जरूरत के साथ-साथ शहरों की भी जरूरत पूरी कर सके। आज की देशभक्ति का यही एक रूप है।

दूसरा यह भी हम लोगों ने देखा था कि शहर स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में नहीं आए, स्वाभाविक रूप से अस्तित्व में गांव आए। भगवान् ने प्रकृति निर्माण की है। गांव प्रकृति के साथ जुड़े हुए हैं, शहर जुड़े नहीं। गांव उत्पादक हैं, शहर अनुत्पादक। उद्योग करने के लिए चलाने के लिए जो भी प्राकृतिक संसाधन चाहिए, वह सब देहात में ही मिलता है। दोनों आबादियों का यह चरित्र भी अपने ध्यान में आना चाहिए। जब यह चरित्र अपने ध्यान में आएगा तभी अपनी बाकी सब चीजें सहज रूप से देश भर के नागरिकों के जीवन को सुख पहुंचानेवाली हो सकती हैं। यह इंतजाम अपने देश में पहले से था, वह अंग्रेजों के काल में बिगड़ा।

मैंने आपको बताया कि अंग्रेजों ने बड़ी होशियारी के साथ प्रचार किया कि हिंदुस्तान खेती-

समाजशास्त्री

प्रधान देश है। लेकिन हमारे इतिहासकारों ने बहुत विस्तार से बताया है कि कैसे यह गलत प्रचार किया गया। इसके बारे में बड़ी-बड़ी किताबें लिखी गई हैं। एक दत्ता हैं, एक मजूमदार हैं। बहुत बड़ी किताब है उनकी। विस्तृत चर्चा है कि कैसे अंग्रेजों ने हमारे देश के अंदर गांवों में सब उद्योगों को खत्म किया। सबसे पहले अंग्रेजों ने मैनचेस्टर में कपड़े की मिलें लगाईं, लेकिन उनके पास कच्चा माल नहीं था। रुई नहीं थी। सारी रुई भारत से ले जाते थे। अब उन्होंने कपड़े की मिल लगाई तो हमारे सब बुनकरों का धंधा बंद हो गया। कृषि और उद्योग हमारे यहां भरपूर था। कोई आबादी नहीं थी, जहां जिंदगी के लिए जरूरी चीजें पैदा नहीं होती थीं। सब खुशहाल थे। दुनिया भर में हिंदुस्तान को सोने की चिड़िया कहा जाता था। इसीलिए सारी दुनिया में सबसे ज्यादा हमले हिंदुस्तान पर हुए।

अब उद्योग की दृष्टि से सोचना है। अपने को देखना होगा कि हम जिस गांव में काम कर रहे हैं, वहां खेती के अलावा कौन-कौन सा माल पैदा होता है। खेती में भी कौन-कौन सा अनाज पैदा हो रहा है, इसको भी दृष्टि में रखना है। कौन सा माल है, जो जैसा मिल जाता है, वैसा आदमी काम में नहीं लाता। अब समझ लो, तुम्हारा गांव ऐसी जगह है कि चारों तरफ जंगल है, लकड़ी है। अब जैसी लकड़ी है, वैसे तो हम काम में नहीं लाते। जलाऊ लकड़ी भी मिलती है और सागौन भी मिलती है, शीशम की मिलती है, साल की मिलती है, कई किस्म की लकड़ियां मिलती हैं। लकड़ी काम में लाने के लिए पेड़ को काटना पड़ता है, पेड़ को सुखाना पड़ता है। पेड़ बरसात में भीगते हैं और गरमी में सूखते हैं, ये कई बार हो जाने से जो लकड़ी पकती है, उसकी कुरसी बनाते हैं, दरवाजा बनाते हैं, चौखट बनाते हैं, तख्त बनाते हैं, हजारों चीजें बन जाती हैं। तो यह एक उद्योग हो गया।

तो ऐसी कौन-कौन सी चीजें चारों तरफ हमारे गांव में मिल रही हैं, हमारे इलाके में मिल रही हैं, और उन चीजों से आदमी के उपयोग के लिए कौन सा धंधा शुरू करना चाहिए, यह गांव को स्वावलंबी बनाने की दिशा में पहला कदम है। अपने देश में अपने गांवों में भूमिहीन खेती मजदूर है। बोने के समय उनको मजदूरी मिलती है, कटाई के समय मजदूरी मिलती है, बाकी साल कुछ मिलता नहीं। मैंने सन् 1980 में हिसाब लगाया तो बड़ा खींचतान करके देखा कि इन भूमिहीन खेतिहर मजदूरों को 365 दिन में से 150 दिनों से ज्यादा काम नहीं मिलता। यह सारी गड़बड़ अंग्रेजों ने कर दी और हमने मान ली और आज भी वही मान रहे हैं। कह रहे हैं कि भारत कृषिप्रधान है। ऐसा अवलमंद कहते हैं, बड़े-बड़े लेख लिखते हैं। अभी मैं एक किताब पढ़ रहा था, जिसमें बड़े अच्छे सुझाव थे। लेकिन उसमें भी देशी चीजें उन लोगों के मन में नहीं आईं, क्यों? सोचने का तरीका आधुनिक है। वे सोचने की कोशिश करते हैं, मगर सोच नहीं पाते। ज्यादातर चीजें राजनीति से प्रेरित सोचते हैं और राजनीतिक चीजें प्राकृतिक नहीं हैं। इसलिए जो छोटी-छोटी बारीक, लेकिन बड़ी महत्व की चीजें हैं, वह छूट जाती हैं। हमें तय करना है कि अपने गांव में रोजगार पैदा करने के लिए इस परंपरागत सोच को पुनर्स्थापित करें, ताकि कोई बेकार न रहे। गांव का बूढ़ा मरणासन्न आदमी भी ऐसा न समझे कि मैं तो कुछ कर नहीं सकता।

विराट पुरुष

कोई आदमी नहीं है, जो मरते दम तक समाज के लिए काम में न आ पाए। अब तुम लोग नए-नए माता-पिता हो, तुमको देखकर तुम्हारे बच्चे बनेंगे। यदि अपने बच्चे ही ठीक न होंगे तो दुनिया को कैसे ठीक कर पाएंगे?

कल मैं अखबार में पढ़ रहा था कि हिंदुस्तान में विदेशी 'फास्ट फूड' का फैशन चला है। उसके बारे में रिपोर्ट निकली है कि 'फास्ट फूड' से बहुत बीमारियां पैदा हो रही हैं। सन् 1940 में संघ का प्रचारक बनकर मैं बलिया गया था, मुझे एक प्रचारक सहायक मिला था। तो हम लोगों ने वहां देखा कि होटलों में 'तुरंत' नाम से नाश्ता मिलता था। वह था, चना आदि। पुराने जमाने में अपने यहां का 'तुरंत' बहुत बढ़िया होता था। सत्तू, चाहे नमक-मिर्च मिलाकर खा लें, चाहे शक्कर-गुड़ से। ये बहुत पौष्टिक चीज थीं। हम ऐसी पौष्टिक उपज आसानी से पैदा कर सकते हैं। उसे बाजार में लोकप्रिय भी बना सकते हैं। अपने कृषि विज्ञान केंद्र गनीवां में एक चने की उपज ली गई, वह चना पकने के बाद भी हरा होता है। सदाबहार चना। तो मैं उस चने को दिल्ली भी ले गया। कुछ दुकानदारों को दिखाया। हमको लगा, इसको जरा ज्यादा रेट में बेचा जाए। हमने कहा कि कम-से-कम 32 रुपए किलो में बेचेंगे तो दुकानदार बोले, 32 रुपए तो बहुत सस्ता है, हम तो 40 रुपए तक देने को तैयार हैं। तो गांव में ऐसी कौन-कौन सी बढ़िया-से-बढ़िया चीजें हैं, जिनका बाजार में अच्छा भाव मिल सकता है। यह हम पता लगाकर लोगों को उसकी खेती में लगा सकते हैं। अब गांव के आस-पास जंगल होता है। वहां पेड़ों के पत्ते मिलते हैं, जो पत्ते बाजारों में बिकते हैं। तेंदू के पत्ते से पैसा कमाने का काम हैदराबाद के पास निजामाबाद में होता है। इलाहाबाद में तेंदू के पत्ते के कारण एक आदमी बहुत बड़ा पैसेवाला हो गया। तो देखना है कि अपने गांव के चारों ओर कौन-कौन सी चीजें मिल रही हैं और फिर उनसे तैयार माल बनाने की व्यवस्था कैसे हो।

एक सरकारी रिपोर्ट में बताया गया है कि सबसे ज्यादा भेड़ राजस्थान में पाई जाती हैं और फिर इसके बाद बुंदेलखंड में। मैं गनीवां जब जाता हूँ तो देखता हूँ, भेड़-बकरियों का झुंड चरता रहता है। गनीवां में जाकर कृषि विज्ञान केंद्र में पूछा तो बोले—हमको तो इस विषय में कुछ पता नहीं। चीजें उनकी दृष्टि में जमती ही नहीं। तो हमें देखना है कि हमारे गांव में ऐसा कौन सा कच्चा माल है, जिसको बनाकर हम देश और विदेश में बेच सकते हैं।

हम लोगों ने उद्यमिता विद्यापीठ चला रखा है। गांव का युवक उद्योगों की ट्रेनिंग उद्यमिता विद्यापीठ में करेगा और फिर गांव जाकर धंधा चालू करेगा। गांव के और लोग उससे सीखेंगे। इस प्रकार हमारा हर गांव छोटे-छोटे उद्योगों का बहुत बड़ा औद्योगिक केंद्र बनेगा। भारत को सोने की चिड़िया बनाने के लिए प्रकृति ने हमको सब कुछ दिया है। अपने को एक दृष्टि बनानी है। अपने को उपाय करने हैं। ये हमारी जिम्मेदारी है कि गांव का कोई आदमी बेकार नहीं रहेगा। काम ऐसा, जिससे कि नई चीजें उत्पादित हों। भगवान् ने हमको शरीर, मन, बुद्धि दी है, इसका खयाल करो। जिंदगी चाकरी में मत बिताओ।

बाजार में पॉपकार्न बिकता है। पॉपकार्न मकई से बनता है। अब अपने यहां मकई खूब होती

समाजशास्त्री

है। दुनिया भर के लोग मकई नहीं खाते, लेकिन पॉपकॉर्न प्लास्टिक की थैली में बिकता है, सब खाते हैं। लोगों ने दिमाग लगाया और कमा रहे हैं। अतर्रा में चावल अच्छा होता है, लेकिन 'चूरा' बनाने की मशीन कहीं नहीं। खाते सब हैं। सबसे अच्छा चूरा 'बड़े गांव कर्नाटक' से बनकर आता है। चूरा तो गांव-गांव में बन सकता है। मैं बड़े गांव चूरा बनाने की मशीन देखने गया। कुछ नहीं, मामूली भट्टियों में बन रहा है चूरा।

अब गांव में महुआ खूब मिलता है। महुए से इतनी चीजें बन सकती हैं, जो शहरों में अच्छी बिकती हैं। गांव के चारों तरफ महुआ ही महुआ मिलता है। बहुत फायदेमंद भी होता है। हिंदुस्तान में ऐसा कोई गांव नहीं, जो किसी-न-किसी कच्चे माल का भंडार न हो। इसकी शिक्षा दी ही नहीं जा रही। हम सुबह से क्लास लगाएंगे, घर चले जाएंगे। यानी जिनको दिमाग लगाना चाहिए, उनके दिल-दिमाग में कोई विचार ही नहीं। दीनदयाल शोध संस्थान यही काम करेगा। समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवार इसीलिए है। इनके माध्यम से गांव के सब लोग—चाहे महिला हो या पुरुष—गांव के विकास में भाग लेंगे। हर हाथ को काम देने का काम हम करेंगे।

स्वस्थ हो वातावरण

आज हम लोग स्वास्थ्य के बारे में विचार करेंगे। यदि कोई व्यक्ति सोचे कि मैं आजीवन स्वस्थ रहूँ, मैं बीमार पड़ूँ ही नहीं तो ऐसा सोचना उचित है, जरूरी है। लेकिन किसी का भी स्वास्थ्य केवल उसके हाथ में नहीं रहता। वह जहां रहता है वहां गंदगी हो, हवा ही ठीक न हो, कीड़े-मकोड़े चारों तरफ हों तो आदमी कितना भी स्वस्थ रहने की कोशिश करे, चारों तरफ का वातावरण उसके स्वास्थ्य पर असर करता है। तो स्वस्थ रहना केवल व्यक्तिगत सवाल नहीं है। अपने गांव में जीवन स्वस्थ रहे, ऐसी स्थिति है नहीं। गांव में बहुत बीमारियां हैं, गरीबी भी है और इलाज करने के लिए पैसा भी नहीं है। गांव में पूरा इलाज है भी नहीं। तो हम लोगों को जिन गांवों में काम करना है, उन गांवों में सब लोग स्वस्थ रहें, इसके लिए अपने को क्या करना पड़ेगा, आज हम लोग विचार करेंगे।

अपने यहां आरोग्य का प्राचीन शास्त्र आयुर्वेद है। उसमें कहा गया है कि आदमी सौ साल जिए, बिना बीमारी के जिए और शरीर के सब अंग-प्रत्यंग स्वस्थ रहें। लेकिन अब स्थिति गड़बड़ हो गई है, क्योंकि नियम से तो हम रहे नहीं। दुनिया भर में उपचार शास्त्र है। लेकिन जिसको अंग्रेजी में कहते हैं—'साइंस ऑफ लाइफ', यानी स्वास्थ्य का विज्ञान, जीवन का विज्ञान, यह केवल आयुर्वेद है और योग में भी है। मूलतः आयुर्वेद और योग कोई उपचार शास्त्र नहीं है। आजीवन स्वस्थ रहने के शास्त्र हैं। भारत स्वतंत्र होने के बाद भी इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। इस काम की आज सबसे बड़ी आवश्यकता है। तो दीनदयाल शोध संस्थान यही काम करता है जो और कोई नहीं करता। अपने चित्रकूट के चारों तरफ के 500 गांवों में कोई बीमार न पड़े, इसकी व्यवस्था करने के लिए आरोग्यधाम बना है। आपके सहयोग से आरोग्यधाम के अंतर्गत 500 गांवों में आजीवन स्वास्थ्य लोगों को प्राप्त हो, यह काम करना है। अब तुम कहोगे,

विराट पुरुष

हमको क्या करना है? हम तो डॉक्टर नहीं हैं, लेकिन नहीं, आरोग्यधाम ने यह तय किया है कि तुम लोग यह करोगे। तुम करने के लिए कमजोर नहीं हो, पूरे समर्थ हो। आरोग्यधाम ने यह मानकर तुम लोगों को चुना है।

अब आप गांव के हर घर में जाओगे, जहां नवजात शिशु हैं। लोग कहेंगे—भाई, दीनदयाल शोध संस्थान के पति-पत्नी का जोड़ा तो कमाल का है। ये हमारे बच्चे की फिक्र करते हैं। फिर तुम उनके बच्चे स्वस्थ रहने के लिए जो कुछ भी बताओगे, वे बड़े खुशी-खुशी से सुनेंगे। शौच कराने से लेकर दांतों की सफाई, शरीर की मालिश कैसे करनी है, यह सब बताओगे, साथ ही घर को साफ कैसे करना है, यह भी बताओगे। उन्हें समझाओगे कि घर से जो नहाने-धोने में पानी निकलता है, वह यदि इकट्ठा हो जाएगा, सड़ जाएगा, उसमें कीड़े-मकोड़े होंगे, तो हो सकता है कि बच्चे की बीमारी का कारण बन जाए। उसके बाद, तुम देखोगे कि महिलाएं चूल्हा बनाती हैं। तो चूल्हा कैसा होना चाहिए, जिससे धुआं न हो। तुमको बनाना आता है कि नहीं, नहीं तो हम बना देंगे। ये सारे प्रयास करने हैं। जिस कुएं या तालाब से पानी ला रहे हैं, वह ठीक है क्या? ऐसा पानी आता है तो उसको उबालो, ढंडा करो और पिओ। बच्चे को वही पिलाओ। हम सोचें, गांव के सब लोग मिलकर के शुद्ध पेयजल का इंतजाम कैसे कर सकते हैं।

अब इसके अलावा इनसान को सबसे बड़ी जरूरत क्या है? इनसान की सबसे बड़ी जरूरत है—प्राणवायु, हवा। यह कैसे मिलती है? यह जो अपने चारों तरफ पेड़ दिखाई पड़ते हैं, हमारी छोड़ी हुई हवा खा जाते हैं और तुम्हारे लिए प्राणवायु देते हैं। पेड़ तो दुनिया में बहुत शानदार हैं। तुमने गीता पढ़ी होगी, उसमें श्रीकृष्ण भगवान् ने कहा—पेड़ों में मैं पीपल हूँ। मैंने बड़े-बड़े वैज्ञानिकों से पूछा, पीपल के बारे में। तो उन्होंने कहा, महाराज, पीपल तो बड़ा कमाल का पेड़ है। चौबीसों घंटा प्राणवायु देता है। तो बहुत अच्छा हो कि कम-से-कम हर आबादी में एक पीपल का पेड़ हम लगाएं। बरगद जो है, सब प्रकार का शक्ति-प्रदाता है। तो हर गांव में एक पीपल का और एक बरगद का पेड़ तो हम लगाएंगे ही। इससे प्राणवायु मिलेगी। कुछ पेड़ ऐसे होते हैं कि जिन पर पतझड़ नहीं आता, हमेशा हरे रहते हैं। ऐसे पेड़ खोज-खोजकर अपने गांव में लगाएंगे। सब प्रकार के फल लोगों को मिल जाएँ, हर मौसम के फल लोगों को मिल जाएँ, ऐसा प्रबंध करेंगे। पोषक आहार भी बच्चों को नहीं मिलता। कुपोषण गांव में बहुत बड़ी समस्या है। तो कौन सी ऐसी चीजें बच्चों को बचपन से ही खिलानी चाहिए कि जिससे बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा हो। गरीब हैं, कोई बात नहीं। थोड़े सी भूमि लेकर तुम बो दो गेहूं। थोड़ा सा भिगो दो और फूटे हुए मटके में थोड़ी सी मिट्टी और खाद डाल दो, गेहूं उग आएंगे, 10-11 दिन में।

इस प्रकार हम तो ऐसा समाज खड़ा करेंगे, जिसमें बीमारी से पीड़ित होने का कोई कारण ही न रहे। अपने आरोग्यधाम में काम करनेवाले लोगों ने कहा कि पुराने जमाने में दादी मां का बटुआ होता था। हर घर में दादी मां कोई चीज पीस करके देती थी, भून करके देती थी। सारी बीमारियां दादी मां के बटुए से ही ठीक होती थीं। तो फिर हम लोगों ने दादी मां का बटुआ तैयार किया। अपने आरोग्यधाम में औषधीय पौधों से पचीस दवाइयां बनाई और जो समाज स्वास्थ्य

समाजशास्त्री

शिल्पी कार्यकर्ता हैं, उनको एक बक्से में लाकर दिया। क्या करना, क्या न करना सब समझा दिया। इससे गांव के लोगों को बड़ा फायदा हो रहा है। गांव के लोग बहुत खुश हैं। तुम नए लोग जाओगे, तुमको भी दादी मां का बटुआ मिलेगा। मुफ्त में देना, बहुत सस्ती और हर बीमारी की दवा है। क्योंकि गांव में तो कोई डॉक्टर जाता नहीं। कोई जाता है तो बड़ा पैसा लेता है। आम बीमारियों के लिए दादी मां का बटुआ है। लेकिन 15-20-25 साल से बीमार है और ठीक नहीं हो पा रहा है तो आरोग्यधाम को खबर कर दो, उसका इंतजाम वह करेगा। तो 500 गांवों यह अपने को ये करके दिखाना है।

गांवों में परिवार नियोजन भी स्वास्थ्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। मैं गोंडा में काम कर रहा था। वहां 31 साल की एक महिला और उसके 7 बच्चे दिखे। मैंने उसके पति से कहा कि भाई, ये मर जाएगी, इसकी हालत तो बड़ी खराब है। उसका पति बोला—नानाजी, आप शहरी हो, आपको हमारी बात नहीं समझ में आएगी। न तो हमारे पास खेत है, न हमारे पास जमीन है, न हमारे पास नौकरी है। हमारी जायदाद हमारे बच्चे हैं। जितना ज्यादा पैदा करो, 1 रुपया रोज कमा कर देंगे। हमारी तो आमदनी का जरिया ज्यादा-से-ज्यादा बच्चे हैं। हमने कहा—यह पत्नी मर जाएगी। तो बोला, दूसरी पत्नी मिल जाएगी। वह और भी ज्यादा बच्चे पैदा करेगी। तो हमारी समझ में आया कि नहीं, इसकी मजबूरी है। एक साल लगा, मैंने इस समस्या को समझकर जे.आर.डी. टाटा को भी बताया। मैंने कहा, आपका जो इंटरनेशनल ऑर्गेनाइजेशन है 'हेल्थ फॉर ऑल', ये हमारी समस्या समझते नहीं हैं। फिर मैंने आरोग्यधाम की अपनी स्कीम बताई। जे.आर.डी. ने कहा नानाजी, आप करो। तो आरोग्यधाम हमने शुरू किया।

इसके अलावा एक आखिरी बात रखकर मैं आज का विषय यहीं रोकता हूं। यह तो हनुमान की पूछ से ज्यादा लंबा विषय है। गांव में नन्हे बच्चे बाहर जाएंगे, गंदी जगह पर खेलेंगे, तो स्वास्थ्य के लिए बड़ा खतरा होगा और बड़े-बड़े लोग इसकी फिक्र ही नहीं करते। पैसेवाले लोग अपने बच्चों के लिए बड़े खिलौने लाते हैं, लेकिन बच्चा जब बड़ा हो जाता है तो वे खिलौना उनके काम में नहीं आते। तो ऐसे खिलौने बटोरकर धीरे-धीरे गांव के लिए इकट्ठा करने का विचार किया जाए। खेलने के लिए साफ-सुंदर बालोद्यान तैयार किया जाए। तुम यदि उद्यान ही तैयार नहीं करोगे, तो ये जो चीजें लाओगे, बेकार हो जाएंगी। आसानी से गांव के सामान से भी कुछ खिलौने तैयार किए जा सकते हैं। स्वस्थ वातावरण में शिशु पले, खेले तो आजीवन स्वास्थ्य की नींव पड़ती है। यह ध्यान रखकर के अपने को अपने-अपने गांव में सारे काम करने हैं। साल बीतने के बाद देखते हैं, क्या परिणाम निकलते हैं।

मानवीय शिक्षा का सूत्रपात

इस बात का बड़ा दुख है कि आजादी पाने के बाद अपने देश में शिक्षा की सही दिशा प्रचलित करना संभव नहीं हो पाया। स्कूल चल रहे हैं, बहुत बढ़ गए हैं, हर प्रदेश में कई-कई विश्वविद्यालय हो गए हैं। इन पर पैसा भी काफी खर्च हो रहा है, लेकिन शिक्षा किस बात के लिए, यह समझा

विराट पुरुष

नहीं जा रहा है। शिक्षा का हेतु ही सबके सामने स्पष्ट नहीं है। इसीलिए शिक्षा के कारण जो समाज सुधरना चाहिए, उन्नत होना चाहिए, समर्थ होना चाहिए, वह नहीं हो रहा है, बल्कि समाज बिगड़ता जा रहा है। शिक्षा का लक्ष्य पेट पालन करना ही नहीं है। इस सवाल का जवाब बड़े-बड़े शिक्षाविदों के पास नहीं है। इस सवाल का जवाब हमें देना पड़ेगा, क्योंकि हम छोटे हैं, हम समाज में रहते हैं।

मानव सामाजिक प्राणी होते हुए भी समाज के प्रति उत्तरदायित्व क्यों भूल जाता है? मानव के अतिरिक्त कोई भी प्राणी विश्व के लिए खतरा नहीं बनता। मानव जापान के हिरोशिमा पर बम डालकर पूरी आबादी खत्म कर सकता है। खतरनाक से खतरनाक जानवर को भी अपने फायदे के लिए प्रयोग में ला सकता है, जबकि जंगल का प्राणी भूख न हो तो शिकार नहीं करता। इसलिए आदमी को शिक्षा देनी पड़ती है कि वह मानवीय बने। नहीं बना तो यह बड़ा भयंकर प्राणी है। सारी दुनिया को खत्म कर सकता है। प्रलय ला सकता है। मानव वासनापूर्ति के लिए चाहे जितना भयानक बन सकता है। अब देखो, अखबार में हम पढ़ते हैं कि 6 साल, 8 साल, 11 साल की बच्चियों के ऊपर बड़े-बड़े लोग बलात्कार करते हैं। जानवर ऐसा नहीं करते। यानी मानव अपनी बुद्धि, अपना मन, शरीर की ताकत का उपयोग जब अपनी वासना-तृप्ति के लिए करता है तो उसकी कोई सीमा नहीं होती। तो आदमी को संस्कारित करना पड़ता है, शिक्षित करना पड़ता है। मानव को मानवीय बनाना पड़ता है। वह अपनी शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, बौद्धिक शक्ति और आत्मिक शक्ति का उपयोग ऐसा करे कि अपने अलावा किसी को कष्ट न दे। वास्तविक शिक्षा इस बात की है।

इस पृष्ठभूमि में हमें सर्वप्रथम इस बात का विचार करना है कि बच्चे का जन्म किस लक्ष्य से हो? कोई योजना नहीं। न मां बताती है, न बाप बताता है, न विद्यालय में गुरु बताता है, न समाज का नेता बताता है। इसलिए हमको सोचना होगा कि माता और पिता के नाते सबको क्या करना है?

अपने बच्चों में पारिवारिक और सामाजिक दायित्व की दृष्टि देना माता-पिता का काम है। लेकिन हो क्या रहा है? हम समझ ही नहीं रहे, हम मां काहे के लिए बनी, बाप काहे के लिए बने। हममें सामाजिक दृष्टि है भी कि नहीं? यदि अपना पड़ोसी तकलीफ में है और मां जाती है, पिता भी जाते हैं तो बच्चा देख रहा है, उसको लगता है कि पास-पड़ोस के लोगों की फिक्र करनी चाहिए। विद्यालय में अलग-अलग घरों के बच्चे आते हैं, अलग-अलग वातावरण से आते हैं। उनमें आपस में कैसा मेल हो, कैसा सहयोग हो, कैसा प्यार हो, मिलकर कैसा काम करें, यह सिखाने की तरफ अध्यापक का ध्यान ही नहीं। बच्चों की नजर बड़ी पैनी होती है। कौन क्या करता है, कैसा करता है—वे समझते हैं। गांव के सब बच्चों पर ठीक संस्कार हो, इसके लिए आपको स्वयं काम करना पड़ेगा। तब आप, परिवार, विद्यालय और समाज इन सबका व्यवहार अपने गांव के बच्चों के विकास के लिए परस्पर पूरक बनेगा। शिक्षा यहां से शुरू होती है।

मानवीय बनाने का शिक्षा का यह तंत्र गांव के हर आदमी को एक-दूसरे से जोड़ेगा। एक-दूसरे के साथ मिलकर इस तंत्र की सफलता के लिए लोग श्रम करेंगे। यदि गांव के स्कूल की

समाजशास्त्री

इमारत टूट गई, फूट गई तो मिलकर ठीक कर दी। मिलकर सजा दिया गया। हम अपनी बिल्डिंग के चारों तरफ खूबसूरत पेड़-पौधे लगाए। यह गांव के लोगों को कोई नहीं बताता, ऐसा हम करके दिखाएंगे। ठीक है, सरकार से जो मिलेगा ले लो, किंतु हमारे बच्चे जहां पढ़ रहे हों, हमें उसे भी ठीक रखना चाहिए। फिर गांव में सबको पढ़ना-लिखना आना चाहिए। कम-से-कम रामायण तो पढ़ लें। कोई दिक्कत नहीं, जिसके प्रति लोगों की भक्ति हो, उसकी आरती पढ़ लें। गांव के लोग दुनिया के बारे में जानना चाहते हैं। कहीं भी गांव में एक-दो बोर्ड लगा दिए जाएं और उसके ऊपर अपने जिले की, प्रांत की, और देश-विदेश की खबरें लिख दी जाएं तो लोगों में पढ़ने की रुचि जागेगी। जो लोग पढ़े-लिखे नहीं, उनमें शिक्षा ग्रहण करने का भाव जागेगा। अब तो हर घर में टेलीविजन है, रेडियो भी रखा जा सकता है। मानव को मानवीय बनाने की शिक्षा, औद्योगिक शिक्षा, खेती की शिक्षा, रहने की शिक्षा, चलना कैसे चाहिए, कपड़े कैसे पहनने चाहिए, बोलना कैसे चाहिए, साफ कैसे बोलना चाहिए, अपने में सुधार करने की शिक्षा सब पर ध्यान देना होगा।

परिवार ही समाज का आधार

जो प्रचलित परंपरा है, उस परंपरा में सामाजिक जीवन का अस्तित्व ही समाप्ति की स्थिति में आ गया है। हम समाज की बात करते जरूर हैं, लेकिन समाज अस्तित्व में है क्या? इसकी यदि हम खोज करने लग जाएं तो सामाजिक जीवन कहीं भी दिखाई नहीं पड़ता। कहने के लिए हम सभी लोग पारिवारिक जीवन तक सीमित हो गए हैं। हर आदमी जीवन का समय कमाई में और घर-गृहस्थी में लगाता है। क्या कोई व्यक्ति है, जो अपना समय समाज के लिए लगाता है या ईमानदारी से उसकी आवश्यकता समझता है। जब मैं यह कहूंगा तो आपको लगेगा कि अरे कई संस्थाएं सामाजिक काम करती हैं, लेकिन सामाजिक संस्थाओं में काम करनेवाले पारिवारिक लोग सामाजिक काम के लिए रोज कितना समय निकालते हैं? गंभीरता और निस्स्वार्थ भाव से विचार किया जाए तो लगता है कि पारिवारिक जीवन भी आखिरी दौर में है। धीरे-धीरे परिस्थितियां ऐसी बनती जा रही हैं कि परिवार भी अधिक छोटे हो रहे हैं।

सामाजिक जीवन का मतलब क्या है? क्या समाज का अस्तित्व पुरुषप्रधान हो सकता है? नई पीढ़ी को जन्म देनेवाली महिला, उसका समाज में कोई स्थान नहीं है। कानून से स्थान देने की कोशिश हो रही है। 30 प्रतिशत आरक्षण महिलाओं को दिया जाए। मजाक सा लगता है। जैसे महिलाओं पर उपकार कर रहे हैं। अरे, समाज तो पुरुष-महिला के संगम यानी विवाह से बनता है। दोनों बराबर के भागीदार हैं। क्या 50 प्रतिशत पुरुष से 30 प्रतिशत महिला विवाह करती है? समाज के बड़े-बड़े काम करने का भाव रखनेवाले लोग अपनी पत्नी को अपने स्तर का बनाने की सोचते ही नहीं हैं। प्यार करने का मतलब यह होता है कि वह भी मेरे समकक्ष बने। वह भी मेरे जितना सोच-विचार कर सके। वह भी मेरे जितना ही सामाजिक दायित्व निभा सके। विवाह करने के बाद यह मेरा दायित्व है कि मैं उसे अपने स्तर का बनाऊंगा। यह नहीं हो रहा

विराट पुरुष

है। घर में ही सामाजिक जीवन नहीं। पत्नी और पति ही एक-दूसरे के लिए सामाजिक नहीं। तब दीनदयाल शोध संस्थान ने सोचा, अपने को इसी जगह से काम करना होगा। दूसरों को उपदेश देने से चलेगा कहाँ? स्थिति का आकलन तो करो। बिना किसी की परवाह किए करो। लेकिन आकलन के बाद कदम जो उठाओ, वह व्यावहारिक हो। इसलिए हमने अपने काम में महिला और पुरुष दोनों को सम्मिलित किया।

सामाजिक कार्य प्रारंभ करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि यदि गांव में कोई बीमार पड़ा, खास करके असहाय, तो तुम भी जाओ, महिला भी जाए, तुम्हारे बच्चे भी जाएँ। गांव के आदमी को साथ लेकर तुम जाओ। इसमें ये ऐसी बातें हैं, जो एक-दूसरे के लिए प्यार तो पैदा करती है, गांव भर का वातावरण भी बदल देती हैं। हम संघ का काम करते थे तो सबसे ज्यादा हमको इसी कारण सहयोग मिलता था। गांव में किसी को तकलीफ है, किसी लड़की की शादी है, उसकी विदाई है, तो जितने मिल गए, सबको इकट्ठा किया, वहां ले गए। कुछ नहीं तो फूल का गुच्छा ही दे दो उसको। कभी कीर्तन, कभी गजल या किसी को बुलाकर के अच्छा सा प्रवचन करा दिया। लड़के, लड़कियों, सभी बच्चों के लिए खेल कराने, कथा-कहानियां सुनाने का आयोजन करा दिया। गांववाले गाएं-बजाएं, बच्चे बढ़िया सुनने लग जाएँ। यानी ऐसे कार्यक्रम हम सोच करके करें, जिसमें सबको आने का मन करे। कार्यक्रम बढ़िया हो, रुचिकर हो, फायदेमंद हो। यदि हम लोगों ने तय किया, हमारा आरोग्यधाम चलता है तो गांव की महिलाओं को बुलाएंगे और स्वास्थ्य के बारे में कुछ बताएंगे। महिलाएं जब गर्भवती होती हैं तो उनको कौन-कौन सी बातों का ध्यान रखना चाहिए, यह बताएं। अब कोई गरीब है, खेत है, लेकिन बैल नहीं है तो लोगों से कहें, देखो वह गरीब है, चलो सब मिलकर उसका खेत जोत दें। हर खेत में ज्यादा अनाज कैसे पैदा हो, इस विषय में गोष्ठी करेंगे, कृषि विज्ञान केंद्र के किसी वैज्ञानिक को बुला लेंगे। वे गांव के लोगों को समझाएंगे। ऐसे अनेक काम हैं, जिनका फायदा सबको पहुंचाना है।

स्वाभिमान ही बनाएगा विश्वगुरु

अपने शिविर का यह समारोप है। मेरे लिए यह बहुत खुशी की बात है कि ऐसे समय में, जबकि सब लोग, बड़े-बड़े और विद्वान् भी अपने-अपने परिवार के अंदर सिमटे हुए हों, धनार्जन के अलावा किसी के मन में कोई अन्य बात ही न हो, छोटा-से-छोटा, कम-से-कम पढ़ा, देहात का जवान भी देहात में रहना न चाहता हो और शहर की ओर भाग रहा हो, ऐसे समय तुम लोग पति-पत्नी मिलकर गांवों में जाने के लिए प्रतिबद्ध हो, इससे खुशी की और कोई बात मेरे लिए तो नहीं हो सकती। दुनिया में जो हवा बह रही है, उसकी विपरीत दिशा में एक नया प्रवाह खड़ा करने के लिए आप लोग ग्रामीण जीवन को अपना रहे हो, यह वस्तुतः भारत की नितांत आवश्यकता है। उस आवश्यकता पूर्ति के लिए अपना सुख छोड़कर अपने बच्चों को भी गांव में रखने का साहस करना, आज के जमाने में बिल्कुल अनोखी बात है। विपरीत परिस्थिति को अनुकूल बनाने का साहस आप दिखा रहे हो। यह देश के लिए बहुत बड़ी बात है।

अभी-अभी अखबार में आया है कि अमरीका आजकल दुनिया में सबसे बड़ा शक्तिशाली देश है, उसके अध्यक्ष चीन गए हैं। वे चीन से अपने देश लौट रहे हैं। चीन से वे दोस्ती करना चाह रहे हैं। दुनिया की सबसे बड़ी ताकत चीन से दोस्ती कर रही है। क्यों कर रही है? चीन जब कम्युनिस्टों के हाथ में आया, उससे पहले भारत आजाद हुआ। माओत्से तुंग के सत्ता में आने से पहले च्यांग-काई-शेक का शासन था। वह अमरीका का पिछलग्गू था। अमरीका के दरबार में याचक बना हुआ था। आज फिर अमरीका चीन से दोस्ती चाहता है।

चीन ने बड़े भिन्न-भिन्न प्रयोग किए। माओत्से तुंग ने अलग ढंग से प्रयोग कराए। आज अलग ढंग से प्रयोग हो रहे हैं। ये सब प्रयोग अलग-अलग होते हुए भी एक सिलसिला चला। सन् 1948-49 से चीन में एक ही लक्ष्य से योजनाएं की कि हमें आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होना है। खाद्यान्न की दृष्टि से हमको आत्मनिर्भर होना है, औद्योगिक दृष्टि से हमको आत्मनिर्भर होना है, सुरक्षा की दृष्टि से हमको आत्मनिर्भर होना है। रूस भी कम्युनिस्ट था, लेकिन चीन ने रूस के रास्ते पर चलना पसंद नहीं किया। वह नाम के लिए कम्युनिस्ट था, उसके अंदर राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी और इसलिए उसने कहा कि किसी के सहारे, किसी की दोस्ती, किसी की कृपा, किसी की दया से जीने में कोई मजा नहीं है। कम्युनिस्ट रूस की दया पर भी चीन ने जीना पसंद नहीं किया। गांव-गांव में, खेत-खेत में कैसे उपज बढ़े, इसके प्रयोग किए।

सौभाग्य से दीनदयालजी के साथ मैं चीन का अध्ययन करता रहता था। चीन के प्रयोगों को बड़ी पैनी नजर से हम लोग देखते रहे। चीन ने सुरक्षा की दृष्टि से भी सारे प्रयास किए। अब देखो, कितने मजे की बात है। भारत ने अभी-अभी मई में 11 तारीख को एक अणु विस्फोट किया। सारी दुनिया नाराज। चीन विस्फोट करता चला जा रहा है, अभी भी उसका नाभिकीय विस्फोटों का कार्यक्रम बंद नहीं है। उससे अमरीका दोस्ती कर रहा है और हमने कहीं एक विस्फोट कर दिया तो दुनिया हमारे खिलाफ हो रही है। यह हमारे नेताओं की समझ में नहीं आ रहा है। जब तक देश स्वावलंबन का जीवन नहीं जिएगा, उसका संसार में मान-सम्मान नहीं होगा। हम अपने घर में देखते हैं, हम अपने गांव में देखते हैं, हम अपने मोहल्ले में देखते हैं कि भिखारी की कहीं इज्जत नहीं होती है। आजाद होकर 50 साल हो गए, फिर भी हम भिखारी हैं। चीन ने दिखा दिया, किसी की दया पर, किसी की मदद पर जीना यह मानव का जीवन नहीं है। यह देश का जीना नहीं है। आज संसार की जो बड़ी-बड़ी शक्तियां हैं, उनमें चीन ने अपनी जगह बना ली है। हम संयुक्त राष्ट्र की सुरक्षा परिषद् में जाने के लिए तड़प रहे हैं। नहीं जा पा रहे हैं। यह परिस्थिति बदलकर हिंदुस्तान संसार में सबसे अधिक ताकतवर देश बन सकता है, लेकिन नकल कर रहे हैं। कभी रूस की करते हैं, कभी अमरीका की करते हैं।

बड़े-बड़े लोग कहते हैं कि हमारा संविधान बड़ा गड़बड़ है, इसको बदल दो। अमरीका जैसा संविधान बनाओ तो अमरीका जैसे बलवान बनोगे। कोई कहता है, पश्चिमी यूरोप जैसा करें। जो चीज बड़े-से-बड़े लोगों के ध्यान में नहीं आ रही है, वह चीज तुम पति-पत्नी के ध्यान में आ रही है, इससे ज्यादा खुशी किस बात की होगी? तुम अपने बच्चों को भी उस दिशा में गांव में ले

विराट पुरुष

जाकर तैयार कर रहे हो, जबकि बड़े-बड़े माता-पिता घर में अपने बच्चों को तैयार नहीं कर पाते। दुनिया में खोजते हैं कि कौन सी संस्था बच्चे को बढ़िया बना देगी? ऐसे सोचनेवाले माता-पिताओं के बच्चे व्यक्तिवादी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बनेंगे।

हम लोगों ने चित्रकूट में अनेक काम शुरू किए हैं। गांव के सब नागरिक स्वस्थ रहें, इसके लिए हमने आरोग्यधाम शुरू किया है। गांव के सब विद्यालय ठीक चलें, उनमें पढ़नेवाले लड़के या लड़कियां इस देश का गौरव बनें, इसके लिए हमने सुरेंद्रपाल विद्यालय शुरू किया। गांव-गांव में कौन से कारखाने कैसे लगे, कारखाना चलाने के लिए गांव में आपको कैसे प्रशिक्षित किया जाए, उसके लिए उद्यमिता विद्यापीठ है अन्यथा उद्यमिता का कोई मतलब नहीं।

‘रामदर्शन’ इसलिए कि राम की भक्ति-भावना क्या थी? लक्ष्मण, हनुमान का पराक्रम क्या था? एक राजकन्या होकर भी सीता राम के वनवास जाने के समय कहती है कि मुझे महल की कोई जरूरत नहीं, मैं भी वनवास में जाऊंगी। क्यों गई? क्या किया? यह गांव-गांव के लोगों को देखने को मिले, समझने को मिले, इसके लिए रामदर्शन है। आश्रमशाला इसलिए बनाई कि वनवासियों के बच्चे भी देश का गौरव बनें। उनके उत्थान के लिए नहीं है, उन्हें गौरवशाली बनाने के लिए है। एक उदाहरण है, एक नमूना है। तो यह सारा एक ही काम है, अलग-अलग नहीं। यदि एकात्म रूप नहीं रहेगा तो देश विघटन की ओर जा ही रहा है। सब अपना-अपना राग अलाप रहे हैं। यदि हमारी भी दुर्दशा वैसी हुई तो ये सारा प्रयास बेमतलब हो जाएगा। इसलिए जितने भी प्रकल्प हैं, वे इन समाज स्वास्थ्य शिल्पियों के लिए हैं। इन्हें सफल बनाने के लिए हैं। हर गांव पूर्ण स्वस्थ रहे, हर गांव पूर्ण संपन्न रहे, हर गांव में महिला-पुरुष सुशिक्षित हों, गांव का एक-एक व्यक्ति राम के आदर्श को जीवन में चरितार्थ करे। इन सब चीजों के लिए प्रकल्प हैं। नहीं तो ये प्रकल्प चलाने की कोई जरूरत ही नहीं है।

बड़े-बड़े लोग गीत गाते हैं, भाषण देते हैं कि हम विश्व के गुरु रहे। लेकिन वे गुरु बनने के लिए कुछ करते हैं क्या? यदि किया होता तो भारत की आज यह दुर्दशा हुई होती कि क्लिंटन उठ करके अपनी ही विचारधारा के प्रतिकूल चीन के पास जाकर के दोस्ती करता? और लोकतांत्रिक भारत को धमकी देता? ये विश्वगुरु बनने के लक्षण नहीं हैं।

□

पुनर्रचना एक सतत प्रक्रिया

यह एक अति महत्व की बात है कि हमें अपने जीवन की पुनर्रचना करनी है और अपने परिवार की भी करनी है। जो अपनी पुनर्रचना नहीं कर सकता, वह परिवार के बाकी सहयोगियों की भी नहीं कर सकता। वह अपने परिवार के लोगों के चिंतन और दृष्टि में परिवर्तन नहीं कर सकता। यदि वह समाज में परिवर्तन नहीं कर सकता तो वह परिवारजनों को छोड़कर अलग हो जाए और यदि परिवार में रहना है तो परिवार के लोगों को भी चिंतन करने के लिए कुशलता के साथ सहायक बनाए।

समाज की पुनर्रचना की प्रक्रिया में जीवन-मूल्यों को कायम भी रखना है। तुम तो गड़बड़ करते हो और दूसरे से कहो कि तुमको मैं ठीक करूंगा या ठीक करूंगी, मेरे बच्चों का तो ठीक पालन हो नहीं पा रहा और मैं लोगों का सर्वांगीण विकास करूंगी, तो क्या यह संभव है? इसलिए यह सोच बनानी है कि मैं उपकरण हूँ, मैं स्वयं को सर्वांग परिपूर्ण बना करके कर्म करूंगा। इसका मतलब यह नहीं कि जब तक मैं अपने आपको सर्वांगीण परिपूर्ण नहीं बनाऊंगा या बनाऊंगी, तब तक मैं समाज का काम नहीं कर पाऊंगा। समाज का काम प्रारंभ करो पवित्र भावना के साथ और स्वयं में तदनुकूल परिवर्तन करते हुए। सब काम एक साथ करने होंगे। मानव को एक ही समय में सैकड़ों काम करने की क्षमता भगवान् ने दी है। एक लक्ष्य को पूरा करने के लिए जितने प्रकार के दायित्व निभाने होते हैं वह सब निभा लेता है।

आजाद होने के बाद देश को पुनर्गठित करना, देश का पुनर्निर्माण करना बहुत कठिन काम है, जिसमें तिल-तिल अपने को गलाना पड़ता है और उसमें भी आनंद आना चाहिए। यह निश्चय करना चाहिए कि मैं अपने सहयोगियों को अपने व्यवहार से ऐसी प्रेरणा दूंगा कि वे मेरे से भी चार कदम आगे तेजी से बढ़ जाएं। हम कुली नहीं हैं। हम कर्मचारी भी नहीं हैं। हम कार्यकर्ता हैं। हम वेतनभोगी नहीं हैं। कुछ मानधन के नाते पाते होंगे। उसी धन से हमारा गुजारा होता है। चार साल से इसी धन से गुजारा कर रहे हो, मैं जानता हूँ। हम इस काम को कर रहे हैं, तभी यह हो पा रहा है। किंतु जब कोई चीज नानाजी बताएंगे, यादवजी बताएंगे, जोशीजी या शारदाजी बताएंगे, तब करेंगे, नहीं तो पैर लंबे करके सो जाएंगे, ऐसा नहीं करना। घर की याद आएगी

विराट पुरुष

जाओ, लेकिन काम ज्यादा महत्व का है, यह हम सोचें। हम अन्य परिवारों के समान और अन्य परिवारों के सदस्यों के समान सदस्य थोड़े ही हैं। हम तो अपने लक्ष्य के दीवाने हैं। किसी को मिलना है, आएगा और मिलेगा। हमने यह जो मार्ग ग्रहण किया है यह तो पुनर्रचना का है। जो आज समाज की रचना है, उस रचना का जो व्यवहार है, उसी में फंसे रह करके क्या हम पुनर्रचना कर पाएंगे। यह सपना आप में से हर एक का बनना चाहिए। दिमाग में नई-नई चीज आए तो बातचीत करनी चाहिए। एक बात मैं आपको बताता हूँ कि आपके दिमाग में ऐसी बात आ सकती है कि मेरे से जो बड़े हैं, उनके दिमाग में भी नहीं आए। अपने जिले में राम दुलारे के दिमाग में नई बात आ गई। बेपट्टा-लिखा आदमी एक डीजल पंप में चौकीदार का काम करनेवाला रामदुलारे सोचता है कि बिना डीजल के, बिना बिजली के ट्यूबवेल से पानी निकाला जा सकता है। यानी किस समय किसके दिमाग में इतनी बड़ी बात आएगी, कौन कह सकता है। आपके दिमाग में नहीं आएगी, आएगी जरूर। तब सोचना चाहिए कि मैं उपकरण हूँ और बेहतर बनता जा रहा हूँ।

दृष्टिकोण स्पष्ट हो

हमारी शिक्षा कितनी हुई है, यह महत्व का प्रश्न नहीं है। हमारा दृष्टिकोण क्या है, यह ज्यादा महत्व का प्रश्न है। दृष्टिकोण हो, ध्येयनिष्ठ हो, फिर हर बात को समझने की क्षमता हमारे अंदर विकसित हो सकती है। मानव के विकास की कोई सीमा नहीं और किसी के विकास की कोई सीमा नहीं। इसलिए आप में से प्रत्येक क्यों न विकसित हो। बढ़िया-से-बढ़िया उपकरण बनें और इस सामाजिक पुनर्रचना के लिए काम करें। मुझे याद आता है वो समय, जब आचार्य कृपलानी मुजफ्फरपुर कॉलेज में प्रोफेसर थे। कृपलानीजी गांधीजी से प्रभावित होकर उनके आश्रम में चले गए। फिर वर्धा चले गए। तो उन कुशाग्र बुद्धि प्रोफेसर को आश्रम में काम दिया गया पैखाना साफ करने का। बापू से सब बोले, बापू यह क्या है। बापू हंस देते। बापू कहते—अरे, वह तो बहुत अच्छे बन सकते हैं, तुम नहीं। कृपलानीजी ने कुछ कहे बिना काम तो शुरू किया, लेकिन मन में परेशान कि मुझे यह काम दिया गया है, इससे क्या राष्ट्र की पुनर्रचना का निर्माण होगा। रोज यह सोचते थे, लेकिन काम करते जाते थे। काम उन्होंने नहीं छोड़ा। 8-10 दिन के बाद उनको लगा कि बापू ने मुझे ठीक पहचाना। मुझमें तो बड़ा घमंड है। मैं अपने को बड़ा बुद्धिमान, बड़ा विद्वान समझता था। आचार्य कृपलानीजी एक महान् राष्ट्र निर्माण में प्रमुख बने, लेकिन काम उन्होंने छोड़ा नहीं। काम कोई छोटा नहीं है। तो राष्ट्र पुनर्निर्माण के सामाजिक पुनर्रचना के काम में कोई दायित्व मिले, उस दायित्व को एकाग्र होकर पूर्ण रूप से करना आवश्यक है, क्योंकि हमें तो जो काम करने हैं, उन कामों को ही देखकर सब लोग सीखेंगे। हमको देखकर सीखेंगे।

हममें से हरेक को स्वतंत्र रूप से सामाजिक पुनर्रचना का काम करना है। इसके लिए आवश्यक है स्वयं को सब दृष्टि से सुयोग्य बनाना और जो निश्चय किया है, उसे निश्चित समय से पूर्ण करके दिखाना। कार्यक्रम पर समय से आएँ। कुछ लोग ऐसे गप्पें मारते हुए इतना समय बिता देते हैं कि कोई ठिकाना नहीं। हम रोज का समय कितना नष्ट करते हैं? पैसा किसका है,

समाजशास्त्री

हमारा नहीं समाज का है। जैसी सरकारी कर्मचारियों की स्थिति है कि सरकार का पैसा है तो चाहे जितना बरबाद हो जाए तो कोई चिंता नहीं, अगर हम भी यह सोचें कि समाज का पैसा है, एक पैसे की जगह पांच पैसा खर्च हुआ तो कौन बोलेगा, तो यह गलत उदाहरण बनानेवाली बात होगी। स्वयं सोचना होगा कि मेरे से पांच पैसा खर्च हो गया गलती से, मैं पचास पैसा उसके बदले में कमा करके दूंगा।

दीनदयालजी की पुण्य तिथि के पावन पर्व पर हम फिर से अपने को इस पुनर्चना के कार्य में पावनतम बनाने का प्रयास करेंगे। स्वयं को पावनतम बनाने का काम करें। भूल जाएं पिछला, कल तक हमने क्या किया, यह भूल जाएं, आज से मानो हमने एक महान् कार्य के उपकरण के नाते एक नया जीवन प्रारंभ किया है। दीनदयालजी का बलिदान हुआ और हमारा पुनर्जन्म। इस नाते से हमने यह कार्य संभाल लिया। अपने-अपने क्षेत्र में और मिलकर के काम करें, सलाह से काम करें। जैसे तीन डॉक्टर हैं, तीन कंपाउंडर हैं, एक मैनेजर है, परंतु ऐसा लगना चाहिए कि हम अभिन्न हैं, एक टीम हैं। टीम वर्क आजकल समाज में नहीं है, उसका नमूना समाज में खड़ा करना है। इसके लिए कितने कार्यकर्ता चाहिए। हमें असंख्य कार्यकर्ता खड़े करने हैं। 269 न्याय पंचायतें हैं, हर न्याय पंचायत में तरुण मंडल खड़ा करना हमारा काम है। हमने इतने ब्लॉक का सोचा और अन्य ब्लॉक का सोचा नहीं यह सुनकर मुझे पीड़ा हुई। 269 पंचायतों में तरुण मंडल का काम प्रारंभ होना ही चाहिए। उन्हीं के आधार पर पुनर्चना का सारा कार्य करना है, इसका हम ध्यान रखें। मैं अधिक तो कुछ कहूंगा नहीं, जो कुछ अभी तक हुआ है, आप ही लोगों की लगन और परिश्रम के कारण हुआ है। अब यह लगन और परिश्रम इस रूप में प्रकट हो कि 4 साल में हुआ काम हम अगले एक वर्ष के अंदर अपने-अपने क्षेत्र में करें। ये दो दिन का कार्यक्रम कितना अच्छा हुआ, इसका निर्णय अगली 11 फरवरी को ही हम कर सकेंगे।

□

नारी की प्रधानता पुनर्प्रतिष्ठित हो

अपना समाज स्त्रीप्रधान न होकर पुरुषप्रधान है। समाज में महिलाओं का स्थान पुरुष का अनुगामी बने रहने का है, न कि स्वतंत्र निर्णय लेने का। निर्णय लेने के स्तर पर महिलाओं को शामिल करने की जरूरत नहीं समझी जाती है। क्या यह ठीक है? अथवा इसमें परिवर्तन करना है? सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में क्या महिलाओं की इसी प्रकार उपेक्षा न्यायोचित है?

जो प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं, उन्हें एक दिन में नहीं पलटा जा सकता। स्वभाव व परंपराओं को बदलने के लिए दृढ़ इच्छाशक्ति व धैर्य की आवश्यकता होती है, अतः यह कार्य धीरे-धीरे ही संपन्न करना होगा। परिवार में स्त्रीप्रधान रहे अथवा पुरुष, इसका निर्णय परिवार के प्रति निभाई जानेवाली जिम्मेदारियों के आधार पर ही किया जा सकता है। इस संबंध में आज की शिक्षा-पद्धति भी अनेक विरोधाभासों को जन्म देती है। उदाहरण के लिए समाजशास्त्र पढ़ानेवाला पुरुष अध्यापक समाज की सारी अच्छी बातें बताता है, किंतु घर में अपनी पत्नी से दुर्व्यवहार करता है। इसलिए पुरुषों का प्रबोधन आवश्यक है। यदि पुरुष मानव है तो स्त्री भी मानव है। ये दोनों एक-दूसरे को समान समझते हुए एक-दूसरे के पूरक बनें, तभी सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में सफलता मिल सकती है। परस्पर पूरकता वास्तव में एक प्राकृतिक तत्त्व है। इन दोनों में कोई छोटा अथवा बड़ा नहीं है। एक-दूसरे के बिना दोनों पूर्ण नहीं होते।

पुरुष को प्रधानता मिलने का कारण महिलाएं स्वयं भी हैं। पुत्र प्राप्ति की कामना में पुरुष की प्रधानता स्वीकार कर ली गई लगती है। पुरुष प्रधानता के इस परंपरागत विचार को अगर हम यथावत् मानते रहे तो परिवर्तन संभव नहीं है। नारी को केवल ममता की मूर्ति मानें तो सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में हम एक महत्वपूर्ण सहयोगी को खो देंगे। परिवर्तन नितांत आवश्यक है, नहीं तो समाज खड़ा नहीं होगा। महिला को समाज की धारणा का आधार माना गया है। क्या कन्या की मां केवल नारी होती है अथवा पुत्र का पिता केवल पुरुष होता है। पुरुष प्रधानता का विचार अहंकार की उपज है। अहंकार के साथ-साथ क्रोध, संशय, द्वेष और ईर्ष्या जैसी बुराइयां भी जुड़ी होती हैं। अहंकार से मुक्ति सरल नहीं है। अहंकार से मुक्त समाज ही मोक्ष है।

समाजशास्त्री

संतान को बनाना मां के हाथ में ज्यादा होता है। वह बालक को नौ मास गर्भ में रखती है। बालक के खान-पान का कार्य माता के हाथों में ज्यादा अच्छे तरीके से होता है। अतः समाज की पुनर्रचना में माता सक्रिय सहयोग दे सकती है। मां जैसा चाहे समाज को बना सकती है। पुरुष व स्त्री की प्रधानता के प्रश्न पर विवाहित महिला या पुरुष का दृष्टिकोण पक्षपाती हो सकता है, परंतु मैं तो अविवाहित हूं, इसलिए निष्पक्ष चिंतन कर सकता हूं। किसी भी पुत्र की मां विवाहोपरांत अपने बेटे को प्रधानता देती है। यद्यपि बहू पराए घर से आती है, फिर भी उसे प्रधानता नहीं दी जाती। प्रधानता का यह दृष्टिकोण परंपरा से विकसित हुआ है। वंशवृद्धि के लिए पुत्र जन्म को उपयोगी माना जाता है। श्राद्ध आदि की क्रियाएं भी इसी विचार को केंद्र में रखकर संपन्न कराई जाती हैं। सफल दांपत्य जीवन में प्रधानता या अप्रधानता का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। पति-पत्नी को एक-दूसरे के बिना सुख, बल व समाधान नहीं मिल सकता। मैंने सफल पति-पत्नी देखे हैं। मुझे पति-पत्नी के कारण ही जीवन प्राप्त हुआ।

अपनी आकांक्षा है कि परिवार सफल बनें। नारी की अप्रधानता कैसे मिटे, यह सोचना है। हमारी परंपरा ने पक्षपात नहीं किया है। पक्षपात हम करते हैं और इसे व्यवस्था मान लेते हैं, परंतु परिस्थितियां बदल रही हैं। वातावरण बदल रहा है। पश्चिम की जीवन-शैली पूरे विश्व को अपनी चपेट में ले रही है। अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए पश्चिम में महिलाओं के न केवल संगठन बने, बल्कि आंदोलन भी हुए हैं।

हम समाज सुधारक बनकर पहली बार समाज में नहीं आ रहे हैं। हिंदुस्तान में समाज सुधारकों की शृंखला रही है, परंतु समाज सुधार हो नहीं पाया। पर्याप्त दहेज न मिलने के कारण आज भी जवान लड़कियां जला दी जाती हैं अथवा आत्महत्या के लिए मजबूर की जाती हैं। समाज का मध्यम वर्ग सजावट और तामझाम के नाम पर लाखों रुपए पानी की तरह बहाता है। नए जमाने की कुप्रथाएं आरंभ हो गई हैं। दीनदयाल शोध संस्थान एक परंपरा खड़ी कर रहा है। कोई चीज खराब कहकर काम नहीं चलेगा, अपितु उसकी जगह युगानुकूल सुप्रथाएं व्यवहार में लाने से कुप्रथाएं स्वयं धीरे-धीरे मिट जाएंगी।

□

समन्वय का सौंदर्य नूतन व पुरातन का मिलन

युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का कार्य अत्यंत कठिन तथा नाजुक है। इस कार्य के लिए ठीक दिशा, कुशाग्र बुद्धि, दूरदृष्टि एवं विशेष कुशलता आवश्यक है। किंतु इस कार्य को संपन्न किए बिना न समाज गतिमान हो सकता है, न उन्नत। गत कुछ शतकों में समाज सुधार के अनेक प्रयास अवश्य हुए हैं। उनके कम या अधिक मात्रा में सुपरिणाम भी हुए हैं, किंतु युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना का सर्वांगीण-कार्य उपेक्षित ही रहा है। मानव मूलतः प्रगतिशील है। इस कारण वैज्ञानिक तथा शिल्प-विज्ञान की गति साधारणतः रुकती नहीं। गत तीन शतकों में पश्चिमात्य देशों में वैज्ञानिक आविष्कारों की एवं शिल्प-विज्ञान (प्रौद्योगिकी) की गति एवं प्रगति आश्चर्यजनक रही है। उपर्युक्त प्रगति का प्रभाव अपने समाज पर भी पड़ा है। शिल्प-विज्ञान की प्रगति के कारण अधिक सुविधाजनक साधन सामग्री की बहुलता बढ़ी हुई है। उसका उपयोग रोकना न संभव था, न है। नई पीढ़ी द्वारा नूतन साधन सामग्री का उपयोग अधिकाधिक बढ़ना स्वाभाविक है। उपलब्ध साधन सामग्री के अनुसार रहन-सहन में परिवर्तन हुआ करता है। अतः शिल्प-विज्ञान की प्रगति सभ्यताओं को प्रभावित किए बिना नहीं रहती। अपनी सभ्यता एवं संस्कृति पुरातनतम होते हुए आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी प्रतिष्ठा प्राप्त है। इसका कारण उसका बाह्य रूप नहीं है। बल्कि उसके द्वारा विकसित हुए मानवीय जीवन-मूल्य हैं। वे किसी भी देश में, किसी भी काल में, किसी भी समाज के लिए समान रूप से कल्याणकारी हैं। हमें इन मूल्यों के आधार पर नए संदर्भ में रहन-सहन, रीति-रिवाज आदि बाह्य आवरणों में आवश्यक परिवर्तन करना ही होगा। अन्यथा युग-युगों से संजोए हुए अपने जीवन-मूल्यों पर ही आंच आएगी।

उदाहरणस्वरूप, हम अपनी परंपरागत परिवार पद्धति का विचार करें। अपने समाज में संयुक्त परिवार पद्धति प्रचलित थी। इस पद्धति में अनोखी संस्कार क्षमता थी। परिवार में जन्म पानेवाला बालक या बालिका के लिए जन्म से ही अपने परिवार में विशाल वातावरण उपलब्ध होता था। उनका लगाव केवल अपनी माता एवं पिता तक सीमित नहीं होता था। विशाल

परिवार के सभी सदस्यों से वे सहज रूप से अभिन्नता अनुभव करते थे। परिणामस्वरूप नई पीढ़ी में हृदय की विशालता सहज में ही विकसित होती थी। पास-पड़ोस के निवासियों में भी वे निकटता अनुभव करते थे। इस कारण उनके हृदय की संवेदनशीलता उनके व्यवहार में प्रतिबिंबित होती थी। इससे अधिकाधिक दायित्व वहन करने की उनकी क्षमता भी विकसित होती थी।

आधुनिक शिल्प-विज्ञान का परिणाम

आधुनिक शिल्प-विज्ञान की प्रगति के कारण सबकुछ बदल गया है। परंपरागत व्यवसाय एवं उद्योगों के रूप में जमीन-आसमान का अंतर आ गया है। पिता के दो-तीन बेटे अन्यान्य व्यवसाय अपनाने लगे हैं। उनके व्यवसाय, उद्योग या नौकरी के स्थान भी विभिन्न होते हैं। फलस्वरूप संयुक्त परिवार बिखर रहे हैं। नवजात बच्चों के लिए माता-पिता के अतिरिक्त निकटतम अन्य कोई रहा नहीं है। इस आधुनिक काल के लघु परिवारों के बच्चों पर मिले-जुले जीवन की मानवीय भावना के संस्कार कैसे हों, यह समस्या बन गई है। अतः लघु परिवारों में जीवन-मूल्यों की संस्कार क्षमता निर्माण करने की विधियां विकसित करना समय की आवश्यकता है। आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की प्रगति की पृष्ठभूमि में अपने मानवीय मूल्य, शिक्षा, स्वास्थ्य, शासन, व्यवसाय, उद्योग, साहित्य, पत्रकारिता, ललितकला आदि समाज के अभिन्न अंगों में प्रतिबिंबित होते रहें, इसकी व्यवस्था निर्माण करनी होगी। अन्यथा आधुनिक औद्योगिक सभ्यता से उपजा उपभोगवाद हमारी मानवीय परंपरा को ही मिटा देगा।

नैतिकता का ह्रास

ग्रामीण जीवन में अपने परंपरागत जीवन-मूल्य शहरों की अपेक्षा अधिक मात्रा में विद्यमान हैं। इस कारण सामाजिक पुनर्रचना का कार्य ग्रामीण अंचलों में खड़ा करना तुलनात्मक-दृष्टि से अधिक सरल है। प्रत्येक ग्राम में वृद्ध-वृद्धाएं, प्रौढ़ महिला-पुरुष, युवक-युवतियां, बालक-बालिकाएं होती हैं। इन सबके व्यक्तिगत, पारिवारिक एवं सामूहिक जीवन से समाज के लिए उपयुक्त या अनुपयुक्त वातावरण निर्माण होता है। व्यक्ति एवं परिवार के जीवन में सामाजिक दृष्टि का अभाव रहा तो समाज की स्थिति बिगड़ती है। आधुनिक काल में उपभोग ही जीवन का केंद्रबिंदु बना है। परिणामतः असामाजिकता सर्वव्यापी बनी है। इस वस्तुस्थिति को समझकर उपयुक्त उपाय योजना की ओर ध्यान देनेवालों की संख्या नगण्य है। सरकारी या गैर-सरकारी माध्यम से विकास के जो कार्य हो रहे हैं, वे साधारणतः सतही हैं। अनजाने में ही क्यों न हों, उन प्रयासों के कारण उपभोगवाद को ही प्रोत्साहन मिल रहा है। अतः नैतिकता जैसे सामान्य जीवन-मूल्य का भी द्रुत गति से लोप हो रहा है।

बालक-बालिकाएं तथा युवक-युवतियां मिलकर नई पीढ़ी बनाती हैं। इन्हीं के माध्यम से अपेक्षित भावी समाज का रूप खड़ा हो सकता है। किंतु नूतन-पीढ़ी इस दायित्व को निभाए



विराट् पुरुष

इसके लिए उन्हें कौन सी दिशा प्राप्त हो रही है? परिवार में माता-पिता अन्य ज्येष्ठ एवं वृद्धजन, पास-पड़ोस के प्रतिष्ठा प्राप्त लोग तथा विद्यालयों में पढ़ानेवाले अध्यापक अध्यापिकाओं के जीवन से इस नूतन पीढ़ी को कौन से संस्कार प्राप्त हो रहे हैं? इन सारे ज्वलंत प्रश्नों पर विचार करके ही ग्रामों की पुनर्रचना का कार्य खड़ा किया जा सकता है।



संस्कार केंद्र प्रतिभा विकास का माध्यम

स रकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं की ओर से आंगनवाड़ियां, बालवाड़ियां, संस्कार-केंद्र, बालमंदिर, विद्यामंदिर आदि अनेक स्तुत्य प्रयास हो रहे हैं। इन केंद्रों में उपस्थित बच्चे तीन से पांच घंटे अपेक्षित वातावरण में रहते हैं। बाकी समय परिवार में या पास-पड़ोस में बीतता है। इस काल में उन्हें जो कुछ देखने-सुनने को मिलता है, क्या वह संस्कार-केंद्रों में प्राप्त विशेष संस्कारों के अनुकूल होता है? क्या इससे उनके कोमल अंतःकरणों पर यह प्रभाव नहीं पड़ता कि पढ़ने की बातें और होती हैं और करने की बातें दूसरी ही होती हैं? क्या ऐसी अवस्था में नई पीढ़ी की गति और प्रगति अपेक्षित दिशा में हो पाएगी?

इस विश्लेषण से सहज में ही ध्यान में आता है कि समाज की पुनर्रचना के लिए बालवाड़ियां या संस्कार-केंद्र चलाना मात्र पर्याप्त नहीं है। नई पीढ़ी को उठते-बैठते, खाते-पीते, खेलते-कूदते, लिखते-पढ़ते अर्थात् सदा-सर्वदा सुनियोजित संस्कार सहज में ही मिलते रहें, इसका प्रबंध किए बिना अपने जीवन-मूल्यों के आधार पर भावी समाज खड़ा हो पाना असंभव है।

नई पीढ़ी परिवार में जन्म पाती है। परिवार एक ऐसी इकाई है, जिसमें सभी आयु के एवं सभी स्तरों के महिला-पुरुष एक साथ रहते हैं। समाज परिवार का ही विशाल रूप है। इन दोनों इकाइयों के सभी घटकों का एक सम्मिलित जीवन है। वे परस्परपूरक बने रहें, यह अति आवश्यक है। नई पीढ़ी का ठीक दिशा में विकास, स्वाभाविक रूप से निकट संपर्क में रहनेवालों से अलग रखकर संभव नहीं हो सकता। अतः आवश्यकता है कि बच्चों के माता-पिता तथा परिवार के अन्य सदस्य, पास-पड़ोस के प्रतिष्ठा प्राप्त लोग एवं अध्यापक-अध्यापिकाओं के जीवन में सुसंस्कार क्षमता निर्माण की जाए। यह कार्य कष्टसाध्य है। किंतु इसके बिना नई पीढ़ी पर अपेक्षित संस्कार करना संभव नहीं हो सकता।

वृद्ध महिला पुरुषों की उपयोगिता

परिवारों में वृद्ध महिला-पुरुष भी हो सकते हैं। वे शारीरिक परिश्रम करने की स्थिति में नहीं होते। उन्हें बैठे-बैठे ही दिन बिताने पड़ते हैं। जो मिले उनसे बातें करना उन्हें अच्छा लगता है। उनकी

विराट पुरुष

वृद्धावस्था की इस रुचि का हमें उपयोग करना है। हम स्वयं एवं गांव के पढ़े-लिखे लोगों के तथा अध्यापक-अध्यापिकाओं के सहयोग से बच्चों के लिए बोधप्रद एवं रुचिकर कथाओं को संगृहीत करें। लेखन कार्य में रुचि रखनेवालों से अच्छी कथाएं लिखवाई भी जा सकती हैं। इन कथाओं से गांव के वृद्ध महिला-पुरुषों को परिचित कराया जाए ताकि वे इन कथाओं को अपने परिवार के तथा पास-पड़ोस के बच्चों को रुचि के साथ सुनाया करें। इससे परिवारों का तथा गांव का वातावरण सहज में ही सुसंस्कारक्षम बनेगा। वृद्ध लोगों को भी अपने जीवन की उपयोगिता अनुभव होगी। वे प्रसन्न रहेंगे तथा नई पीढ़ी की बालिकाओं एवं बालकों को सुसंस्कार प्राप्त होते रहेंगे।

बुद्धिजीवी लोग शहरों में आए दिन विचार-गोष्ठियां आदि किया करते हैं। उनका व्यावहारिक जीवन के लिए कितना उपयोग होता है, यह कहना कठिन है। हम गांवों में प्रतिमाह कम-से-कम एक बार विचार-गोष्ठी का कार्यक्रम आयोजित किया करें। स्थानीय परिस्थिति के अनुसार महिला-पुरुषों को एक साथ या अलग-अलग आमंत्रित किया जाए। इन गोष्ठियों या सम्मेलनों में ग्राम तथा ग्राम के परिसर से संबंधित विषय जिले में, प्रदेश में, देश में तथा दुनिया में घटी घटनाएं, अपने गांव का जीवन अधिक उन्नति करने से संबंधित विषय, स्वास्थ्य, शिक्षा आदि बातों पर चर्चा, विचार-विनिमय तथा सामूहिक प्रयासों की योजनाएं आदि के संबंध में निर्णय हो सकते हैं। इससे सामूहिक चेतना बढ़ेगी तथा लोग केवल अपने परिवार तक ही क्रियाशील नहीं रहेंगे। संपूर्ण आबादी के विकास का विचार हर परिवार का अंग बनेगा। इस वातावरण के सुसंस्कार सहज में ही नई पीढ़ी पर होंगे। सामाजिक पुनर्रचना की प्रक्रिया प्रारंभ होगी।

खेलों और कला की महत्ता

ग्रामों में बालक-बालिकाओं के लिए तथा युवक-युवतियों के लिए सुनियोजित खेलकूद के कार्यक्रम नहीं हो रहे हैं। इस आयु में खेलों का बहुत महत्त्व होता है। खेलों से केवल शरीर स्वास्थ्य का ही लाभ नहीं होता। प्रसन्न-वृत्ति भी विकसित होती है। आत्मविश्वास बढ़ता है। सामूहिक जीवन की रुचि पनपती है। अतः कम खर्चीले किंतु नियम युक्त खेलों के कार्यक्रम आयु के अनुसार आयोजित किए जाएं। खेलों की प्रतिस्पर्धाएं युवा-वर्ग में उत्साहवर्धन के साथ-साथ निपुणता भी बढ़ाती हैं। विभिन्न प्रकार के व्यायाम एवं योगासनो के प्रति भी बच्चों में रुचि बढ़ाई जाए। ये आजीवन स्वास्थ्य प्रदान करने के माध्यम बन सकते हैं।

पुरातनकाल में ग्रामीण अंचल विभिन्न कलाओं के लिए प्रख्यात था। किंतु जीवन का यह अंग उपेक्षित होता गया है। अब तो अनेक ग्राम पूर्णतः कलाशून्य हो गए हैं। यह स्थिति ठीक नहीं है। अतः इस दिशा में पहल करना आवश्यक है। अन्यथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन रसहीन बनेगा। कलाएं व्यक्तित्व विकास का एक सशक्त माध्यम हैं। नई पीढ़ी में सृजनशील प्रतिभा विकसित किए बिना उनका व्यक्तित्व विकास पूर्ण नहीं हो सकता। उनमें सामाजिकता की भावना अंकुरित करने के लिए भी इस दिशा में बच्चों को सुअवसर उपलब्ध कराना आवश्यक है।

□

एकात्मता का सूत्र मूल्यों का पुनरोत्थान

ग्रामीण युवक-युवतियां विवाहबद्ध होकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की दिशा में अग्रसर होने की अवस्था में होती हैं। हर एक युवती एवं युवक विवाहबद्ध होकर क्रमशः मां व पिता बनता है। किंतु मां को या पिता को अपनी संतान का पालन-पोषण कैसे किया जाना चाहिए, इसकी उन्हें जानकारी देने की अपने समाज में व्यवस्था नहीं है। माता-पिता बनना सामाजिक स्थायित्व का दायित्व निभाने का श्रेष्ठतम कार्य है। उसी पर भावी समाज का अच्छा या गड़बड़ बनना निर्भर है। इनके महत्वपूर्ण पहलू की सदियों से उपेक्षा होती आ रही है। इसी कारण सामाजिक दृष्टि प्राप्त सुपुत्र या सुकन्या पाना अपवाद सा सिद्ध हो रहा है, जबकि जन्म लेनेवाली प्रत्येक संतान सामाजिक दृष्टि से विभूषित होनी चाहिए। अतः इस दृष्टि से हम अपने गांव में आवश्यक प्रयास प्रारंभ करें। युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना की दिशा में यह बहुत महत्वपूर्ण कदम सिद्ध होगा।

ईश्वर-भक्ति का अर्थ

पुरातनकाल में गांव-गांव में भजन-कीर्तन की नियमित प्रथा थी। गांव की महिलाएं एवं पुरुष इनमें बड़ी रुचि से सम्मिलित हुआ करते थे। हर एक पूजा-स्थल अर्थात् मंदिर में नित्य पूजा एवं आरती हुआ करती थी। मानव को उदार, उदात्त एवं परोपकारी अर्थात् आध्यात्मिक बनाने की ये विधियां ग्राम-जीवन से लुप्त हो रही हैं। ये धार्मिक कार्यक्रम अब सामूहिक न रहकर व्यक्तिगत रूप धारण किए हुए हैं। उसमें भी दिन-प्रतिदिन कमी होती जा रही है।

देवपूजा भी व्यक्तिगत या पारिवारिक स्वार्थ साधन का माध्यम बन गई है। ईश्वर-भक्ति का अर्थ बन गया है—ईश्वर स्तुति एवं उससे कुछ-न-कुछ पाने की लालसा या किए गए पापों से मुक्ति पाना। इसमें न आध्यात्मिकता है न नैतिकता। ईश्वर-भक्ति का अर्थ है ईश्वर समान सर्वकल्याणकारी बनना, सभी के लिए सहायक होना—मानवीय गुणों से विभूषित होना।

अतः हम इस दिशा में प्रयत्नशील हों। ग्राम के अंदर या परिसर में जितने भी मंदिर हैं, उन सबकी समुचित व्यवस्था गांव-समाज मिलकर करे, यह कार्यक्रम आयोजित करना। इस कार्य

विराट पुरुष

से भी लोगों में स्वार्थरहित काम करने की वृत्ति बढ़ेगी। नई पीढ़ी पर सुसंस्कारों का यह भी एक महत्वपूर्ण साधन है।

सर्वमान्य व्यक्ति और शक्ति

पुराने काल में गांवों में आमतौर से सर्वमान्य लोग होते थे। उनका जीवन पक्षपात रहित होने के कारण उनका सब पर प्रभाव होता था। आपसी झगड़ों का वे गांव में ही निपटारा कर लिया करते थे। गांव का जीवन एक विशाल परिवार के रूप में चलता था। वैसे भी गांवों में अपराधों की घटनाएं कम होती थीं।

सन् 1650 से बालिक मताधिकार प्राप्त हुआ। उसी आधार पर 1942 से चुनाव होने लगे। राजनीतिक दल बन गए। सत्ता-संघर्ष प्रारंभ हुआ। मरणासन्न जातिप्रथा ने जातिवाद का उग्र रूप धारण किया। उसे राजनीतिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। गांव के गांव राजनीतिक दलबंदी की चपेट में आ गए। परिणामस्वरूप गांवों में भी सर्वमान्य व्यक्तियों का अभाव होता गया।

देश की एकता एवं एकात्मता के लिए हम लोग चाहे सो करने के लिए तत्पर माने जाते हैं और यह सत्य भी है। देश की एकता तथा एकात्मता कायम रखने के लिए आवश्यकता है सभी स्तरों पर सर्वमान्य व्यक्तित्वों के अस्तित्व की। सर्वमान्य व्यक्तित्व एवं शक्ति के बिना किसी भी आबादी में या देश में सबको एक सूत्र में पिरोए रखने का काम अन्य किसी माध्यम से संभव नहीं है। अतः हम अपने गांव में दलगत भावना से मुक्त सर्वमान्य व्यक्तियों का विकास करने के काम को प्राथमिकता दें। सभी प्रकार के रचनात्मक कार्यों की सफलता भी ऐसे ही व्यक्तित्वों पर निर्भर करती है।

कालबाह्य रूढ़ियां

अपना समाज बहुत पुराना है। उसमें परंपरागत रूप से अनेक रूढ़ियां चलती चली आ रही हैं। जिस समय ये रूढ़ियां प्रचलित हुई थीं, उस समय वे आवश्यक एवं कल्याणकारी रहीं, किंतु काल बदल गया है। जीवन के साधनों में बहुत परिवर्तन हुआ है। परंपरागत रूढ़ियों में से अधिकांश रूढ़ियां समय के साथ मेल नहीं खातीं। वे कालबाह्य हो गई हैं। उनके स्थान पर इस युग के अनुकूल नई व्यवस्थाएं प्रस्थापित करने की आवश्यकता है। इस दिशा में हमें कार्य करना होगा।

समाज में सामाजिक न्याय की कमी न रहे। किसी को उच्च या नीच समझने की भावना को समाप्त किया जाए। चराचर में भगवान मानने की हमारी अनोखी परंपरा है। अतः हम अपने गांव के निवासियों को अपनी इस उच्चतम परंपरा के अनुसार व्यवहार करने के लिए प्रेरित करें।

मानव की मानवीयता का निचोड़ है सदाचार। सदाचार की सदैव साधना हर निवासी के जीवन का अभिन्न अंग बने, ऐसा वातावरण अपने ग्राम में निर्माण करें। हर एक व्यक्ति इस विषय में दूसरे की ओर न देखे। स्वयं सदाचार की राह पर अविचल चलता रहे। इसी से सब में सदाचार का जीवन अपनाने की चाह निर्माण होगी।



समाजशास्त्री

ग्रामोदय में संलग्न व्यक्तियों को मान-सम्मान की, अपने प्रसिद्धि की या प्रतिष्ठा की अभिलाषा छूने न पाए। तभी उसे इस कठिन कार्य को संपन्न करने के लिए आवश्यक संख्या में सक्रिय सहयोगी प्राप्त होंगे। ग्रामोदय की सफलता व्यक्ति पर नहीं, सहयोगियों पर ही निर्भर रहती है।



मातृत्व परिवार का विमूषण

अपना समाज सनातन है। सनातन का अर्थ केवल पुरातन नहीं, चिरंतन है। इसमें जहां चिरपुरातनता है, वहीं नित्य-नूतनता के बीज भी विद्यमान हैं। अपने सनातन समाज की यह गतिशीलता अनंत काल से अखंड रूप में चली आ रही है। सामाजिक जीवन की यह भारतीय अवधारणा विश्व में अद्वितीय है।

वास्तव में इस अविरल गतिशीलता का मर्म पारिवारिक जीवन में समाहित है। इसी कारण परिवार को समाज की आधारभूत इकाई माना गया है। पारिवारिक जीवन के माध्यम से ही समाज की निरंतरता एवं स्थायित्व प्राप्त होता है। फलस्वरूप भारतीय जीवन-पद्धति में परिवार अर्थात् गृहस्थाश्रम को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।

परिवार का उद्गम है—विवाह संस्कार। इसका अर्थ केवल युवक-युवती का मिलन मात्र नहीं है। यह व्यक्तिगत जीवन का सहजीवन में विलीनीकरण है। यह सामाजिक प्रतिबद्धतापूर्ण व्यवहार के शुभारंभ का सार्वजनिक समारोह है। यह परस्परपूरकता के आचरण की दीक्षा-विधि है। अपने सांस्कृतिक जीवन को चिरंतन एवं सदैव गतिशील बनाए रखने का संयुक्त संकल्प है। अमर आत्मा प्रणीत 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की अवधारणा को सहजीवन द्वारा चरितार्थ करने की पावन प्रतिज्ञा है। आजीवन परस्पर अभिन्न बने रहने की संस्कारक्षम अभिव्यक्ति है। सहजीवन की एकात्मता तथा सामाजिक प्रतिबद्धता के माध्यम से भावी संतान को सुसंस्कारित करने की वचनबद्धता है। सार्थक सहजीवन की यह मंगलमय यात्रा है।

उपर्युक्त मानवोचित एवं उदात्त प्रेरणा पारिवारिक जीवन की आधारालि है। किंतु काल के प्रवाह में पारिवारिक जीवन का यह आदर्श लुप्त हो गया है। व्यक्ति पारिवारिक मोह में उलझकर सार्थक-जीवन की दिशा खो बैठा है। अधिकाधिक प्रभावी हो रही विश्वव्यापी भौतिकता ने मानव को केवल उपभोगप्रवण प्राणी बनाया है। उसकी मानवीय संवेदनशीलता मिटने लगी है। उसके कर्तृत्व की परिधि परिवार तक ही सिमट गई है।

विघटन बढ़ रहा है

आधुनिकता में हुई औद्योगिक क्रांति के बाद अस्तित्व में आई आर्थिक रचना ने इस

मंथन, जनवरी-मार्च 1992

समाजशास्त्री

संकुचितता को और अधिक बल प्रदान किया है। फलस्वरूप परिवार का आकार घटता गया है। पति-पत्नी और एक या दो बच्चों के परिवारों का चलन बढ़ा है। उसमें वृद्ध माता-पिता के लिए भी स्थान पाना कठिन हो गया है। व्यक्ति की संकुचितता यहां तक ही रुकी नहीं है। पति-पत्नी के अभिन्न संबंधों में भी दरारें पड़ने लगी हैं। कहीं दहेज की भूख आड़े आ रही है तो कहीं व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना सीमा लांघ रही है। माता-पिता के आपसी तनावपूर्ण संबंध संतान के लिए असमंजस का कारण बन रहे हैं। उनके लिए सार्थक जीवन के सुसंस्कार पाना असंभव हुआ है। वैवाहिक जीवन का आदर्श इतिहास का विषय बना है। परिणामस्वरूप नैतिकता, प्रामाणिकता, संवेदनशीलता, राष्ट्रीयता, मानवीयता आदि व्यापकता बोधक शब्द केवल वाणी एवं साहित्य में अलंकार के रूप में काम आ रहे हैं। उनका व्यावहारिक जीवन से संबंध-विच्छेद हुआ है। परिणामस्वरूप समाज में दिन-प्रतिदिन विघटन बढ़ रहा है।

देश का भविष्य निर्भर करता है नूतन नागरिकों पर। वे जन्म पाते हैं परिवारों में तथा शिक्षित होते हैं विद्यालयों में। परिवार में उनकी प्रथम शिक्षा होती है मां। उनके व्यक्तित्व-विकास के ये ही दो केंद्र हैं। अतः इन केंद्रों को संस्कारक्षम, प्रेरणापद एवं सामाजिक प्रतिबद्धतापूर्ण बनाना नव-स्वतंत्र देश के नेतृत्व का प्राथमिक कर्तृत्व का प्राथमिक कर्तव्य था। किंतु इन दोनों विकास केंद्रों की सर्वाधिक उपेक्षा हो रही है। किंतु आजादी के संग्राम काल में व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन की उपेक्षा होती है। कारण, स्वातंत्र्य संग्राम की लक्ष्य सिद्धि के लिए व्यक्तिगत एवं पारिवारिक बलिदान ही सर्वाधिक असरदार हथियार होते हैं। किंतु आजादी पाते ही सामाजिक जीवन की आधारशिला पारिवारिक संस्था को फिर से सुसंस्कारक्षम एवं सामाजिक प्रतिबद्धतापूर्ण बनाने के काम को प्राथमिकता दी जानी चाहिए थी। स्वाधीन भारत में इसकी अक्षम्य उपेक्षा हुई है।

जब हम परिवार का विचार करते हैं तब मातृत्व के महत्व को भी समझना होगा। युवतियों को मातृत्व की उचित शिक्षा से विभूषित करना होगा। मातृत्व की उपेक्षा या अवमानना करके सामाजिक पुनर्चना की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

कन्याओं की भावनाओं पर आघात

प्रकृति ने गर्भ-धारण का दायित्व महिला के लिए निर्धारित किया है। प्रकृति की यह अपरिवर्तनीय व्यवस्था है। महिला नौ माह गर्भ को अपने पेट में पालती है। गर्भावस्था में उसकी मनोभावनाओं का गर्भ की विकास प्रक्रिया पर असर पड़ता है। जन्म पाने पर स्तनपान तक शिशु अपनी मां के साथ अभिन्न बना रहता है। तदुपरांत भी दो-तीन साल तक बच्चा अपनी मां के ही सान्निध्य में अधिक रहता है। इस अवस्था में उसकी ग्रहणशीलता बहुत प्रखर होती है। विकास की दृष्टि से बच्चों की यह कालावधि बहुत महत्वपूर्ण है, वस्तुतः यह भावी समाज का ही बाल्यकाल है। उसकी शिल्पकार है मां अर्थात् महिला। इस वास्तविकता को नकारा नहीं जा सकता।

नव स्वतंत्र देश के नवनिर्माण में महिलाओं का कितना बड़ा योगदान हो सकता है, यह उपर्युक्त



विराट् पुरुष

तथ्य से स्पष्ट है, अतः राष्ट्र जीवन के सभी पहलुओं का व्यावहारिक ज्ञान तथा भविष्य निर्माण की रूपरेखा महिला जगत् को अवगत हो, यह नितांत आवश्यक है। जनजीवन की सभी गतिविधियों में वह समान रूप से सक्रिय न रही तो केवल पुरुष वर्ग राष्ट्र का भविष्य निर्माण करने में सफल होगा, यह धारणा पूर्णतः अव्यावहारिक है। इस दिशा में दीनदयाल शोध संस्थान समाजशिल्पी परिवारों के माध्यम से सक्रिय कदम बढ़ा रहा है।



अ-सरकारी होगा असरकारी स्वयंसेवी संस्थाएं चुनौती स्वीकार करें

21 वीं शताब्दी के भारत में स्वयंसेवी संस्थाओं की क्या भूमिका होगी? वास्तव में यह विषय अब विवाद का विषय न रहकर एक प्रस्थापित तथ्य का रूप ले चुका है। विगत अर्धशताब्दी में भारत के नव स्वाधीन होने के बाद सरकार की ओर से अनेक योजनाएं बनीं—अरबों—खरबों रुपए उस पर व्यय किए गए, जिसके कारण देश विदेशी कर्ज के गर्त में डूब गया है। इसके बावजूद देश के विकास की जो तसवीर उभरकर सामने आई है, कितनी निराशाजनक है, यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

देश के असंख्य देशभक्तों ने स्वाधीन भारत का जो सपना संजोकर हंसते-हंसते अपने प्राण न्योछावर किए, आज क्या वह सपना साकार होता दिखाई पड़ रहा है? सरकारी आंकड़े बताते हैं कि देश की आधी आबादी गरीबी की सीमा रेखा के भी नीचे जीवनयापन करते हुए दो जून की रोटी के लिए तरस रही है। अशिक्षा का कलंक हम अभी तक ढोने के लिए मजबूर हैं। धार्मिकता और नैतिकता के लिए संपूर्ण जगत् में प्रतिष्ठा प्राप्त भारत आज भ्रष्टाचार का केंद्र बन गया है। क्या यह सब दृश्य उन सपनों को साकार करता है? यदि नहीं, तो खुले दिल से हमें स्वीकार करना चाहिए कि सरकार कोई भी हो, वह जनजीवन में अपेक्षित परिवर्तन नहीं ला सकती, सामाजिक पुनर्रचना की बात तो बहुत दूर रही।

इसी शताब्दी में रूस जैसे देश में बलशाली साम्यवादी सत्ता स्थापित हुई और उसने 70 वर्ष तक एकाधिकार प्राप्त करके राज्य किया। परंतु संपूर्ण विश्व ने यह देखा कि वे जो सामाजिक क्रांति लाना चाहते थे या समाज परिवर्तन की जो उन्होंने अपेक्षा की थी, वह कहीं भी पूर्ण नहीं हुई। गरीबी और अमीरी का भेद नहीं मिटा। किसान मजदूरों के नाम पर सत्ता संभालनेवाले कितने ही कम्युनिस्ट शासकों के पास व्यक्तिगत रूप में राजा-नवाबों से भी ज्यादा संपत्ति दिखाई दी। स्पष्ट है कि विश्व में कहीं भी सत्ता के द्वारा समाज परिवर्तन नहीं हुआ करता। यह एक विडंबना ही है कि लोकशक्ति को सर्वाधिक महत्त्व देनेवाले भारत में 50 वर्षों में प्रायः सभी राजनीतिक पार्टियों के द्वारा यह भ्रमजाल फैलाया गया कि सभी सामाजिक समस्याओं का हल सरकार ही कर सकती है। नई सामाजिक व्यवस्था भी

मंथन, अक्टूबर-दिसंबर 1996

विराट् पुरुष

सत्ता ही निर्माण कर सकती है। आम जनता की उसमें कोई विशेष भूमिका नहीं है। उसे मात्र वोट देकर अपना शासक चुन देना है।

भ्रमजाल टूटा

अब 50 वर्ष बीत जाने के बाद यह भ्रमजाल टूट रहा है। यह एक अच्छी बात है। आम जनता यह समझने लगी है कि सत्ता के द्वारा अपेक्षित परिवर्तन कभी संभव नहीं होगा। फिर यह परिवर्तन करेगा कौन? इसका सीधा और स्पष्ट उत्तर एक ही है कि यह काम जनता को स्वयं करना पड़ेगा अर्थात् गैर-सरकारी स्वयंसेवी संस्थाओं, संगठनों या व्यक्तियों द्वारा ही यह संभव हो सकता है। किसी एक महापुरुष की यह सूक्ति अक्षरशः सत्य है कि “जो काम अ-सरकारी स्तर पर होगा, वही असरकारी होगा।”

वास्तव में भगवान् ने जिस प्रकार मानव जीवन की रचना की है, उसी प्रकार समाज जीवन की भी रचना होनी चाहिए। मानव शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय है। शरीर के बिना आत्मा स्वयं को अभिव्यक्त नहीं कर सकती और आत्मा के बिना शरीर का कोई अस्तित्व नहीं। दोनों एक तरह से परस्पर पूरक दिखाई पड़ते हैं, किंतु दोनों की प्रकृति एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न है। शरीर उपभोग चाहता है—अधिक-से-अधिक साधनों का उपभोग! उसी में वह सुख अनुभव करता है। देश की आधी आबादी भूखी-नंगी क्यों न रहे, पर शरीर का सुख अनुभव करनेवाले लोग अपने सुखोपभोग के लिए लाखों-करोड़ों रुपए पानी की तरह बहाने में संकोच नहीं करते।

आत्मा की प्रकृति इससे भिन्न है। आत्मा दूसरों को सुखी देखकर संतुष्ट होती है। स्वयं बिना खाए अपनी थाली किसी भूखे को खिलाने में आत्मा को सात्त्विक आनंद आता है। दूसरों को सुखी देखने के लिए वह सबकुछ दे देना चाहती है। अपने पुराणों में शिवि और दधीचि के उदाहरण तो हैं ही, पर आज भी लाखों सेवाभावी लोग अपने भौतिक सुख-सुविधाओं की चिंता छोड़कर अहर्निश समाज की सेवा में संलग्न दिखाई पड़ते हैं। स्वामी विवेकानंद, दयानंद, महर्षि अरविंद, महात्मा गांधी, डॉ. हेडगेवार, विनोबा भावे, श्रीगुरुजी, दीनदयालजी इत्यादि सभी महानुभावों ने मानव सेवा को ही भगवान् की सेवा बताया है। बताया ही नहीं, वे स्वयं उसी रूप में जिए भी।

सत्ताधारियों की मनोवृत्ति

हम सामाजिक स्तर पर यदि शरीर और आत्मा की इन स्थितियों पर विचार करें तो हमें दिखाई देगा कि सत्ता या सरकारें शरीर रूप हैं और सेवाभावी लोग या स्वयंसेवी आत्मा रूप हैं। सत्ताधारी लोग भले ही जनसेवा का नारा लगाकर सत्ताधिष्ठित होते हैं, पर सत्ता की मूल प्रकृति से वे स्वयं को अलग नहीं कर पाते। सत्ता सबकुछ अपने हाथ में ले लेना चाहती है। सत्ताधारी, चाहे वे किन्हीं भी विचारों का प्रतिनिधित्व करते हों, उनकी जीवनशैली एक उपभोक्ता की तरह होती है। विधायक, सांसद, मंत्री या प्रधानमंत्री बनते ही एक साधारण सा नागरिक भी लाखों रुपए केवल अपने निवास की साज-सज्जा पर खर्च कर देता है। उसके ऐश-आराम पर खर्च होनेवाले धन का कोई हिसाब नहीं है। उसमें अस्वाभाविक कुछ भी नहीं है। मानव शरीर में मन और बुद्धि भौतिक सुख के अधिकाधिक साधन

जुटाने में तत्पर रहती हैं, किंतु यही मन और बुद्धि यदि आत्मा के वशीभूत रहें तो वे सदा सर्वदा शरीर पर अंकुश रखते हुए संवेदना से परिपूर्ण होकर मानव ही नहीं, प्राणी मात्र के सुख की चिंता में संलग्न हो जाती हैं। सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं की प्रकृति में यही मूल अंतर है।

लोकशक्ति का अंकुश

यह बात समझने में कठिन नहीं होनी चाहिए कि जिस सत्ता पर समाज का अंकुश न रहे, वह शोषण की ओर अग्रसर होती है, पर दूसरी ओर यदि स्वप्रेरणा से, जनसेवा की भावना से अनुप्राणित होकर स्वयंसेवी संगठन जनता के बीच उनकी सेवा के लिए तत्पर होते हैं तो न केवल उनके प्रयास असरकारी होंगे, बल्कि ऐसे स्वयंसेवी प्रयासों की सम्मिलित शक्ति शासकीय एकाधिकार पर भी प्रभावी अंकुश लगा सकती है।

प्रत्यक्ष रूप में अपने ही देश में यह देखने को मिलता है कि देश भर में चलनेवाले हजारों स्वयंसेवी प्रयास बहुत सफल सिद्ध हो रहे हैं। कारण, वे जनप्रेरणा और जन सहकार्य पर आधारित होते हैं। सरकारी तंत्र जनप्रेरणा और सहकार्य प्राप्त करने में विफल रहता है। इसी कारण इतने वर्षों के कटु अनुभवों के बाद सरकार भी अब इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि स्वयंसेवी संगठनों के सहयोग के बिना शासन की कोई भी योजना कारगर नहीं हो सकती, इसलिए पंचवर्षीय योजनाओं में पिछले वर्षों की तुलना में योजना की अधिक धनराशि स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से खर्च करने की बातें की जा रही हैं।

एक निष्काम सेवक

सत्ताधारियों के विचार में यह परिवर्तन स्वागत योग्य है, किंतु स्वयंसेवी संस्थाओं की जिम्मेदारी इससे और भी बढ़ जाती है। जनप्रेरणा की जितनी बड़ी अपेक्षा स्वयंसेवी प्रयासों से की जा रही है, वया स्वयंसेवी संगठन या संस्थाएं अपने आपको उस योग्य सिद्ध कर सकेंगी। संस्थाओं की रीढ़ है कार्यकर्ता। कार्यकर्ता एक निष्काम सेवक होता है। समाज से कुछ भी पाने की अपेक्षा नहीं करता। जो कुछ भी भगवान् ने और समाज ने दिया है, उस जीवन सर्वस्व को समाज के सुख-समृद्धि के लिए समर्पित करनेवाला ही सही अर्थों में सामाजिक कार्यकर्ता कहलाने का अधिकारी है।

जिस स्वयंसेवी संगठन में इस तरह के निष्काम सेवाव्रतियों की जितनी बड़ी संख्या होगी, वह संगठन जनाकांक्षाओं की कसौटी पर उतना ही खरा उतरेगा। ऐसे निस्स्वार्थ कार्यकर्ता ही जनता-जनार्दन का विश्वास अर्जित कर सकते हैं और इसी विश्वास की शक्ति के बूते पर वे लोगों में अर्थात् समाज में अपेक्षित परिवर्तन लाने में समर्थ हो सकते हैं। स्वयंसेवी संगठनों को अपनी इस ऐतिहासिक जिम्मेदारी को निभाने के लिए कमर कसनी होगी। 21वीं शताब्दी की दहलीज पर खड़े भारत को यदि निकट भविष्य में विश्व के अग्रणी राष्ट्र के रूप में प्रतिष्ठित करना है तो यह दायित्व स्वयंसेवी संगठनों या व्यक्तियों को ही स्वीकार करना होगा। 20वीं सदी का यह स्पष्ट संकेत है और 21वीं शताब्दी की यह चुनौती।

□

वैकल्पिक जीवन-रचना मानवीय मूल्यों के आधार पर तय हों

मानव जीवन की सार्थकता न भौतिक समृद्धि में है, न राजसत्ता में। वह है मानवीयतापूर्ण जीवन जीने में। वस्तुतः मानवीयता ही धर्म है। मानवीयता विहीन कर्मकांडों को धर्म मानना अपने आपको धोखा देना है। मानवीयता विहीन शासन या शासक न समाज का भला किया करते हैं, न स्वयं का। अमानवीय शासन चाहे जितना प्रबल हो, अधिक काल टिका नहीं करता। मानवीयता शून्य व्यवस्थाएं भी इने-गिने सरगनाओं को आम लोगों का शोषण करने के लिए प्रेरित करती हैं। इसी कारण वे अल्पजीवी होती हैं। यह ऐतिहासिक तथ्य है।

यूरोप में अमानवीय अर्थ-तंत्र एवं निरंकुश राज-तंत्र में सांढगांठ हुई थी। परिणामस्वरूप कम्युनिज्म के नाम से वर्ग संघर्ष का बीज अंकुरित हुआ। उसकी परिणति सन् 1917 की कम्युनिस्ट क्रांति के रूप में रूस में हुई थी। इस प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया का आधार अमानवीयता ही था। उसी आधार पर सर्वहारा के नाम से तानाशाही का ढांचा खड़ा किया गया था।

प्रतिक्रियात्मक प्रक्रिया की आवेशपूर्ण गति बहुत तेज हुआ करती है, अतः साम्यवाद के नाम पर वर्ग संघर्ष की आंधी चारों ओर फैलने लगी। कुछ काल तो ऐसा बीता, जिसमें लगा कि संपूर्ण विश्व कम्युनिज्म के रंग में रँग जाएगा, किंतु अमानवीय एवं प्रतिक्रियावादी शक्ति की नींव कमजोर होती है। परिणामस्वरूप अपनी ही जन्मभूमि रूस में कम्युनिस्ट शासन का ढांचा अपने आप लड़खड़ाकर ढह गया। संसार में उभरी वर्ग संघर्ष की महान् शक्ति स्वयं ही तिरोहित हो गई।

अमानवीय पूंजीवाद

अब दुनिया भर में पूंजीवाद ही एकमेव शक्ति के रूप में उभरा है। नव स्वतंत्र देश उदारवाद एवं विकास को एकमेव मार्ग के रूप में अपना रहे हैं। वर्तमान काल में अमरीका पूंजीवाद का सबसे बड़ा नेता बना है। सच्चे अर्थ में नेता उसे ही माना जाना चाहिए, जो सबका पालन करे, अपने स्वार्थ को प्राथमिकता न दे, किंतु पूंजीवाद की प्रवृत्ति इसके विपरीत है। अमरीका की आबादी दुनिया की आबादी के पांच प्रतिशत से भी कम है, किंतु दुनिया भर की उपभोग सामग्री में से 43

समाजशास्त्री

प्रतिशत से अधिक का उपभोग अकेला अमरीका कर रहा है। इस कारण विश्व में अनेक देश अभावग्रस्त होते जा रहे हैं, इसकी अमरीका को परवाह नहीं है। यह है पूंजीवाद या पूंजीवादियों का चरित्र। अधिकाधिक धन बटोरने की लालसा पूंजीवाद का स्वभाव है। चाहे व्यक्ति हो, कंपनी के मालिक हों या शासनकर्ता ही क्यों न हों, अगर वे पूंजीवादी हैं, तो हर तरीका अपनाकर स्वयं के सुखोपभोग में लगे रहते हैं। वहां मानवीयता की तनिक भी गुंजाइश नहीं रहती।

इस दृष्टि से ब्राजील के रियो डी जेनेरियो में हुए पृथ्वी सम्मेलन की घटना आंखें खोलनेवाली है। वहां विश्व के डेढ़ सौ से अधिक देशों ने मिलकर अनुभव किया था कि ओजोन परत के क्षतिग्रस्त हो जाने से बढ़ रहे तापमान को रोकने के लिए पर्यावरणीय प्रदूषण को कम करना जरूरी है, अतः सर्वाधिक प्रदूषण फैलानेवाले अमरीका से सबने मिलकर अपील की थी कि वह अपना प्रदूषण कम-से-कम बीस प्रतिशत कम करे, किंतु मानवमात्र के लिए विनाशकारी सिद्ध होनेवाली प्रदूषण की विभीषिका को घटाने के लिए अमरीका राजी नहीं हुआ। अपना उपभोग केंद्रित जीवन-स्तर ऊंचा बनाए रखने के लिए मानवमात्र को खतरे में डालने की पूंजीवादी प्रवृत्ति कितनी निर्दयी होती है, यह देखने को मिली। अमरीका में अपने द्वारा हो रहे प्रदूषण में 5 प्रतिशत से अधिक कटौती करना स्वीकार नहीं किया।

यह है पूंजीवादी प्रवृत्ति। पूंजीवादियों की आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण आम लोग बरबाद होते हैं। जीवन के आधारभूत तत्त्व अर्थात् प्राकृतिक संसाधन ध्वस्त किए जाते हैं। इस विनाशकारी पूंजीवाद का विकल्प खोजने के स्थान पर यूरोप के विकसित कहे जानेवाले 11 देशों ने अमरीकी डॉलर को नव प्रचलित मुद्रा 'यूरो' द्वारा चुनौती देकर पूंजीवादी प्रतिस्पर्धा को ही बल पहुंचाया है। इसके दुष्परिणाम मानव मात्र को भुगतने पड़ेंगे।

अमानवीय तकनीकी

विज्ञान के नित नए आविष्कार हो रहे हैं। इन आविष्कारों द्वारा उपलब्ध तकनीकी का लाभ जनसाधारण के हित के लिए नहीं, पूंजीवादी अपनी सत्ता व ऐश्वर्य की भूख मिटाने के लिए कर रहे हैं। जैव-प्रौद्योगिकी (Bio-Technology) के आविष्कारों का युग चल पड़ा है। उसी में से एक नई तकनीकी उभरी है। उसका नाम है 'टर्मिनेटर तकनीकी'। 'बीज-पौधा-बीज' यह प्राकृतिक चक्र है। तदनुसार किसान अपनी फसल में से ही अगली फसल के लिए बीज बचाकर रखता रहा है। इस प्रक्रिया में भी उन्नत बीज बनाने के प्रयास हो रहे हैं। अनंत काल से बिना किसी प्रकार की हानि के यह परंपरा चलती चली आ रही है। पूंजीवादी तरकीब ने इस प्राकृतिक प्रक्रिया को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए बदलकर टर्मिनेटर प्रक्रिया को प्रचलित किया है। किसानों को अच्छी फसल का लालच देकर उनकी आत्मनिर्भरता समाप्त की जा रही है। उनका लगातार शोषण करने का रास्ता अपनाया गया है। फलस्वरूप किसानों को हर फसल के लिए नया बीज खरीदना पड़ रहा है। कारण, टर्मिनेटर तकनीकी से प्राप्त बीज से केवल एक ही फसल ली जा सकती है। तकनीकी प्रगति

विराट पुरुष

के नाम पर किसानों का स्वावलंबन समाप्त कर उन्हें बीज के लिए अनाप-शनाप खर्च करने के लिए मजबूर किया जा रहा है।

वैकल्पिक जीवन रचना

मानव मात्र की आजीविका के दो ही साधन हैं—कृषि एवं उद्योग। इन्हीं दो साधनों के सहारे मानव अपना स्वावलंबन अर्जित कर सकता है एवं स्वाभिमानपूर्ण जीवन बिता सकता है, किंतु पूंजीवादी इन दोनों साधनों पर एकाधिकार कर शेष नागरिकों को स्वरोजगार से वंचित करते जा रहे हैं।

दुर्भाग्य से प्रगति के नाम पर स्वचालित यांत्रिकीकरण द्वारा अधिकाधिक लोगों को स्वावलंबनपूर्ण आजीविका से वंचित किया जा रहा है। बेकारी एवं भुखमरी सर्वव्यापी बन रही है। अमरीका, जर्मनी, ब्रिटेन, जापान जैसे अति विकसित देश भी इस विभीषिका से अछूते नहीं हैं। परिणामस्वरूप समाज में विषमता, अशांति, अराजकता, अनाचार, भ्रष्टाचार एवं खून-खराबा लगातार बढ़ रहे हैं। यह दिशा मानवीय नहीं, अनर्थकारी है। यह व्यवस्था मानव मात्र के लिए विनाशकारी होने के कारण अंततोगत्वा कम्युनिज्म के समान अपने आप लड़खड़ाकर ढह जानेवाली है, अतः अभी से मानवीयता के आधार पर जनजीवन की ऐसी रचना खड़ी करना आवश्यक है, जिसमें हर सक्षम महिला-पुरुष आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी एवं उत्पादक बन सके। हरेक व्यक्ति उपभोक्ता होता है, अतः उत्पादक हाथों का घटते जाना और उपभोग करनेवाले मुंह बढ़ते रहना आर्थिक विषमता की जड़ है। ऐसी दोषपूर्ण पद्धति को प्रगतिशील मानना आत्मघाती है। इस प्रकार की आर्थिक रचना लोकतांत्रिक नहीं हो सकती। आवश्यकता है, समय रहते मानवीयतापूर्ण वैकल्पिक जीवन-रचना का अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करने की।

मानवीय बने बिना मानव अपने जीवन में न स्थायी सुख पाता है, न संतोष। वस्तुतः मानवीय होने में ही व्यक्तिगत जीवन की सार्थकता तथा जनजीवन की सफलता निहित है। मानव में मानवीयता की भावना का विकास कौटुंबिक वातावरण में ही संभव है, किंतु मानव के मानवीय बन पाने की प्रक्रिया एकांगी नहीं होती। इस प्रक्रिया में कुटुंब के साथ आबादी के निवासियों की मानसिकता का भी सहायक होना आवश्यक है।

मानव न कभी अकेला रहा है, न रहेगा। सामूहिकता उसकी आवश्यकता है। इसी कारण वह प्रारंभ से ही समाज के रूप में रहता आया है। समाज के घटक कुटुंब में जन्म पाते हैं, किंतु उन्हें अपना जीवन समाज में व्यतीत करना पड़ता है। कुटुंब का गठन होता है विवाह विधि द्वारा।

विवाह कुटुंब के शुभारंभ का मंगलमय प्रसंग है। इसी घड़ी में अलग-अलग कुटुंबों में जन्म पाए तथा भिन्न-भिन्न वातावरण में पले और बढ़े युवक-युवतियों का मिलन होता है। इसी से स्पष्ट है कि कुटुंब का गठन भी सामाजिक प्रक्रिया के ही माध्यम से होता है। इसे केवल दैहिक मिलन मानने की अपनी परंपरा नहीं है। यह दो व्यक्तियों के एकात्म होने का, परस्पर पूरकता को चरितार्थ करने का, अहं को एक-दूसरे में विलीन कर समष्टि की दिशा में बढ़ने का तथा

समाजशास्त्री

मानवीयता की परंपरा चलाए रखने के संकल्प का सामाजिक संस्कार है, किंतु यह अनुभवसिद्ध अवधारणा काल के गाल में समा गई है। अब तो विवाह ने उपभोगवादी दिशा अपनाई है। ऐसी स्थिति में नूतन संसार पर कौन से संस्कार होंगे?

विवाह ने आर्थिक लेन-देन का भी मार्ग अपनाया है। फलस्वरूप तथाकथित प्रगतिशील युग में विवाहित युवतियों को दानवीय दहेज का शिकार होना पड़ रहा है। प्रेम-विवाह शारीरिक आकर्षण के फलस्वरूप हो रहे हैं। इसी कारण आधुनिक काल के विवाह-बंधन की खुशी आजीवन नहीं टिक पाती। इन सब बातों के फलस्वरूप कौटुंबिक जीवन सुसंस्कार-क्षमता खो बैठा है। जन्म पानेवाले नूतन नागरिक दिशाहीन होकर सामाजिक जीवन को अस्त-व्यस्त बना रहे हैं। वस्तुतः व्यक्ति, कुटुंब और समाज मिलकर एक विशाल इकाई बनती है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा का यही संकेत है। उपर्युक्त तीनों अंगों का अलग-अलग अस्तित्व मानना न तर्क-संगत है, न व्यावहारिक। इस तथ्य की अवहेलना के कारण ही सब प्रकार की समस्याएं मानव मात्र का जीवन दूभर बना रही हैं।

व्यक्ति के बिना समाज तथा समाज के बिना व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना करने का अर्थ है वस्तुस्थिति को नकारना। कुटुंब इन दोनों को जोड़नेवाली कड़ी है। प्रचलित जनजीवन में व्यक्तिगत, कौटुंबिक एवं सामाजिक जीवन में सामंजस्य का अभाव बढ़ता ही जा रहा है। इसका मूल कारण है कौटुंबिक जीवन की मूलभूत अवधारणा की विस्मृति।

कुटुंबों में ही समाज के घटक जन्म पाते हैं। इन नवजात नागरिकों को क्रमशः समाज के साथ जोड़ने का दायित्व माता-पिता का एवं कुटुंब के वरिष्ठ सदस्यों का है। कुटुंब के वरिष्ठ सदस्य आबादी के नागरिकों के साथ बिना किसी भेदभाव के आत्मीयतापूर्ण आचरण करते रहें तो कुटुंब में जन्म पानेवाली संतान अपने आप समाज के साथ एकात्मता अनुभव करने लगेगी। इस जीवनादर्श को आबादियों के सभी कुटुंबों में प्रचलित करना नितांत आवश्यक है। इसके बिना 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' का परंपरागत आदर्श कभी भी साकार नहीं होगा।

दिशाहीनता

आजकल 'मॉडर्न कल्चर' का बोलबाला है। माता और पिता दोनों धनार्जन में संलग्न होने लगे हैं। अधिकाधिक धन कमाना ही जीवन का लक्ष्य बन गया है। उन्हें अपनी संतान का विकास करने के लिए न समय मिलता है, न वे उसकी आवश्यकता ही अनुभव करते हैं। बाजारों से जैसे आवश्यक वस्तुएं खरीदी जाती हैं, उसी प्रकार अपने बच्चों का विकास भी अधिकाधिक धन खर्च कर खरीदा जा रहा है। फलस्वरूप कुटुंब अपनी संतान को समाज के साथ जोड़ने का दायित्व नहीं निभाते। इसी कारण व्यक्ति समाज में रहते हुए भी अपने को अकेला अनुभव करने लगा है। वस्तुतः समाज का या सामाजिक जीवन का अस्तित्व नाम मात्र के लिए बचा है। समाज दिखाई अवश्य देता है, किंतु उसमें सामाजिक जीवन नदारद है। इसी कारण शासन से या सामाजिक संस्थाओं से राष्ट्रोन्नति की अपेक्षा फलीभूत नहीं हो पा रही है।

विराट् पुरुष

आधुनिक काल में मानव जीवन का लक्ष्य केवल भोगमय जीवन बिताना मात्र रह गया है। विद्यालय ज्ञानार्जन के लिए नहीं, धनार्जन की तरकीब सीखने के केंद्र माने जा रहे हैं। उपाधियां मानवीयता की द्योतक नहीं, नौकरी पाने के लिए प्रमाण-पत्र बनी हैं। फलस्वरूप मानवीयता का विकास न कुटुंब में हो रहा है, न विद्यालयों में। समाज में प्रतिष्ठा मानवीयता की नहीं, धन-दौलत की है। मानव को समाज के अंग के रूप में जीना है, सभ्य एवं सुसंस्कृत होना है, शांति एवं सुव्यवस्था बनाए रखनेवाला शासन पाना है, नैतिकतापूर्ण एवं उदात्त जीवन बिताना है तो कौटुंबिक संस्था को मानवीयता का प्रेरणास्रोत बनाना ही होगा।

नूतन संतान का विकास

मानव में विकास की प्रक्रिया उसके गर्भ काल से ही प्रारंभ होती है। इस तथ्य की अनुभूति महाभारत काल के पूर्व ही हुई थी। वर्तमान काल में वैज्ञानिक प्रयोगों द्वारा भी इस तथ्य की पुष्टि हुई है, किंतु व्यावहारिक जीवन में तदनुसार आचरण करने की प्रेरणा प्रदान करने की व्यवस्था का कहीं भी दर्शन नहीं होता।

काल के प्रवाह में कौटुंबिक जीवन से सामाजिक दायित्वबोध की प्रथा मिट गई है। व्यक्ति और समाज में सामंजस्य बनाए रखनेवाला कुटुंब ढूढ़ने पर भी नहीं मिलता। इसी कारण व्यक्ति एवं समाज में परस्पर पूरकता का अभाव हुआ है। परिणामस्वरूप आजाद होने पर भी भारत की दशा निरंतर बिगड़ रही है। आधुनिक नेतृत्व ने राष्ट्र जीवन में कौटुंबिक संस्था की मूलभूत भूमिका को समझा ही नहीं। विचारकों की, लेखकों की, उपदेशकों की, अध्यापकों की, समाज-सेवकों की, नेताओं की तथा शासकों की संतान में भी सामाजिक दायित्व-बोध का अभाव है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और नैतिक जीवन में पतन की गति का यही कारण है। मानव की ग्रहणशीलता गर्भकाल से ही आरंभ होती है। इस तथ्य को ध्यान में रखकर जन्म पानेवाले समाज के नूतन घटकों पर सामाजिक संस्कारों का प्रबंध करना भारत का भविष्य उज्ज्वल बनाने के लिए अत्यावश्यक है।

संस्कार विधि

आबादी की हर एक गर्भवती महिला समाज के लिए नूतन घटक उपलब्ध कराती है। किसी भी प्रकार का भेदभाव किए बिना आबादियों के निवासियों को इसकी अनुभूति कराना आवश्यक है। इसका अर्थ परिवार नियोजन के अभियान का महत्त्व घटाना नहीं है। परिवार नियोजन गर्भधारणा के पूर्व की प्रक्रिया है, बाद की नहीं। गर्भवती महिला को आबादी में सम्मान मिलना समाज में समरसता का भाव विकसित करने के लिए परमावश्यक है, तभी जन्म पानेवाले बालक-बालिकाएं समाज के लिए वरदान सिद्ध होंगी। इसी से सामाजिक जीवन स्वस्थ, सुखी एवं समृद्ध होगा।

□

आत्मवत् सर्वभूतेषु ग्राम्य परंपराएं सुदृढ़ करनी होंगी

कुछ दशकों पूर्व गांव-गांव में खेलकूद, व्यायाम, कुश्ती आदि बल संवर्धन के कार्यक्रम लोकप्रिय थे। बिना अखाड़े का गांव मिलना कठिन था। प्रातःकाल गांव की बगल में स्थित अखाड़े में लंगोटधारी नौजवान कसरत करते दिखाई देते थे। विभिन्न प्रकार के खेल, दौड़ आदि की प्रतियोगिताएं त्योहारों के दिन आयोजित होती थीं। घुड़दौड़, बैलगाड़ी प्रतिस्पर्धा, भेड़ भिड़ंत, सांड भिड़ंत आदि कार्यक्रम विशेष अवसरों पर आयोजित होते थे। गांव भर के लोग दर्शक बनकर सबका उत्साह बढ़ाते थे। उस उत्साहपूर्ण जीवन का दर्शन अब दुर्लभ हो गया है। रोजी-रोटी के लिए दौड़धूप के अतिरिक्त किसी को कुछ सूझता ही नहीं। इस दुर्दशा का एक कवि ने सटीक वर्णन किया है—“भूल गए राग-रंग भूल गए छकड़ी। तीन चीज याद रहीं—नून, तेल, लकड़ी।” गांव-गांव की दुर्दशा में परिवर्तन कर पुनः उत्साहवर्धक जीवन का शुभारंभ कर साहस और पराक्रम का आनंदमय जीवन पुनर्स्थापित करना समय की आवश्यकता है।

संसार के छोटे-छोटे देश विश्व खेल प्रतियोगिताओं में स्वर्णपदक प्राप्त कर अपने-अपने देश का विश्व मंच पर गौरव बढ़ाते हैं, किंतु अपना विशाल भारत, जिसकी पराक्रम परंपरा विश्वविख्यात रही, इन प्रतियोगिताओं में सिरमौर नहीं बन पा रहा है। गांव-गांव में साहसी एवं शारीरिक करतब कर दिखानेवाले नौजवानों की कमी नहीं है। उन्हें इस दिशा में प्रेरित, प्रशिक्षित एवं प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। गांव-गांव में चौपाल पर चर्चाएं चलती हैं। इनमें ज्यादातर बातें प्रचलित राजनीतिक उठापटक को लेकर ही होती हैं। कचहरी की और मुकदमों की भी चर्चा होती है। दूसरों की बुराई ही सब बातों का केंद्रबिंदु रहती है। दूसरों पर दोषारोपण करने का लोगों का स्वभाव है। अधिकांश लोग जीवन की समस्याओं से परेशान हैं, किंतु अपने प्रयासों द्वारा इस परिस्थिति में सुखद परिवर्तन लाने का प्रयास कोई नहीं करता।

वस्तुतः यह मानसिकता गुलामी के काल में अधिक अनुभव होनी चाहिए थी, किंतु

विराट पुरुष

वास्तविकता भिन्न है। गुलामी के काल में स्वराज्य प्राप्ति के लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगानेवालों के समाचार लोगों तक पहुंच जाते थे। नौजवानों में खलबली मचती थी। बड़े-बूढ़े भी चर्चा में ऐसे लोगों की, दबे जुबान से ही क्यों न हो, सराहना करते थे। गांव-गांव में कुछ करने की उमंग प्रकट होती थी, किंतु वर्तमान काल में इस दिशा की कहीं कोई संभावना ही नहीं रही। अतः समाजशिल्पी परिवार गांव के ही पढ़े-लिखे लोगों या अध्यापक-अध्यापिकाओं के सहयोग से देश-विदेश के लोगों द्वारा आर्थिक विकास के, सामाजिक सुधार के, नैतिक उत्थान के रचनात्मक कार्यों की जानकारी गांव के लोगों को दें। उससे लोगों की चिंतन प्रक्रिया में रुचि बढ़ेगी। उन्हें लगेगा कि रचनात्मक कार्य हो रहे हैं, चाहे सीमित क्षेत्र में ही क्यों न हों, उन्हें सफलता मिल रही है। उनकी जानकारी, चित्रों सहित लोगों को दी गई तो अपने गांव में कुछ करने की लोगों को प्रेरणा मिल सकती है।

अपने ग्राम समूह के नागरिक सामान्य जानकारी की दृष्टि से अनभिज्ञ न रहें, इसका ध्यान रखना लाभदायक होगा। ग्रामीण जन समाचार जानने के बड़े इच्छुक रहते हैं, किंतु उन्हें समाचार बतानेवाला कोई नहीं मिलता। रेडियो या टेलीविजन सबके लिए उपलब्ध नहीं होता। उन पर भी सरकारी और सीमित ही समाचार मिलते हैं, अतः समाचार-पत्रों को स्वयं पढ़कर क्षेत्रीय, प्रादेशिक, राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय समाचारों की मोटी-मोटी जानकारी सबको देने की व्यवस्था करना भी समाज शिल्पियों का दायित्व है।

अपने देश के भूगोल के साथ-साथ इतिहास को जानने में भी परंपराएं सहायक सिद्ध होती हैं। इतिहास के विषय में प्रचलित धारणा को सर्वांगपूर्ण नहीं कहा जा सकता। राष्ट्र का इतिहास केवल शासन और शासकों के वर्णन तक सीमित नहीं होता। आक्रमणों तथा उनके सफल या असफल प्रतिकारों की जानकारी से भी पूर्ण नहीं होता। न स्वातंत्र्य संग्राम के वर्णनों द्वारा उसकी इतिश्री होती है। अपना देश और उसकी परंपरा बहुत प्राचीन है। सब प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में अपना समाज प्रगति करता रहा है। अनंत काल से आज तक अपनी परंपरा अखंड रूप में कैसी बनी रही, उस अखंडता का सूत्र क्या है, यह जानना भी इतिहास के माध्यम से ही संभव है। इस सत्य का मर्म ही हमें भविष्य निर्माण की दिशा का बोध करा सकता है। सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक, शैक्षणिक, साहित्यिक, कृषि संबंधी, औद्योगिक और व्यावसायिक विकास क्रम इतिहास के माध्यम से ही जानकर भविष्य निर्माण की नागरिकों में लगन एवं क्षमता विकसित हो सकती है।

‘आत्मवत् सर्वभूतेषु’ या ‘वसुधैव कुटुम्बकम्’ की अवधारणाओं का विकास-क्रम हमारी अद्वितीयता का परिचायक है। इतिहास के इस पहलू को आत्मसात् किए बिना हमारी भविष्य की नवरचना अपनी अखंड परंपरा की कड़ी के रूप में विकसित नहीं होगी। इन सब बातों से ग्रामीण अंचल के निवासियों को अवगत कराने के लिए हमें विशेष तैयारी



समाजशास्त्री

करनी होगी। उपर्युक्त सभी पहलुओं का गहन अध्ययन कर हमें सब बातों को छोटी-छोटी मनभावन कथाओं के रूप में गूँथना होगा। इन कथाओं के माध्यम से अपने सर्वांगीण जीवन का इतिहास ग्रामीण निवासियों के लिए सुगम एवं रोचक बनाया जा सकता है। भविष्य-निर्माण में यह कार्य बहुत उपयोगी सिद्ध होगा।



मर्यादा पुरुषोत्तम राम विश्व भर में वंदनीय, अनुकरणीय

खजुराहो में 10 दिसंबर, 2000 से अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव आयोजित किया गया। 16 दिसंबर की रात तक यह कार्यक्रम चला। पांच दिन अहिंदू देशों में प्रचलित रामकथा पर आधारित नृत्य नाटिकाओं के कार्यक्रम होते रहे। उन दिनों खजुराहो में रहकर मैंने उन नृत्य नाटिकाओं का अवलोकन किया।

इंडोनेशिया, थाईलैंड, सिंगापुर (चीनी नृत्य नाटिका), बर्मा (म्यांमार), कंबोडिया और रूस की नृत्य नाटिकाओं का प्रदर्शन हुआ। इंडोनेशिया मुसलिम बहुल देश है। इसके बावजूद वहां के कलाकारों में राम के व्यक्तित्व के प्रति अप्रतिम निष्ठा देखकर मैं दंग रह गया।

रूस की नृत्य नाटिका में वर्षों से लगातार राम का अभिनय करनेवाले श्री जेन्नाड़ी जेचनीकोव्ह से भी वार्तालाप करने का मुझे सुअवसर मिला। वे श्रीराम के जीवन से इतने अभिभूत दिखाई दिए, जो अपने देश के किसी रामभक्त से कम नहीं लगे। मैंने उनसे पूछा कि रूस में कम्युनिस्ट शासन है। वहां रामकथा पर आधारित नृत्य नाटिका के कार्यक्रम करने की अनुमति कैसे मिली? इस प्रश्न को सुनकर श्री जेन्नाड़ी जेचनीकोव्ह को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा, “राम जैसे अनुकरणीय मानव को कौन अस्वीकार कर सकता है? मुझे तो वहां की सरकार ने श्रीराम के अभिनय के लिए सर्वोच्च रूसी अवार्ड दिया है। जब भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू रूस आए थे, तो सरकार ने मुझे विशेष रूप से बुलाकर उनसे मिलवाया था।”

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की अहिंदू देशों में वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के युग में भी प्रतिष्ठा प्रचलित है। खजुराहो में अंतरराष्ट्रीय रामायण महोत्सव के कार्यक्रम हो रहे थे, उन्हीं दिनों राम के देश की राजधानी दिल्ली में लोकसभा व राज्यसभा में रामजन्मभूमि को लेकर लगातार एक सप्ताह से अधिक दिनों तक हंगामा होता रहा। इस हंगामे के पीछे न राम के व्यक्तित्व के प्रति निष्ठा दिखाई दे रही थी, न इसलाम के प्रति लगाव। यह केवल राजसत्ता की लालसा पूर्ति का नग्न तांडव मात्र था।

अपने देश के आम नागरिकों में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के प्रति अनंतकाल से अगाध श्रद्धा

चली आ रही है। किंतु लोकसभा या राज्यसभा में पहुंचे जन-प्रतिनिधि आम लोगों की भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं करते। जब कभी लोकसभा चुनाव होंगे, तब हम संसद में कैसे पहुंचेंगे यही एकमात्र विचार उनके मस्तिष्क में काम करता है। तदनुसार ही वे संसद में आचरण करते हैं।

अयोध्या का भ्रमण

अयोध्या में बाबरी मसजिद के नाम से जो ढांचा खड़ा था, उसमें नमाज पढ़ी जाती थी, इसकी किसी को जानकारी नहीं थी। उसके रखरखाव की भी किसी को चिंता नहीं थी। संघ प्रचारक के रूप में 1940 में मैं गोरखपुर पहुंचा था। बाद में मुझे बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर, आजमगढ़, बलिया आदि उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों का संघ कार्य संभालने का आदेश मिला। गोंडा व बस्ती जिले में और अयोध्या नगरी के बीच में केवल सरजू नदी बहती है। अतः मेरा अयोध्या आना-जाना लगा रहा।

अयोध्या में बाबरी मसजिद का ढांचा खड़ा था। वह ढांचा चहारदीवारी से घिरा था। उस चहारदीवारी के अंदर प्रवेश करते ही बाईं ओर राम का चबूतरा था। उसी पर टीन का छप्पर पड़ा था। उसी में रामलला की मूर्ति होती थी। सदियों से उस की पूजा नित्यप्रति होती आ रही थी। राम भक्तों का अखंड तांता लगा रहता था। अनेक बार मैं स्वयं रामलला के वहां ही दर्शन कर चुका हूं। चहारदीवारी के अंदर ही मसजिद की बाईं ओर राम के छठी की (जन्म के छठे दिन की) पूजा का स्थान बना हुआ था। उसी पर रामभक्त फूल चढ़ाया करते थे। सदियों से यह क्रम बिना किसी रुकावट के सामान्य रूप से चलता रहा। लेकिन मसजिद का ढांचा वीरान पड़ा रहता था।

देश को जब आजादी मिली तो उन दिनों फैजाबाद जिले के जिलाधिकारी थे श्री के.के. नायर (आई.सी.एस.)। फैजाबाद नगर से अयोध्या नगरी केवल छह-सात किलोमीटर की दूरी पर सरयू नदी के तट पर बसी है। असंख्य लोगों के श्रद्धाकेंद्र रामलला को एक चबूतरे पर बैठे देख जिलाधिकारी के.के. नायर को बहुत पीड़ा हुई। वे बुद्धिमान, अनुभवी व कुशल प्रशासक और संवेदनशील देशभक्त थे। देश विभाजन से मर्माहत हुए थे। मजहब के आधार पर फिर से कहीं देश का विभाजन न हो, इसकी उन्हें चिंता थी। साथ ही अयोध्या में रामलला की दशा भी उन्हें असह्य हो रही थी। इसी वैचारिक द्वंद्व में उन्होंने काफी दिन बिताए। बाबर के शासन काल में बनी मसजिद लावारिस पड़ी थी। उसका किसी के लिए कोई उपयोग दिखाई नहीं देता था। किंतु चबूतरे पर विराजमान रामलला जाग्रत् व लोकप्रिय श्रद्धा केंद्र बना हुआ था। नित्यप्रति रामलला का पूजन-अर्चन होता था। भजन-कीर्तन की शृंखला वहां कभी टूटी नहीं थी।

वहां एक माह का अखंड रामायण पाठ प्रारंभ हुआ। वहां के लिए यह अनहोनी बात नहीं थी। ऐसे कार्यक्रमों की वहां परंपरा थी। दूर-दूर से भजन मंडलियां आकर वहां भजन-कीर्तन करने लगीं। हजारों की संख्या में महिला-पुरुषों से रामलला का आंगन भक्तिभाव से झूम उठा।

विराट् पुरुष

श्रद्धा के केंद्र रामलला

इसी बीच एक दिन रात में 12 बजे एकाएक मसजिद में रामलला की मूर्ति प्रगट हुई। भजन-कीर्तन करनेवाले भक्तजनों के आनंद की सीमा नहीं रही। खुशी से सभी नाच उठे। झांझ एवं ढोलकों का निनाद गूंजने लगा। रामलला प्रगट होने की खबर चारों ओर फैली। हजारों दर्शनार्थी उमड़ने लगे। प्रसाद वितरण की होड़ लग गई।

इस अनपेक्षित घटना से कहीं कोई न झगड़ा हुआ न फसाद। फिर भी इस घटना का नतीजा जिलाधिकारी श्री के.के. नायर को भुगतना पड़ा। तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने आई.सी.एस. जिलाधिकारी श्री नायर को नौकरी से हटवा दिया। किंतु मंदिर बनी मसजिद से रामलला की मूर्ति हटवाने का साहस किसी को नहीं हुआ। यह थी लक्ष्यसिद्धि में काम में लाई गई श्री के.के. नायर की दूरदृष्टि और प्रशासनिक बुद्धिमत्ता। इसके बावजूद स्वर्गीय श्री के.के. नायर का नाम तक लेने वाला कोई रामभक्त आज दिखाई नहीं देता। व्यक्तिगत लाभ या नाम की परवाह किए बिना ध्येयसिद्धि के लिए बलिदान होने का आजादी के बाद का यह अनुकरणीय तथा अनोखा उदाहरण है।





सामाजिक विषयों पर चिट्ठी-पत्री लिखते

समय नानाजी की सोच का व्याप कितना

विशाल होता था, यह समझ आता है आगे के

पृष्ठों में।



विराट पुरुष

1

30 जुलाई, 1978

चि. सौ. प्रिय बेटी हंसिका,

अहमदाबाद से कई बार प्रयास करने पर भी फोन लग न सका। कल मैं प्रातः के विमान से यहां लौट आया। मेरा फोन न मिलने के कारण तुम दुःखी हुई होगी, इसकी मुझे कल्पना है, किंतु उपाय ही न रहा।

एक दिन के लिए तुम्हें बुलाना उचित नहीं था। उन लोगों ने नियम बनाया था कि इस समय जो तीनों दिनों के लिए वर्ग में आएगा, उसे ही प्रवेश मिलेगा। उनके नियम का उल्लंघन मैं अपनी बेटी के लिए कैसे कराता। उचित नहीं होता ऐसा करना और इसी कारण तुमसे मिलने की इच्छा होते हुए भी मैं चुप रहा। मुझे पूरा भरोसा है कि मेरी बेटी मेरी स्थिति को समझ सकेगी।

2

जयप्रभा ग्राम (गोंडा),
प्रिय इंदिरा बहनजी,

19 नवंबर, 1981

65वें जन्मदिवस के उपलक्ष्य में कृपया हार्दिक अभिनंदन स्वीकार करें।

युगानुकूल सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्रचना के ऐतिहासिक कार्य में सर्वसाधारण नागरिकों की सक्रियता अनिवार्य है। केवल सत्ता के माध्यम से यह अति महत्वपूर्ण कार्य संपन्न नहीं हो सकता।

चिंता का विषय है कि आजादी के गत चौत्तीस साल में सर्वसाधारण नागरिकों की धारणा बनी है कि उपर्युक्त दायित्व केवल सरकार का है। परिणामस्वरूप सामाजिक शक्ति, विशेषतः परिवर्तनकारी युवाशक्ति इस दृष्टि से निरर्थक सिद्ध हो रही है। नवनिर्माण के कार्य में इस असीम शक्ति का समुचित उपयोग करना समय की आवश्यकता है।

इस दिशा में भी आपकी गति बढ़े तथा आपके प्रयास फलदायी हों। इन शुभकामनाओं सहित।

1 अपनों के लिए तो नियम तोड़ने का प्रश्न ही नहीं। हंसिकाबेन मजियार को नानाजी पुत्री समान स्नेह करते थे।

2 सन् 1975 में श्रीमती इंदिरा गांधी की सरकार ने नानाजी को भी इमरजेंसी में जेल भेजा था, लेकिन राजनीतिक मतभेद भुलाकर उनके पुनः प्रधानमंत्री बनने के बाद इंदिराजी को जन्मदिन की बधाई देने में नानाजी को कोई संकोच नहीं हुआ। सामाजिक पुनर्रचना के कार्य को रेखांकित जो करना था।

प्रिय श्री वसंत दादा,

आपने मुख्यमंत्री पद स्वीकार किया, इससे बहुत खुशी हुई। महाराष्ट्र की वर्तमान अवस्था में इस दायित्व के लिए आपसे अधिक अच्छा चयन संभव नहीं था, कृपया मेरी हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

हम सभी जानते हैं कि समय बदलता रहता है। हाथ में लिये काम में पूर्ण सफलता पाने के लिए आवश्यक होता है कि प्रमुख व्यक्ति समय का ध्यान रखें। आप इस क्षमता के धनी हैं, अतः आप स्वीकृत दायित्व निभाने में सफल होंगे, इसकी मुझे आशा है।

मैं समझता हूँ कि हम लोगों पर नए युग का प्रारंभ करने का दायित्व है। पैंतीस वर्ष पूर्व सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्रचना का अर्थात् भारत के नवनिर्माण का दायित्व हम सब पर समान रूप से आया हुआ था। समाज की वर्तमान अवस्था बताती है कि उस दायित्व की उपेक्षा हुई है।

केवल शासन के माध्यम से ही सबकुछ किया जा सकता है। यह अव्यावहारिक धारणा ही इन दिनों में बल पकड़ती गई है। संभवतः इसी कारण राजनीतिक दांवपेंच को अत्यधिक महत्त्व मिला है। परिणामस्वरूप साधारण नागरिक तथा विशेषकर युवा-वर्ग में सामाजिक चेतना लुप्त सी हो गई है। इस आवश्यकता पूर्ति के लिए पूर्णतः शासन पर निर्भर रहने की वृत्ति पनपती गई है। परिणामस्वरूप सामाजिक एवं आर्थिक पुनर्रचना के कार्यों में साधारण लोगों के सहकार्य की गुंजाइश ही दिखाई नहीं पड़ती। इस वृत्ति में परिवर्तन किए बिना न सामाजिक पुनर्रचना संभव होगी, न कोई समस्या ही हल हो पाएगी। इसी कारण मैंने कहा है कि हमें नए युग का प्रारंभ करना होगा।

शासन यदि सबको सहयोगी बनाने की दिशा में गतिशील हो तो उपर्युक्त कार्य का श्रीगणेश हो सकता है। विधानसभा का सदस्य स्पीकर का स्थान ग्रहण करने पर किसी दल का सदस्य नहीं रहता। यह मान्यता है। इस मान्यता को व्यवहार में किस मात्रा में लाया जाता है, इस संबंध में मुझे कुछ भी कहना नहीं है, किंतु मेरा मत है कि कोई भी व्यक्ति मंत्री या मुख्यमंत्री बन जाता है तो उस प्रदेश में आम जनता का मंत्री या मुख्यमंत्री बनता है। वह अपने कार्यों में दलगत भावना से ऊपर उठकर काम न करेगा तो शासन सबका सहयोग पा नहीं सकेगा। संभवतः यही कारण है कि आजादी के पैंतीस वर्ष बीतने पर भी समाज में विषमता, गरीबी, बेकारी एवं अनैतिकता निरंतर बढ़ती जा रही है।

आप व्यावहारिक एवं कुशल व्यक्ति हैं। आप में नए युग का श्रीगणेश करने की क्षमता है।

3 महाराष्ट्र का मुख्यमंत्री पद संभालने पर बधाई के बहाने सामाजिक पुनर्रचना का आह्वान।

विराट पुरुष

आज देश में निराशा का वातावरण है। भविष्य के प्रति आम लोगों में आशंका है। ऐसे समय साहस के साथ नई दिशा एवं नए युग का सूत्रपात किया तो आपका जीवन तो सफल होगा ही, देश के लोगों में भी नई दिशा एवं नई आशा का संचार हो सकेगा।

आपसे एक और अनुरोध है। आपका स्वास्थ्य पूर्णरूप से ठीक नहीं रहता। दायित्व बहुत बड़ा और कठिन है। दोनों का संतुलित ध्यान रखने की क्षमता आपमें है। फिर भी अपने स्वास्थ्य की आप अवहेलना न करें, यह साग्रह अनुरोध है।

मैंने स्वयं को पूर्णरूप से राजनीति से अलिप्त कर लिया है। मैं न किसी दल का सदस्य हूँ, न किसी राजनीतिक गतिविधि में हूँ। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, उसकी जानकारी के लिए कुछ साहित्य भेज रहा हूँ। आशा है, उस पर आप नजर डालने की कृपा करेंगे।

4

6 जून, 1985

प्रिय सुरेखा,

तुम पूर्व नियोजित कार्यक्रम के अनुसार नागपुर पहुंच गई, खुशी हुई। नागपुर तीन-चार दिन रहा, किंतु तुमसे बातें न कर पाया। निश्चित कामों को समय से पूर्ण करना आवश्यक था। फलस्वरूप समय ही न मिला।

बिना प्रशिक्षण के ही तुम्हें काम में लगाया है। इसी विश्वास से कि तुम बुद्धि से प्रखर, आकलन में तेज व परिश्रमशील स्वभाव की हो। जो काम हाथ में लोगी, उसमें सहज सफल होगी।

संभवतः प्रथम बार ही अपने घर से दूर अनभिज्ञ क्षेत्र में रहने के लिए तुम निकल पड़ी हो। इस प्रकार कुछ युवक अवश्य निकलते हैं, किंतु युवतियां नहीं के बराबर। युवावस्था प्राप्त लड़कियों को ऐसे असुरक्षित व स्वतंत्र वातावरण में स्वाधीनता से काम में लगाने की अपने समाज में परंपरा ही नहीं है, किंतु तुम्हारे माता-पिता, बंधु व भाभी ने तुम्हें सहजता से यह सुअवसर प्रदान कर नई परंपरा का श्रीगणेश किया है। इस कारण मैं मन-ही-मन उन सबकी प्रशंसा करता हूँ। अपने खानदान में तुम प्रथम ही अभिनंदनीय उदाहरण प्रस्तुत करोगी। नए युग की नींव की रचना के लिए मुझे अपनी बहन की पौत्री मिली, इसका मुझे अभिमान है और असीम आनंद भी।

इस कार्य के लिए माता-पिता से विदा लेते समय स्वाभाविक रूप से तुम्हारा हृदय भर आया होगा। मैं भी कुछ वैसा ही अनुभव कर रहा था, नागपुर छोड़ते समय, किंतु ऐसी भावनाओं को संयमित किए बिना प्रगति संभव नहीं रहती, तुम समझ सकती हो। इसी कारण तुमने अपनी कोमल भावनाओं को रोक रखा होगा।

तुम एक नवयुवती हो। तारुण्य की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं से तुम

समाजशास्त्री

अनभिज्ञ नहीं हो सकती। सामान्य लड़कियां इन आवश्यकताओं की पूर्ति की आकांक्षाओं के सपनों में विचरण करने में आनंद अनुभव करने में दिन बिताती रहती हैं। उनकी यह आत्मकेंद्रित अवस्था उन्हें अपने अतिरिक्त अन्य किसी में रुचि लेने नहीं देती। सामाजिक दायित्व की तो कल्पना भी उन्हें नहीं छूती। तुमने सामान्य युवतियों के जीवन प्रवाह से भिन्न अभिनंदनीय, समयानुकूल, किंतु कठिन मार्ग का अवलंबन कर तरुणाई के लिए शोभादायक साहस प्रकट किया है। यह जितनी तुम्हारे लिए उतनी ही हम सबके लिए गौरव की बात है, किंतु यह नवयुग का श्रीगणेश करने की दिशा में एक कदम मात्र है। इस मार्ग की यह शुरुआत मात्र है। अब इस मार्ग पर कितनी सफलता के साथ गतिशील बनोगी, इस ओर सबकी आंखें लगी हुई होंगी—अपने आत्मियों की, प्रशंसकों की, अनुकूल व्यक्तियों की तथा प्रतिकूल भावना रखनेवालों की भी।

एक प्रकार से तुम्हारा साहस, तुम्हारा दृढ़संकल्प, तुम्हारी अध्ययनशीलता, परिश्रमशीलता, दूसरों के स्वभाव को समझने की कुशलता, उन्हें अपने अनुकूल बनाने की क्षमता, दूसरों के गुणों का आकलन कर उनका अपने काम में उपयोग करने की बुद्धिमत्ता व अपनी वाणी व व्यवहार को अनुकरणीय बनाने की योग्यता को कसौटी पर चढ़ा दिया है तुमने। अब हर कदम पर सफलता अर्जित कर सबको आश्चर्यचकित कर डालना ही एकमेव काम है तुम्हारा। इसी में समाधान व आनंद मानना ही एकमेव ध्येय है तुम्हारा। उसी में एकाग्र होकर अपनी कल्पना बढ़ाते जाना—मनन शक्ति में वृद्धि करना—काम करते समय मस्तिष्क में उठनेवाले नवीन विचारों को अपनी नोट-बुक में अंकित करते जाना। समझने में कठिन बातों को निःसंकोच रूप से पत्र द्वारा मुझे सूचित कर मेरी सलाह लेना—यही होगा कदम-कदम पर सफलता पाने का सहज एवं सरल मार्ग।

अभी एक सीमित क्षेत्र दिया है तुमको। काम भी केवल दो। एक युवक-युवतियों के कॉलेज में पढ़नेवालों का प्रश्नावली के अनुसार सर्वेक्षण तथा दूसरा चौदह वर्ष या उससे कम आयु की लड़कियों व लड़कों से 25 पैसा लेकर 'मेरी बचत' योजना के सदस्य बनाने का।

ये दोनों काम तुम्हें अनेक प्रकार के उपयोगी अनुभव प्रदान करेंगे। यह काम करते समय अपने अनुभव एवं विचारों को रोज रात में सोने से पूर्व या प्रातःकाल बहुत पहले जगकर लिखते रहना। यह तुम्हें अपना व्यक्तित्व विकसित करने में बहुत सहायक रहेगा। मैं तुममें मदर टेरेसा की प्रतिमा देखना चाह रहा हूँ। तभी इस मार्ग पर कदम बढ़ाने का अर्थ है। इसी में जीवन सार्थक होगा व अपने कुल की कीर्ति बढ़ेगी। मुझे विश्वास है, मेरी सुरेखा बड़ी गति के साथ इस मार्ग पर बढ़ती जाएगी।

4 समाज कार्य के लिए समर्पित एक नातिन का उत्साहवर्धन करता मार्ग-निर्देशक पत्र।

विराट पुरुष

5

24 जून, 1985

प्रिय सुरेखा,

मेरा पत्र पहुंचने के पूर्व लिखा हुआ तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें काम में आनंद आ रहा है, यह जानकर खुशी हुई। धीरे-धीरे यह आनंद भी बढ़ेगा और समाधान भी अधिक मिलेगा।

मैं दिनांक 3 जुलाई की सायंकाल नागपुर पहुंचूंगा। 4 जुलाई की सायंकाल से संघ की बैठक है। 8 जुलाई की रात्रि में मैं दिल्ली वापस आऊंगा।

जयप्रभा ग्राम में भक्तिधाम मंदिर निर्माण का कार्य 11 जून मंगलवार को प्रारंभ कर दिया है। सभी लोग बड़े मन से मंदिर निर्माण कार्य में जुट गए हैं।

अपने स्वास्थ्य का अवश्य ध्यान रखना। सामाजिक कार्य करनेवाले को बीमार नहीं पड़ना चाहिए, अतः ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिए तथा ऐसा कोई पदार्थ नहीं खाना चाहिए, जो स्वास्थ्य के लिए लाभकर नहीं है, चाहे वह जितना रुचिकर हो। जो भी भोजन किया जाता है, वह इतना ही करना चाहिए कि भारीपन अनुभव न हो। इन बातों का ध्यान रखा गया तो बीमारी कभी छू नहीं सकती। साथ में रोज प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व कुछ योगासन अवश्य करने चाहिए। इससे स्वास्थ्य तो अच्छा रहता ही है, आलस्य भी हमेशा के लिए अपने से दूर रहता है।

सामाजिक कार्य करते हुए जिनके घर रहोगी, उनके घर का कुछ-न-कुछ कार्य स्वयं ही करना चाहिए। लोग चाहे अपने हों या पराए, अपने कार्य, व्यवहार व स्वभाव से प्यार करते हैं। यह बात हमेशा ध्यान में रखनी चाहिए।

मैं ये सब बातें उपदेश के नाते नहीं लिखता। मेरी सुरेखा सबके लिए अतिप्रिय बने, उसे सबका सहयोग मिलता रहे, इसी हेतु से जो भी मन में आता है, तुम्हें मैं लिख रहा हूँ। मानव का कर्तृत्व आराम करने से नहीं बढ़ता, यह तो तुम भी स्वयं जानती हो।

6

31 जुलाई, 1985

प्रिय बेटी सुरेखा,

इस समय मैं नागपुर में चार दिन रहा, किंतु तुमसे विशेष बातचीत नहीं हो पाई। बैठकों में ही जितनी चर्चा हुई, उसी पर संतोष करना पड़ा। उन दिनों में मेरे पास लिखने का इतना काम था कि उसे मुझे दिल्ली आने से पूर्व पूर्ण करना अनिवार्य था।

तुम्हारे लिए लूना ली गई है, यह जानकर खुशी हुई। एक जगह से दूसरी जगह पहुंचने में

5 नातिन व कार्यकर्ता सुरेखा की चिंता करता पत्र।

समाजशास्त्री

तुम्हारा समय व्यर्थ खर्च नहीं होगा। इस कारण काम अधिक हो सकेगा, किंतु एक बात का ध्यान रखना, लूना के कारण एक्सीडेंट हो सकता है। बरसात के दिन हैं। सड़क पर फिसलन हो सकती है। नागपुर की सड़कें काफी खराब हैं। जगह-जगह गड्ढे हैं। कुछ-कुछ जगहों पर विभिन्न प्रकार के साधनों की भीड़ में सावधानी न बरती गई तो टकराने की भी संभावना हो सकती है। इन सब चीजों से बचने के लिए तुम्हें विशेष सावधानी बरतनी होगी। जहां कहीं चलाते समय लूना संभालने में कठिनाई अनुभव हो, लूना से उतरकर चलना श्रेयस्कर होगा। कहीं एक्सीडेंट हुआ तो लूना के कारण प्राप्त होनेवाली सुविधाएं बहुत महंगी पड़ जाएंगी। मेरा विश्वास है, मेरी सुरेखा इन सब बातों का विशेष ध्यान रखेगी।

तुमने 'गांधी तत्त्वज्ञान' का अध्ययन प्रारंभ किया है। तुम्हारे इस कार्य में बहुत बड़े-बड़े लोग सम्मिलित हैं। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम आयु में छोटी होने के कारण प्रतिस्पर्धा में उनसे पीछे रहोगी। वे लोग तो 'गांधी तत्त्वज्ञान' शौक के लिए पढ़ रहे हैं। तुम्हारा पढ़ना शौक के लिए नहीं है। तुम्हें तो गांधी तत्त्वज्ञान के महत्वपूर्ण एवं व्यावहारिक पहलुओं को समाज के दैनंदिन जीवन में उतारने के प्रयोग करने हैं। इस कारण तुम तो एक-एक विचार की गहराई में जाकर उसे समझने का प्रयास करोगी। इस कारण तुम्हारे साथ पढ़नेवालों में से कोई भी व्यक्ति तुमसे बाजी न मार सकेगा, ऐसा मैं समझता हूं।

7

04 अगस्त, 1985

प्रिय बेटी सुरेखा,

मेरा पत्र तथा तुम्हारे लिखने के लिए कागज एवं बहुत अच्छी एक फाइल प्रिय ताई के साथ भेजे हैं, मिले होंगे। इस पत्र में मैं तुम्हें अपने काम के बारे में कुछ सुझाव लिखने जा रहा हूं। यह जरूरी नहीं कि तुम आंख मूंदकर मेरे लिखे सुझावों के अनुसार काम करो। मैं सुझाव इसलिए लिख भी नहीं रहा हूं। प्रत्यक्ष कार्य क्षेत्र में काम करते समय क्या काम करना है, वह किस ढंग से करना है, इस संबंध में तुम जो कुछ सोचोगी और करोगी, उसे अधिक बल मिले तथा तुम्हारा आत्मविश्वास निरंतर बढ़ता रहे, इसीलिए यह सुझाव लिख रहा हूं। इन सुझावों के कारण तुम्हारी अपनी कल्पनाशक्ति भी बढ़ सकती है। वैसे तो तुम्हारा अध्ययन ही तुम्हारे लिए सर्वाधिक सहायक बनेगा।

शिवाजी नगर में गंदी बस्ती का जो क्षेत्र काम के लिए चुना गया है, वह तुम्हारे काम का क्षेत्र है। उस क्षेत्र में एक-दूसरे से सटे हुए 50-60 परिवार तुम अपने लिए चुन लो और अपनी संपूर्ण शक्ति इन्हीं परिवारों के विकास के लिए केंद्रित करो। यही एक प्रयास तुम्हारे व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का अपना विद्यालय होगा। संभवतः तुमने एकलव्य की कथा अवश्य सुनी होगी। यदि

6 सामाजिक कार्य से जुड़ी कार्यकर्ता को गांधी तत्त्वज्ञान को व्यवहार में उतारने का संदेश।

विराट पुरुष

इस कथा का पूर्णरूप से ज्ञान न हो तो इसे खोजकर पढ़ लेना। संभव है, प्रिय रवि इस कथा को ठीक से जानता होगा। हर सप्ताह समय निकालकर प्रिय रवि से एकाध घंटा मिलकर उनसे अपने काम के बारे में चर्चा करती रहना। एकलव्य के लिए द्रोणाचार्य से धनुर्विद्या का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेना संभव नहीं हुआ, किंतु वह निराश नहीं हुआ। अपनी लगन और निष्ठा के बल पर द्रोणाचार्य को गुरु के स्थान पर मानकर धनुर्विद्या में अन्य से अधिक योग्यता प्राप्त कर ली थी। इस काम के बारे में भी तुम्हें सिखानेवाला कोई नहीं है। तुम्हें स्वयं ही अपने अखंड प्रयासों के द्वारा इस कार्य में सफल सिद्ध होना है। इसी कारण मैंने तुम्हें एकलव्य का स्मरण दिलाया है।

शिवाजी नगर की गंदी बस्ती के क्षेत्र में अब अपना चल-चिकित्सालय सप्ताह में कम-से-कम एक बार आनेवाला है। उसका लाभ तुम अपने चयन किए हुए पचास परिवारों की सहायता के लिए लोगी, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि इन 50 परिवारों को केवल स्वास्थ्य लाभ करा देना है। तुम्हें इन 50 परिवारों के लड़के-लड़कियों को अर्थात् नई-पीढ़ी को अच्छे-से-अच्छे परिवारों के बच्चों से भी बढ़कर बनाना है, अतः तुम्हें इन चुने हुए परिवारों में जन्म लिये बच्चों से लेकर 15-16 वर्ष तक के लड़के-लड़कियों के विकास पर अपनी संपूर्ण शक्ति केंद्रित करनी है। इस नई-पीढ़ी के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से कौन-कौन से काम किन-किन कार्यक्रमों के माध्यम से तुम करोगी, यह मैं जानना चाहता हूँ। तुम्हारे लिए जो काम निश्चित किया गया है, मैं इसकी पूरी योजना जानना चाहता हूँ। अतः तुम इस पत्र के उत्तर में अपनी पूरी योजना लिखकर भेजना। उस योजना में जिन बातों को जोड़ने की मैं आवश्यकता अनुभव करूंगा, मैं उन्हें जोड़कर भेजूंगा। अब अपना यह कार्य सतत और अखंड रूप से चलता रहेगा। पत्रोत्तर में न आलस्य करना चाहिए, न विलंब। एक ही समय पर हमारा कार्य बढ़ रहा है। उन्हें करने से अपनी क्षमता बढ़ाने में सहायक मिलेगी तथा तुम्हारा व्यक्तित्व विकसित होगा। आलस्य एवं थकान इन दोनों से थोड़ी भी मित्रता न करना।

अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना और हर 15 दिन में अपने स्वास्थ्य के बारे में पत्र लिखती रहना। संपूर्ण प्यार सहित।

8

25 फरवरी, 1986

प्रिय सुनीता एवं राकेश,

आप लोगों का 13 फरवरी का पत्र यहां 20 फरवरी को पहुंचा। मैं प्रवास में था। आज ही लौटा हूँ। इस कारण उत्तर में थोड़ा विलंब हो रहा है।

आप दोनों के परिश्रम से 'पोल्ट्री' का कार्य सतत प्रगति कर रहा है, यह जानकर खुशी हुई। आप लोगों को विदेश भ्रमण करने का सुअवसर मिलने जा रहा है, यह और भी खुशी की बात है। आप दोनों भली-भांति जानते हैं कि दीनदयाल शोध संस्थान और उसमें संलग्न सभी कार्यकर्ता

7 काम की बारीकियों का ध्यान रखना नानाजी का स्वभाव था।

समाजशास्त्री

एक विशेष मिशन में लगे हुए हैं। गत ढाई-तीन सालों से प्रिय सुरेश को 'पोल्द्री' के स्थान पर अन्य दायित्व दिया हुआ है। इस समय उसके पास इतना महत्व का कार्य है कि उसे एक दिन के लिए भी उससे अलग होना संभव नहीं है। अभी-अभी हम लोगों ने 'भक्तिधाम' का एक नया प्रकल्प हाथ में लिया है। उसका काम मार्च, अप्रैल, मई और जून में ही विशेष रूप से जुटकर करना आवश्यक है। यह सब काम आनेवाले वर्षा-काल के पूर्व समाप्त नहीं किया गया तो सारा प्रकल्प बिगड़ सकता है। गोंडा जिले का काम एक मशीन जैसा रूप लिये हुए है। प्रत्येक कार्यकर्ता के पास एक विशेष कार्य है। उसमें से एक कार्यकर्ता एक-दो दिन के लिए भी अलग हो गया तो पूरे काम पर उसका घातक परिणाम होगा। इस कारण सुरेश को इन दिनों भोजना बहुत कठिन है। वैसे भी अब दीनदयाल शोध संस्थान अकेले नाना देशमुख के द्वारा नहीं चलाया जा रहा है। ग्यारह लोगों की टीम है। किसी भी संबंध में यह टीम मिलकर निर्णय लेती है। इसी टीम ने मिलकर 'समाजशिल्पी' नाम का एक नया अभियान प्रारंभ किया है। इसके लिए अभी-अभी एक माह का 'समाजशिल्पी प्रशिक्षण शिविर' संपन्न हुआ है। इससे नए वातावरण का निर्माण हुआ है। अनेक युवक-युवतियों ने अपना पूरा जीवन इस कार्य के लिए समर्पित किया है। धीरे-धीरे इन युवक-युवतियों की संख्या बढ़ती जाएगी। ऐसी अवस्था में हफ्ते भर के लिए सुरेश को अलग किया गया तो सारा वातावरण बिगड़ सकता है।

आप लोगों की उदारता एवं आत्मीयता के कारण ही सुरेश को 'पोल्द्री' का ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त हुआ है। ऐसी स्थिति में आपकी जरूरत के समय सुरेश को न भोजना मेरे लिए मानसिक दृष्टि से बहुत कष्टकर हो रहा है। इस आदर्शवाद के लिए मैं कई लोगों को सुख-सुविधा की जिंदगी छोड़कर कष्टकर सामाजिक कार्य में लगा रहा हूँ। उसकी विफलता से बचाए रखने के लिए मुझे यह कष्टकर उत्तर देने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। मैं जानता हूँ कि मैं आप दोनों को निराश कर रहा हूँ, किंतु मुझे विश्वास है कि मेरी परेशानी को समझकर आप दोनों बुरा नहीं मानेंगे।

9

10 मार्च, 1986

प्रिय लता बहन,

मैं जयप्रभा ग्राम से कल ही लौटा हूँ। मेरे पास प्रिय सुनीता एवं रमेश का पत्र आया था। वे छह हफ्ते के लिए विदेश जाना चाहते हैं। प्रिय सुरेश हैदराबाद में चलनेवाले पोल्द्री के काम को उन दिनों संभालने के लिए वहां जाए, ऐसा उनका कहना है, किंतु इस समय सुरेश को वहां भोजना मेरे लिए संभव नहीं है। तदनुसार मैंने सुनीता एवं राकेश को पत्र लिखा था, जिसकी प्रतिलिपि

8 बहनतुल्य लता खन्ना की सुपुत्री एवं दामाद को लिखा पत्र—सामाजिक दायित्व निभाने के लिए पारिवारिक आवश्यकताओं को बाधक नहीं बनना चाहिए।

विराट पुरुष

तुम्हारी जानकारी के लिए साथ में संलग्न है।

इस बीच प्रिय सुरेश लखनऊ आए थे। प्रिय शोभा का ऑपरेशन हुआ है तथा वह ठीक है, यह उसी से मुझे ज्ञात हुआ। उसी ने मुझे सूचना दी कि मेरा पत्र पाने पर सुनीता ने फोन किया था तथा सुरेश को न भेज पाने के कारण उसने अपना दुःख तथा रोष तुम्हारे पास व्यक्त किया था। उनका रोष उचित है। मुझे सुरेश को भेजना चाहिए, उनकी यह अपेक्षा गलत नहीं है, किंतु विवशता क्या है, यह प्रिय सुनीता या राकेश समझने की स्थिति में नहीं हैं।

मेरे इस व्यवहार के कारण तुम मुझ पर नाराज नहीं होगी, इसका मुझे विश्वास है। कारण, मेरी जिम्मेदारियां क्या हैं, यह तुम भली-भांति जानती हो। तुम्हारे बच्चों के लिए जो भी संभव हो सकता है, वह करने में मुझे हमेशा खुशी हुई है। कारण, वे जितने तुम्हारे हैं उतने ही मेरे भी हैं और इसी भावना से मैं उनसे असीम प्यार करता हूं और आजीवन करता रहूंगा, किंतु मैं इन बच्चों का मामा या नाना ही नहीं हूं। मामा और नाना के साथ-साथ मैं इस राष्ट्र का एक समर्पित सेवक हूं। उसी के लिए जीना और मरना मेरा जीवन है। मैं जिनसे अपनापन अनुभव करता हूं, उनके लिए व्यक्तिगत कष्ट सहने में आनंद अनुभव करता हूं, किंतु सामाजिकता को आंच आए बिना।

मैं अपने बारे में साधारणतः किसी से कहता नहीं हूं, किंतु तुम मेरी प्यारी बहन हो। तुमसे उस संबंध में कहने में संकोच नहीं कर सकता। सन् 1963 के कानपुर में लगे जनसंघ के कार्यकर्ता शिविर का तुम्हें स्मरण होगा। वह शिविर 5 दिन का था। उस शिविर में डॉ. लोहिया भी आए थे, रक्षाबंधन का त्योहार भी पड़ा था। शिविर के दूसरे ही दिन मेरे सगे बड़े भाई साहब की मृत्यु के समाचार का तार कानपुर पहुंचा था। संभवतः उस समाचार के कारण मुझसे भी अधिक तुम दुःखी हुई थीं। मैं तुरंत अपने घर जाऊं, यह तुम्हारा आग्रह था और दीनदयालजी भी कह रहे थे कि “तुम जाओगे तो कोई हर्ज नहीं है।” किंतु मैं नहीं गया। उस शिविर में मैंने ही जनसंघ के कार्यकर्ताओं को बुलाया था। उस शिविर का संपूर्ण दायित्व मुझ पर था। मेरा शिविर छोड़कर जाना उचित नहीं होता। डॉ. लोहिया इस शिविर में मेरे कारण ही आनेवाले थे तथा शिविर की व्यवस्था में दीनदयालजी का उलझना ठीक नहीं था, अतः मैंने स्वयं निर्णय लिया कि मैं नहीं जाऊंगा। मेरे जाने से भाई साहब तो पुनर्जीवित होनेवाले नहीं थे, अतः मैं अपने दायित्व से क्यों हटूं। मैं भाई साहब के मरने के आठ दिन बाद घर पहुंचा तथा श्राद्ध आदि की औपचारिकताएं पूर्ण कीं। इससे भी अधिक कठोर बात, जो मैंने किसी से नहीं कही थी, वह मैं तुम्हें आज लिख रहा हूं।

सन् 1945 के मार्च में भाई साहब की पत्नी का देहांत हुआ था। उनकी एक लड़की तथा एक लड़का था। लड़का संभवतः 6-7 साल का था और लड़की 9 साल की। लड़के का स्वास्थ्य ठीक नहीं था। भाई साहब मुझे खोजते हुए बनारस आए। गोरखपुर से मुझे बुलाया गया। वे चाहते थे कि मैं उनके साथ घर चलूं, किंतु मुझ पर बनारस में होनेवाले संघ शिक्षा वर्ग की

9 बहनतुल्य लता खन्ना को एक पारिवारिक पत्र। राष्ट्र-निर्माण व समाज कल्याण हेतु व्यक्तिगत त्याग पर बल देते हुए।

व्यवस्था का दायित्व था। अतः रोते-बिलखते भाई साहब को मैंने समझाया कि मैं संघ शिक्षा वर्ग पूर्ण कर घर आऊंगा और आपके साथ 15-20 दिन रहूंगा। वे निराश और दुःखी होकर लौट गए। दुर्भाग्य से 29 अप्रैल को भाई साहब के घर पहुंचते ही उनके इकलौते बेटे का भी देहांत हो गया। इस दुःखद समाचार का तार मुझे मिला। मैंने माननीय भाऊरावजी से कहा कि इस स्थिति में क्या करूं? उस समय अंग्रेज सरकार से आजादी का संघर्ष अधिक तीव्र हुआ था। संघ पर भी सरकार का रोष था। बनारस संघ शिक्षा वर्ग का होना-न-होना निश्चित न था, अतः भाऊरावजी ने कहा तुम घर जाओ तथा 5 मई को नागपुर के वर्ग में जाकर अपना तृतीय वर्ष पूर्ण करो। तुम जानती हो, मेरा घर सुदूर देहांत में है, अतः मैं 3 मई की सायंकाल घर पहुंचा। चार मई की प्रातःकाल घर से न चलता तो 5 मई को नागपुर पहुंचना मेरे लिए संभव नहीं होता। घर पहुंचने पर क्या स्थिति रही होगी, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो?

भाभीजी की मृत्यु के बाद भाई साहब के साथ मेरे घर न आने के कारण ही भाई साहब के बेटे की मृत्यु हुई, यह लांछन घर के सभी लोग मुझ पर लगा रहे थे। इसी लांछन को और सभी के रोष को सहते हुए 3 तारीख की रात्रि में 11:30 बजे रोते-बिलखते भाई साहब से कहना पड़ा कि मुझे प्रातःकाल 4:00 बजे बैलगाड़ी से वाशीम के लिए प्रस्थान करना पड़ेगा। जहां से नागपुर के लिए बस मिलनेवाली थी। अन्यथा मैं 5 मई को समय से तृतीय वर्ष की शिक्षा के लिए नागपुर पहुंच नहीं सकता था। मेरे इस कथन का परिणाम सब पर कितना भयंकर हुआ होगा, इसका भी तुम अनुमान लगा सकती हो। इसके बावजूद मैं 4 मई के प्रातःकाल पैदल ही वाशीम की ओर चल पड़ा। गांव के तथा परिवार के सभी लोग एक ही बात कह रहे थे कि यह व्यक्ति पत्थर दिल है। इसको न किसी से प्यार है, न लगाव है, न इसमें किसी के उपकार के प्रति कृतज्ञता का भाव है। यह सबकुछ सहता हुआ मैं अपनी राह पर अविचल रूप से बढ़ता रहा।

अब मैं गोंडा जिले में लगा हूँ। अभी एक माह का समाजशिल्पियों का प्रशिक्षण शिविर पूर्ण किया है। घर-बार छोड़कर दो तरुणियां तथा नए युवक अवैतनिक रूप से ग्रामीण क्षेत्र में रहकर काम करने के लिए निकल पड़े हैं। उनमें से कुछ लोगों के घर के विरोध की सीमा नहीं है। मेरी ही प्रेरणा के कारण वे सबकुछ कर रहे हैं। धन जुटाना तथा कार्यकर्ता जुटाना, ये दोनों दायित्व मैंने स्वयं ही अपने ऊपर लिए हुए हैं। अप्रैल, मई, जून में 28-14 गांव में रहनेवाले प्रत्येक परिवार से धन एकत्रित करने का कार्यक्रम बन गया है। इस कार्यक्रम में कितने कार्यकर्ताओं की आवश्यकता हो सकती है, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो। अप्रैल में रबी की फसल कटेगी। गरीब से गरीब किसान व मजदूर भी आधा या एक किलो अनाज देने की स्थिति में होगा। इसके लिए अन्य कोई उपयुक्त समय नहीं हो सकता।

‘भक्तिधाम’ के निर्माण में ऐसे सब लोगों का योगदान स्वयं में एक बहुत बड़ी, अभिनव तथा अभूतपूर्व बात होगी। ऐसे समय अपने ही दोनों बच्चों को विदेश जाने की सुविधा के लिए सुरेश को भेजें, यह मेरे लिए कैसे संभव होगा। सुरेश लोगों की नजर में केवल दीनदयाल शोध संस्थान का कार्यकर्ता नहीं है, वह मेरे सगे भानजे का बेटा है, यह सब लोग जानते हैं। उसी को इस काम

विराट पुरुष

से मुक्त कर व्यक्तिगत काम के लिए भेजें तो मेरी स्थिति जिले के अपने सभी कार्यकर्ताओं के बीच बहुत खराब होगी, इसकी तुम कल्पना कर सकती हो। इस स्थिति को सहने के लिए तैयार हो जाता, किंतु मेरे इस व्यवहार के कारण शोध संस्थान के अन्य कार्यकर्ताओं को अपने स्वार्थ से मुक्त होकर इस पावन कार्य में जुटाने की मेरी क्षमता ही नष्ट होती, अतः सुरेश को न भेजने का कठोर निर्णय अपने लिए नहीं, जिस जीवनव्रत में जुटा हूं, जिसका लाभ मेरे लिए नहीं, संपूर्ण समाज के लिए होगा, इस कारण ले रहा हूं। वह मेरा स्वभाव सा बन गया है। वही मेरी सफलता का भी कारण है।

यह पत्र मैं इसलिए लिख रहा हूं कि तुम जितना प्यार सुनीता, राकेश से करती हो, उतना ही प्यार एक भाई के नाते मुझसे भी करती हो। तुम्हारे प्यार की मुझे नितांत आवश्यकता है। कर्तव्य की कठोर जिंदगी बितानेवाले व्यक्तियों को बहनों के प्यार के अतिरिक्त दूसरा कोई पौष्टिक पदार्थ स्वास्थ्यवर्धक एवं संतोषजनक नहीं होता। मुझे पूर्ण भरोसा है कि तुम मेरी विवशता को समझ सकोगी। तुम मेरी कितनी चिंता करती हो, मेरी हर आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए सदैव तत्पर रहती हो, मेरे लिए कितनी कठिनाइयां सहती हो, इन सब बातों की मैं पग-पग पर अनुभूति करता रहता हूं। इसके बावजूद मैं सुनीता-राकेश के लिए यह मामूली सी बात नहीं कर पा रहा हूं। इसका मुझे मानसिक कष्ट है, किंतु मेरा कर्तव्य और जीवन-कार्य मुझे इस कठोर निर्णय के लिए बाध्य कर रहा है। मैं तुम्हारा भाई हूं, किंतु राष्ट्र के लिए पूर्ण रूप से समर्पित हूं। इसके अतिरिक्त मेरा अपना कोई निजी जीवन नहीं है, यह कम-से-कम तुम तो समझ सकती हो। एक ऐसे भी भाई को अपने प्यार का सहारा देती रहो, यही मेरा अनुरोध है।

10

02 जून, 1986

चि. प्रिय संजय श्राफ,

संभवतः नागपुर से लिखा मेरा पत्र तुम्हें मिला होगा। वह लिखकर डाकखाने में डालने के लिए प्रिय रमेश देशपांडे को दिया था। उसके पहुंचने में कहीं गड़बड़ न हो, इस कारण यह दूसरा पत्र लिख रहा हूं।

दिनांक 29 मई की सायंकाल मैं तुम्हारे घर गया था। प्रिय पिताजी, माताजी, बहन और भाई सभी उपस्थित थे। बहन के विवाह के शुभ कार्य की व्यवस्था की चर्चा हुई। सौ. प्रिय ताई ने जिम्मेदारी संभालने का आश्वासन दिया है। वातावरण भी अच्छा था। सौ. प्रिय ताई ने तुम्हारे बारे में भी विषय छेड़ा। उस पर पिताजी ने कहा कि संजय ने मुझसे कभी चर्चा नहीं की। दूसरों के द्वारा

10 सामाजिक पुनर्चना में लगे कार्यकर्ताओं के परिवारों की चिंता नानाजी स्वयं करते थे।

समाजशास्त्री

ही मुझे उसके संबंध में जानकारी मिली, किंतु उनका कोई विरोध नहीं है। वह मन-ही-मन समझ रहे हैं कि तीन वर्ष होने के बावजूद तुम वापस घर नहीं आओगे और इसी काम में जीवन भर लगे रहोगे। यह काम करते समय संजय ने विवाह किया तो वह अपना घर कैसे चलाएगा? यह प्रश्न उन्होंने उपस्थित किया था। उसका समाधानकारक उत्तर मैंने दे दिया, अतः उस दृष्टि से उनका समाधान हुआ है, ऐसा लगा, किंतु एक प्रश्न उन्होंने उपस्थित किया कि वह काम करता रहेगा। अपना व अपनी पत्नी व बच्चों का पालन-पोषण कर सकेगा, किंतु हम माता-पिता का दायित्व वह कैसे संभाल पाएगा? उस पर मैंने उन्हें कहा कि आप जब कभी भी उसके पास जाएंगे तो वह दोनों को खिलाने-पिलाने में और रखने में किसी भी प्रकार की आनाकानी नहीं करेगा। इससे अधिक कुछ करना उसके लिए संभव नहीं होगा, किंतु आपको बहुत श्रेय मिलेगा कि आपका लड़का और बहू दोनों सामाजिक कार्य में संलग्न हैं। इससे आपके कुल की कीर्ति बढ़ेगी। इस पर उन्होंने इतना ही कहा कि यह प्रस्ताव करने के लिए लड़की की ओर से भी किसी को आना चाहिए। वैसे मैंने उनसे कहा कि मैं स्वयं भी उसी की ओर का हूँ। फिर भी लड़की का सबसे बड़ा भाई जो घर का सब काम संभालता है, स्वयं आपके पास आएगा। उस समय प्रिय रमेश नागपुर में ही था। रमेश से कहा है कि वह 10 दिन में उनसे मिलने जाए। मैं 13 जुलाई को नागपुर पहुंच रहा हूँ।

11

20 जुलाई, 1987

प्रिय श्री सुरेशजी,

संघ योजनानुसार राष्ट्र जीवन के विभिन्न दायित्व निभाते हुए जीवन के 62 साल बीत गए थे। इस सुदीर्घ काल में अपने सनातन समाज की युगानुकूल नवरचना की धारणाएं मानस-पटल पर अंकित होती रहीं। उन्हें साकार कर दिखाने की आकांक्षा मन-ही-मन संजोता रहा। अंत में सन् 1978 के अक्टूबर में उन्हें साकार करने का कदम बढ़ाने का साहस किया। इसे संघ संस्कारों का ही परिणाम कहना चाहिए, 'परं वैभवं नेतुमेतत् स्वराष्ट्रम्' की प्रेरणा ही इस साहस का आधार रही।

ईश्वर की कृपा से प्रारंभ से ही मेरे मस्तिष्क में एक बात स्पष्ट थी कि यह कार्य किसी भी एक व्यक्ति के बलबूते का नहीं है। संपूर्ण समाज की इसमें सहभागिता अनिवार्य है, किंतु इस दिशा में अन्य कोई कदम नहीं बढ़ा रहा था। समय तेजी से बीत रहा है। सामाजिकता व नैतिकता निरंतर घट रही है। इससे मन बेचैन हो उठा। परिणामस्वरूप सन् 1978 के अक्टूबर में गोंडा ग्रामोदय प्रकल्प के नाम से उपर्युक्त दिशा में कार्य प्रारंभ कर दिया गया।

11 सामाजिक पुनर्रचना के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है—कार्यकर्ता निर्माण। डीआरआई के कार्यकर्ता सुरेश देशपांडे के नाम पत्र।

विराट पुरुष

इस काम के आगामी अक्टूबर में 9 वर्ष पूर्ण होंगे। इस काल में आपकी तरह लगनशील सहयोगियों के कारण गोंडा प्रकल्प ने लोगों की कुछ आशा जगाई है। इस आशा को विश्वास में परिणित करना अपनी लक्ष्यसिद्धि के लिए आवश्यक है, किंतु लोगों के मन में यह विश्वास तभी जमेगा, जब लोग अनुभव करने लगेंगे कि अपना कार्य केवल एक खंभे पर खड़ा नहीं है। कार्यकर्ताओं की आवश्यक क्षमता उनकी नजर में आनी चाहिए। ‘‘शोध संस्थान का कार्य नानाजी के व्यक्तित्व के कारण ही खड़ा है। वे न रहे तो इस काम का कोई ठिकाना नहीं रहेगा।’’ यह सुनकर मैं मन-ही-मन दुःखी होता हूँ। लोगों की यह धारणा मेरी विफलता का परिचायक है। हाथ में लिए प्रयोगों के सभी पहलुओं को निखारने के लिए यदि कुछ वर्ष और मुझे जीवित रहना है तो लोगों के द्वारा प्रकट होनेवाली उपर्युक्त धारणा को यथाशीघ्र समाप्त करना होगा। इसका मेरे मानस पर विपरीत परिणाम हो रहा है।

गोंडा जिले के प्रयोग को अपनी अवधारणा के अनुसार देश के शेष जिलों के लिए अनुकरणीय नमूना बनाने में परामर्शदाता के नाते मेरा और कुछ साल रहना पर्याप्त है। प्रिय श्री रमाशंकरजी के साथ आप सब मिलकर इस काम को करने में सक्षम हैं।

मैं अनुभव करता हूँ कि ईश्वर की कृपा से तुम में ‘गोपाल ग्राम’ प्रकल्प को विकसित करने की पूर्ण क्षमता है। इसी कारण गोपाल ग्राम का संपूर्ण प्रकल्प स्वतंत्र रूप से तुम्हें सौंपा गया है। गोपाल ग्राम में होनेवाले सभी काम आदर्श रूप में शीघ्र खड़े करने हैं। इन कामों को उत्पादन व प्रशिक्षण का केंद्र बनाना है। तभी गोपाल ग्राम का काम जिले के साधारण नागरिकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

मैं चाहता हूँ कि आगामी दो-तीन वर्षों में अपने कार्य के माध्यम से मेरे से भी अधिक सक्षम व कर्तृत्ववान 25-30 कार्यकर्ता खड़े हों। उनमें से तुम एक हो।

प्रकल्प के निश्चित कार्यक्रमों को समय में कार्यान्वित करने के लिए आपको सुयोग्य सहयोगियों की टीम खड़ी करनी होगी। उनमें से हर एक का व्यक्तिगत दायित्व निश्चित करना होगा। तभी आप अपने प्रकल्प को अपेक्षित रूप में साकार कर सकोगे।

आगामी 11 अक्टूबर को मैं अपने जीवन के 71 वर्ष पूर्ण करने जा रहा हूँ। उस अवसर पर नए कार्य हाथ में लेने का मानस है।

■ अपने देश में असीम युवाशक्ति है। उसमें शिक्षित व अशिक्षितों का समावेश है। इस महान् शक्ति का सामाजिक, आर्थिक व नैतिक पुनर्रचना के कार्य में सदुपयोग करने की घोर उपेक्षा हो रही है। ऐसी स्थिति में भारत का भविष्य नहीं बन सकता, अतः यह दायित्व निभाने के लिए अपने शोध संस्थान को ही कदम बढ़ाना होगा।

■ इसी प्रकार अवकाशप्राप्त विशाल समुदाय की शक्ति भी बेकार जा रही है। अटूटावन साल के सभी अवकाशप्राप्त लोग थके-मांदे नहीं होते। उनमें से अधिकांश लोग काम करने लायक होते हैं। उनकी संतान आत्मनिर्भर होती है। उनमें से अनेक लोग विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ भी होते हैं। सुअवसर मिलने पर इस समुदाय के अनेक लोग राष्ट्र नवनिर्माण के कार्य में बहुत बड़ा

समाजशास्त्री

योगदान कर सकते हैं। उनका सदुपयोग करने का कार्य भी हाथ में लेने का सोचा है। प्रिय श्री महेशजी की पूर्णशक्ति युवाशक्ति का सदुपयोग करने में व प्रिय श्री यादवजी का पूरा समय अवकाश प्राप्त समुदाय का सदुपयोग करने में लगेगा। उपर्युक्त दोनों काम देशव्यापी हैं। इन कामों में मेरा भी पर्याप्त समय लगेगा। इन दोनों कामों का अपने चल रहे काम में पर्याप्त लाभ होगा। साथ ही देश में अनेक स्थानों पर स्वतंत्र रूप में अपने प्रकल्पों के समान नए-नए प्रकल्प खड़े हो सकेंगे। आगामी 9 साल में देश के हर जिले में युवाओं द्वारा ऐसे ही प्रकल्प प्रारंभ हों, यह अपनी आकांक्षा है। आपके द्वारा गोंडा जिले के सफल प्रयोगों का लाभ इन सब लोगों को होगा।

मुझे विश्वास है कि आप मेरे इन विचारों से सहमत होंगे और अपने काम की पूर्ण रूपरेखा बनाकर उन्हें समयबद्ध कार्यक्रमों द्वारा वांछित रूप प्रदान करेंगे।

12

28 अप्रैल, 1988

प्रिय महेशजी,

मेरा आपसे और सुमिता से संबंध केवल आशीष या शुभकामनाओं तक सीमित नहीं है। वह आत्मीयता पर आधारित है। आत्मीयता से स्थायित्व का बोध होता है। मैं उसी का अभिलाषी हूँ।

मेरे सम्मुख अपना लक्ष्य सुस्पष्ट है। उसे पाने के माध्यम प्रयोगात्मक हैं। अनुभवों व परिणामों के आधार पर समयानुसार माध्यमों में आवश्यक परिवर्तन संभव है।

अपनी बात आग्रहपूर्वक रखना मेरा स्वभाव है, किंतु उसे किसी पर लादने की मेरी प्रवृत्ति नहीं है। ऐसी प्रवृत्ति सामाजिक पुनर्रचना के कार्य में रोड़ा बन सकती है। कारण, वह सभी की प्रतिभाओं के विकास के लिए उपयोगी नहीं है। इससे सभी को उन्मुक्त सुअवसर नहीं मिल सकता।

आपने अपनी वैचारिक व व्यावहारिक प्राथमिकताओं का पत्र में उल्लेख किया है। संभवतः तृतीय प्राथमिकता में एक शब्द छूट गया है। आपने लिखा है—‘समाज शिल्पी परिवार परिकल्पना का प्रसार’। आपका मंतव्य होगा व्यवहार व प्रसार।

आपके द्वारा अंकित तीनों प्राथमिकताएं दीनदयाल शोध संस्थान की लक्ष्य सिद्धि के अभिन्न अंग हैं, अतः आप अपनी संपूर्ण शक्ति एवं समय इसी एक कार्य में केंद्रित करें। इस कार्य सिद्धि से राष्ट्र देवता की चिरवांछित अभिलाषा पूर्ण होगी। आपका जीवन धन्य होगा। अन्य प्रयोगों के संचालन का प्रबंध हम लोग अन्य सहयोगियों के द्वारा करा लेंगे।

दिल्ली को केंद्र बनाना आप समग्र दृष्टि से अधिक उपयुक्त मानते हैं। उसमें मुझे आपत्ति

12 संस्थान के तत्कालीन सचिव डॉ. महेश शर्मा को लिखे पत्र में कार्यरचना के संबंध में नानाजी का लचीलापन स्पष्ट दिखता है।

विराट पुरुष

नहीं है। महत्ता है कार्य को अधिक गति एवं अधिक सफलता प्राप्त कराने की। मेरा मत है कि अपनी निर्धारित प्राथमिकताओं को साकार करने की दृष्टि से वार्षिक कार्यक्रमों की रचना कर अपनी गतिविधियों का संचालन करना अधिक उपयुक्त होगा।

13

29 जुलाई, 1989

प्रिय श्री मधुकर रावजी देशपांडे,

आपका दिनांक 19 जुलाई का पत्र प्राप्त हुआ। पढ़कर खुशी हुई। मैं 23, 24, 25 जुलाई को बंबई में था। प्रिय श्री बापूराव लेले के द्वारा मिलने के लिए आपको सूचना भेजी थी, किंतु 23, 24 जुलाई को बंबई में भारी वर्षा और तूफान के कारण किसी का भी घर से बाहर निकलना लगभग असंभव था। अधिकांश लोगों के टेलीफोन खराब हो गए थे। परिणामस्वरूप मेरे वे दो दिन लगभग बेकार गए। 25 को थोड़ा-बहुत काम हो पाया। आपसे भेंट न होने के कारण जो काम सोच रखे थे, वे वैसे ही रह गए।

24 सितंबर को आपने एक कार्यक्रम की योजना बनाई है। 24 सितंबर को मुझे बंबई आने में कठिनाई नहीं है, किंतु इतना बड़ा कार्यक्रम करने का लाभ तभी होगा जब आप कम-से-कम 15-20 लोगों की टीम कार्यक्रम के 10-15 दिन पूर्व तक खड़ी कर लें। कारण, कार्यक्रम में सम्मिलित महिला-पुरुषों को प्रत्यक्ष काम में लगाने के लिए आपके पास समय देनेवाले परिश्रमशील लोग पर्याप्त संख्या में नहीं हुए तो ऐसे कार्यक्रमों का लाभ नहीं मिल पाएगा। हमें भाषण देने में रुचि नहीं है। काम खड़ा करने के लिए आवश्यक विचार व्यक्त करना ही अपना काम है। इसलिए कोई बड़ा कार्यक्रम लेने के बाद कार्यक्रम में सम्मिलित लोगों को काम में लगाने की व्यवस्था कार्यक्रम के पूर्व खड़ी कर लेनी चाहिए। कार्यक्रम में लोगों को लाने की दृष्टि से इस व्यवस्था में सम्मिलित लोगों का पूरा उपयोग होना चाहिए।

यदि आप यह व्यवस्था खड़ी कर 10 कार्यकर्ताओं को अपनी टीम के रूप में जोड़ सकते हैं तो केवल 100 परिवारों को ही निमंत्रित करिए। कारण, एक कार्यकर्ता 10 से अधिक परिवारों को सतत काम में जुटा नहीं पाएगा। यदि 20 कार्यकर्ता प्राप्त होते हैं तो 200 परिवारों को बुलाइए। इस प्रकार एक कार्यकर्ता सुविधाजनक तरीके से 10 परिवार को निमंत्रित करे और समय से कार्यक्रम में उपस्थित हो। मुझे बहुत बड़ी संख्या से प्यार नहीं है। समाज के सेवानिवृत्त लोगों को प्रत्यक्ष काम में जुटने की चिंता है। यदि आप पांच कार्यकर्ताओं की टीम खड़ी करते हैं तो कार्य करने के लिए उत्सुक 50 परिवारों को

13 वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले मुंबई के कार्यकर्ता श्री मधुकर राव देशपांडे को लिखे पत्र में नानाजी कार्यकर्ता और लक्ष्य के बीच समुचित अनुपात पर बल दिया।

बुलाइए। मैं उसके लिए 24 सितंबर को आऊंगा, किंतु यदि यह व्यवस्था नहीं है और 1000 परिवार भी आनेवाले हैं तो मुझे ऐसे कार्यक्रम में आने में उत्साह अनुभव नहीं होगा। शेष पूरा कार्य आप अच्छी तरह से कर ही रहे हैं।

14

22 मई, 1990

चि. सौ. प्रिय श्रुति,

तुमने 'श्रॉफ फाउंडेशन ट्रस्ट' का सन् 1990-91 का 'एनुअल ऑपरेटिंग प्लान' भेजा। वह समय से प्राप्त हुआ। मैं यहां नहीं था। इस कारण उत्तर में विलंब हो रहा है।

तुम्हारा प्रयास देखकर मुझे खुशी के साथ आश्चर्य भी हुआ। अपने पारिवारिक दायित्वों को संभालते हुए एक युवा गृहिणी इतना अधिक एवं व्यवस्थित समाज-कार्य कर सकती है। तुम्हारे इस प्रशंसनीय कार्य के लिए मैं तुम्हारा अभिनंदन करता हूं तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि वह तुम्हारी क्षमता को निरंतर बढ़ाता रहे।

मैंने तुम्हारा 'एनुअल ऑपरेटिंग प्लान' पढ़ा। तुमने यह प्लान बहुत ही व्यवस्थित रीति से तैयार किया है। इसमें बहुत उपयोगी लक्ष्य सम्मुख रखे हैं। सबकुछ पढ़ने के बाद जो सुझाव देने की आवश्यकता अनुभव हुई, उन्हें मैं प्रस्तुत कर रहा हूं—

तुम्हारा कार्य अभी 10 गांव में चल रहा है। तुमने उन गांवों में दाइयों का कार्यक्रम अपनाया है। यह कार्यक्रम बहुत आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

हर आबादी में महिलाएं प्रसूत होती हैं। वहां प्रसूति की आवश्यक सहायता एवं सुविधा उपस्थित हो या न हो। प्रसूति काल में ग्रामीण-अंचल में परंपरागत रूप से दाइयां ही काम करती हैं। उन दाइयों में अभ्यास के कारण पर्याप्त कुशलता एवं निपुणता पाई जाती है, किंतु उन्हें स्वास्थ्य के सभी आवश्यक नियमों का ज्ञान नहीं होता।

जन्म पानेवाले हर बच्चे की 'नार' काटना अनिवार्य रहता है, किंतु इस प्रक्रिया में कहीं सैप्टिक न हो, इसके लिए कौन-कौन सी बातों की चिंता करनी चाहिए, इसका उन्हें पूरा ज्ञान नहीं होता। जन्म देनेवाली मां की स्थिति प्रसूति के समय अत्यंत नाजुक होती है। ऐसे समय में कौन-कौन सी बातों का ध्यान रखना, किस प्रकार से स्वच्छता की चिंता करना आदि का भी उन्हें ज्ञान नहीं होता। इतना ही नहीं, प्रसूति के समय स्वच्छता से हाथ धोकर कार्य में लगने की भी उन्हें आदत नहीं रहती। वे बिना हाथ धोए ही काम में जुट जाती हैं।

प्रसूति काल में कभी-कभी छोटी-बड़ी समस्याएं उपस्थित हो सकती हैं। कई बार तो बहुत गंभीर समस्याएं उपस्थित होती हैं। ऐसे समय किसी योग्य डॉक्टर का वहां होना कठिन होता

14 बड़ौदा के श्रॉफ परिवार की बहु श्रुति में ग्रामीणांचल कार्य के लिए उत्साहवर्धन व सुझाव। सुझावों का दायरा कल्पनातीत रहता था।

विराट पुरुष

है। इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए, इस संबंध में उन्हें प्रशिक्षित करने की अपने यहां कोई व्यवस्था नहीं है।

प्रशिक्षण के साथ-साथ उन्हें आवश्यक उपकरणों व तात्कालिक दवाइयों की एक-एक किट भी दी जा सकती है। इससे प्रसूतवाली महिलाओं एवं जन्म पानेवाले शिशुओं का बहुत बड़ा हित हो सकता है।

बड़ौदा में कई गॉयनोकोलॉजिस्ट डॉक्टर्स होंगे। इस कार्य में उनकी सहायता मिल सकती है। इस कार्य को अच्छे से अच्छा रूप कैसे दिया जा सकता है, इस पर विचार करना होगा।

हम लोग साधारणतः एलोपैथी दवाओं का ही प्रयोग करते हैं। ये दवाएं काफी महंगी होती हैं। एलोपैथी दवा के कुछ दुष्परिणाम हो सकते हैं। इन दस गांवों में जो भी बीमारियां आम तौर से होती होंगी, उसके लिए उपयुक्त आयुर्वेदिक दवा का निर्माण किसी अच्छे वैद्य की सहायता से कराया जाए। 45-50 वर्ष की समझदार महिला को इन दवाओं के उपयोग की विधि सिखाकर दादी मां के बटुए के रूप में हर गांव में यह प्रयोग बहुत परिणामकारी और लाभदायी हो सकता है। इसका प्रयोग हमने व्यापक स्तर पर बीड जिले में करके देखा है।

हर गांव में नन्हे-नन्हे शिशु होते हैं। विद्यालय जाने की उनकी आयु नहीं रहती। ऐसे शिशुओं के लिए गांव में कोई व्यवस्था नहीं होती। वह ऐसे ही गंदगी में खेलते रहते हैं। यदि हर गांव में एक या दो वृद्ध महिलाओं को या घर बैठी बेकार युवा-युवतियों के द्वारा इन बच्चों को एकत्रित कर खिलौने के साथ खेलों की व्यवस्था की गई तो इन शिशुओं के लिए एक अच्छे संस्कार का वातावरण बन सकता है।

बड़ौदा के संपन्न घरों में उनके बच्चों के लिए कई प्रकार के खिलौने आते हैं। बच्चों के बड़े हो जाने के बाद वे खिलौने उपयोगी नहीं रहते। यदि बड़ौदा में तुम अपने 2-4 सहयोगियों के द्वारा उन संपन्न परिवारों से संपर्क कर पुराने खिलौने जुटाने का प्रयास करो तो 10 गांव के सब बच्चों के लिए सहज में ही अनेक उपयोगी खिलौने उपलब्ध हो सकते हैं। इनमें ज्ञान बढ़ानेवाले खिलौने भी हो सकते हैं। इस कार्य में उसी गांव की समझदार महिलाओं को छोटी-छोटी कहानियां सिखाई जाएं तो वे इन बच्चों को रोज एक मनोरंजक व अच्छी कहानी सुना सकती हैं। इसका बच्चों पर बहुत अच्छा परिणाम होता है। उनमें अच्छे गुण पनपते हैं। इन बच्चों के लिए छोटे-छोटे गीत पढ़ाने का काम भी हो सकता है। यह काम नई पीढ़ी को ठीक दिशा में विकसित करने के लिए बहुत उपयोगी हो सकता है।

गांव में काम से थकने के बाद साधारणतः मनोरंजन के कार्यक्रम नहीं होते। यदि हम लोगों ने गांव में भजन, सुगम-संगीत, कीर्तन आदि के कार्यक्रम प्रारंभ किए तो काम से बाद के समय में लोगों के एकत्र होने का यह कारण बन सकता है। समाज घटकों में एक-दूसरे के लिए पूरक प्रवृत्ति बढ़ाना नितांत आवश्यक है। केवल आर्थिक विकास से समाज की सर्वांगीण उन्नति नहीं होती।

गांव में छोटे या मध्यम किसानों के खेतों में नमूनेदार खेती के प्रयोग किए गए तो सर्वसाधारण

किसान भी अपनी खेती का उत्पादन बढ़ाने में प्रगति कर सकते हैं। इससे हर गांव में अच्छे बीज निर्माण का प्रयास किया जाना संभव होता है।

इन सब बातों का मैंने इसलिए उल्लेख नहीं किया कि तुम्हारा इन बातों की ओर ध्यान नहीं है, किंतु तुम्हारा भेजा हुआ सुव्यवस्थित कार्यक्रम पढ़कर मुझे लगा कि मेरे लिखने से संभवतः तुम्हारे अपनाए कामों को थोड़ा और बल मिलेगा। शेष कुशल।

15

29 मई, 1990

चि. प्रिय सुरेश एवं प्रिय बेटी नीलम,

स्थानीय लोगों का सहयोग अपने काम का आधार होना चाहिए। हम जो भी विकास के काम करेंगे, जिनके लिए करना है, उनका सहयोग न मिला तो उनका विकास करना कठिन होगा। यहां यह सबकी धारणा नहीं होनी चाहिए कि किसी का कारखाना लगनेवाला है, बल्कि उन्हें यह लगना चाहिए कि इसमें उनकी संतान शिक्षा प्राप्त करेगी, इसलिए यह काम प्रारंभ किया जा रहा है।

यह ठीक है कि प्रिय श्री शारंगी जी के व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग कर तात्कालिक विरोध शांत किया गया है। स्थायी सहयोग प्राप्त करने के लिए आप दोनों को गांव में रहनेवाले नागरिकों का सहयोग प्राप्त करना चाहिए, अन्यथा अपना काम परेशानी में पड़ सकता है। दूसरों की लोकप्रियता पर निर्भर रहकर हम अपना काम विकसित नहीं कर पाएंगे। इसलिए आप दोनों की प्राथमिकता चारों ओर के अधिकांश लोगों की अनुकूलता प्राप्त करना है।

आप प्रमुखतः दीनदयाल शोध संस्थान का काम करने के लिए गए हैं। इस कार्य की सफलता को प्राथमिकता देना आवश्यक है। अपना काम जितना अच्छा होगा, उतना ही आप अन्य कामों में उपयोगी सिद्ध होंगे। अपने काम की उपेक्षा कर अन्य दायित्व आप अपने ऊपर लेते रहेंगे तो आप किसी भी काम में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे। यह मैं आपको समझाऊं, इसकी आवश्यकता मैं अनुभव नहीं करता। कारण, मैं स्वयं क्या कर रहा हूं, यह देखना और समझना आपके लिए पर्याप्त होना चाहिए।

मैं समझता हूं कि बिरसाग्राम का जो प्रकल्प है, उसी में आप दोनों अपनी संपूर्ण शक्ति केंद्रित करें। सिंहभूम जिले के भी अन्य स्थानों के काम के कारण आपके बिरसा ग्राम के काम में थोड़ी भी कमी आती हो तो आप अन्य कामों में अपना ध्यान और समय न लगाएं।

15 नानाजी का सौचना था कि समाजशिल्पी परिवार को सामान्य जन समाज का विश्वास अर्जित करना चाहिए। केवल स्थानीय प्रतिष्ठित लोगों के प्रभाव पर अपना काम आधारित नहीं रहना चाहिए। सुरेश एवं नीलम देशपांडे से नानाजी के पारिवारिक संबंध थे।

प्रिय बेटी रत्ना,

मेरे पास टाइप करनेवाले सहयोगी हिंदी और अंग्रेजी ही जानते हैं। इस कारण पत्र-व्यवहार मराठी में करना संभव नहीं होगा, किंतु पत्रोत्तर मराठी में आने से कोई अड़चन नहीं होती। तुमने पत्र मराठी में लिखा है, यह अच्छा किया। जिस भाषा में हम अपने मन के भाव सही तरीके से अभिव्यक्त कर सकते हैं, सुसंवाद के लिए या लिखने के लिए उसी भाषा का प्रयोग करना ठीक होता है।

संभवतः पूरा आकलन किए बिना ही मुझसे कहा गया कि प्रिय रत्नाबाई के मन में आपके भाषण के कुछ अंश के कारण दुविधा उत्पन्न हुई है। इस कारण मैंने तुमको पत्र लिखा। यह अच्छा ही हुआ, अन्यथा तुमसे पत्र-व्यवहार करने का कोई प्रसंग ही उपस्थित नहीं हुआ था। भगवान जो करता है, वह अच्छे के लिए ही करता है, यह मेरी धारणा और दृढ़ हो गई।

तुम जो वर्ग ले रही हो, वह देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। प्रिय श्री अप्पा को अकोला गए लंबा समय बीत गया है। फिर भी वर्ग का रूप, वर्ग में आनेवाले बालक-बालिकाओं की संख्या, उनके सुभाषित आदि का स्तर कायम है। उसमें कई अर्थों में अच्छी प्रगति भी हुई है। तदनुसार तुम वर्ग में आनेवाले बालक-बालिकाओं में गुण-संवर्धन की दिशा में वर्ग को अधिक परिणामजनक बनाने की आकांक्षा रखती हो, यह विशेष उत्साहवर्धक बात है। यह पढ़कर मुझे विशेष खुशी एवं उत्साह अनुभव हुआ।

तुम्हें संभवतः अपना शैशव एवं बाल्य-काल याद होगा। उस अवस्था में बालक-बालिका का अपने से बड़े लोगों के अनुसार सबकुछ करने की एक सहज प्रवृत्ति होती है। कई बार यह भी देखने को मिला होगा कि छोटा सा बच्चा अपने जूते या अपनी चप्पल के स्थान पर बड़ों का जूता-चप्पल पहनने में खुशी अनुभव करता है। उसे अपने से बड़ों की नकल करने में एक विशेष आनंद अनुभव होता है। अर्थात् वह जन्मतः सीखने के लिए उतावला रहता है। इस कारण वह बड़े-से-बड़े लोग जो करते हैं, वैसा करने के लिए प्रयत्नशील हो जाता है। अनुकरण करना उसका बुद्धि-विकास है। हम जिन गुणों का इस नई पीढ़ी में विकास करना चाहते हैं, उन गुणों को परिवार के श्रेष्ठजनों के व्यवहार में देखने को मिलना चाहिए, किंतु यह काम बहुत सरल नहीं है। कारण, परिवार के लोग तुम्हें अपने से अधिक समझदार और योग्य मानने के लिए तैयार नहीं हो सकते, किंतु एक बात हमारे लिए सहायक बन सकती है। हर एक बालक-बालिका के माता-पिता या परिवार के अन्य वरिष्ठजन अपने बच्चों को गुणवान, योग्य और यशस्वी देखना चाहते हैं। यदि अपने वर्ग में आनेवाले बालक-बालिका के अंदर अच्छी क्षमता होने के बारे में कहा जाए और उसकी क्षमता में बहुत अधिक विकास हो सकता है, यह बताया जाए तो हर माता-पिता को खुशी होती है। अपने लिए अपनापन अनुभव होता है और अपने बच्चे के लिए आवश्यक काम करने के लिए तत्पर भी हो सकते हैं। इस तत्परता का हम लाभ उठा सकते हैं, वह निम्न प्रकार है—

16 नानाजी द्वारा बीड़ की शिक्षिका सुश्री रत्ना ताई हसेगांवकर को बच्चों के संस्कारवर्धन के लिए छोटी-छोटी बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता की सलाह दी गई।

समाजशास्त्री

अपने वर्ग में आनेवाली बलिका या बालक चाहे संपन्न परिवार का हो, चाहे अति गरीब परिवार का, उसके घर में यदि सभी चीजें स्वच्छ, सुंदर, सुव्यवस्थित रखने का अभ्यास होगा तो सहज में ही बच्चा उन गुणों से अलंकृत हो जाता है। इस संबंध में बच्चों के घर की रसोईघर, सोने का कमरा, बैठने-उठने की जगह, आंगन के बारे में कही गई बातें अनुकरणीय होनी चाहिए। इसमें परिवार के लोगों का सहयोग न रहा तो बच्चों में हम जिन गुणों का विकास करना चाहेंगे, वह संभव नहीं हो पाएगा। बच्चों के घर में लगे चित्र किस रूप में हैं, कौन-कौन से हैं, कौन-कौन से लगने चाहिए, इस संबंध में बच्चों को प्रेरणा दी जानी चाहिए। इससे गुण-संवर्धन में अनुकूल परिणाम होगा। बच्चों में गुणों के साथ-साथ रचनात्मक एवं सृजनशील वृत्ति का विकास आवश्यक है। ये बातें कहकर, सुनाकर या याद कराकर सिखाना संभव नहीं है। उसके लिए बच्चों को अपने घर में टूटे बरतन, प्लास्टिक के कंटेनर या खराब डिब्बों में मिट्टी और खाद भरकर सुंदर पौधे लगाने के लिए कहें तो सहज में ही रचनात्मक एवं सृजनात्मक वृत्ति विकसित हो सकती है।

कभी-कभी हम बच्चों के इन पौधों की नगर में प्रदर्शनी लगा सकते हैं। उसमें आयु के अनुसार बालक-बालिकाओं के गुट बनाकर उसके लिए पारितोषिक देने का भी प्रबंध कर सकते हैं। इसी प्रकार लड़कियों के लिए कढ़ाई-बुनाई या अन्य कला के काम करने की दिशा में भी प्रोत्साहित किया जा सकता है। बालकों में भी उनके अनुकूल कलात्मक चीजों के प्रति रुचि जगाई जा सकती है। बच्चों को घर में ही पुस्तकालय से अच्छी पुस्तक लाकर पढ़ने की दिशा में भी प्रेरित किया जा सकता है। विद्यालय में अध्ययन के अलावा प्रतिस्पर्धा के माध्यम से दुनिया भर की जानकारी जानने, समझने की प्रवृत्ति बढ़ाई जा सकती है। जिन तीन बातों के संबंध में मैंने उल्लेख किया था, उनमें से यह प्रथम बात है। एक ही पत्र में मैं सब लिख डालूंगा तो तुम्हें एक ही समय में बहुत अधिक बोझ अनुभव होगा।

अतः इस दिशा में तुम कुछ काम करके उसके अनुभव में कठिनाई और सुगमता जब तुमसे जान सकूंगा तब और जो बातें हैं, उनके विषय में लिखने में मुझे उत्साह अनुभव होगा, अतः यह पत्र मैं यहीं पूर्ण करता हूँ।

17

25 अगस्त, 1993

चि. प्रिय डॉ. राजाभाऊ एवं चि. सौ. प्रिय बेटी रेणु,

तुम दोनों युवा अवस्था में पारिवारिक दायित्व का भार सहते हुए अपने आदर्श के कारण सब प्रकार के कष्ट सहने के लिए स्वेच्छा से तत्पर हो, यह देखकर सुखद अनुभूति होती है।

17 चिखलगांव के डॉ. राजाभाऊ एवं सुश्री रेणू को ग्राम विकास कार्य हेतु समर्पित होने पर अभिनंदन व सलाह। शरीर अमर आत्मा का अस्थायी आवास है। आत्मा की अभिव्यक्ति का यही एकमात्र साधन है। इसे आजीवन स्वस्थ बनाएं।

विराट पुरुष

तुम दोनों ने मिलकर चिखलगांव को केंद्र बनाकर 19 गांव के विकास का मन में जो सपना संजोया है, उसे साकार करने के लिए अपनी संपूर्ण शक्ति लगाए हुए हो। तुम्हारे दो प्यारे बच्चों के चेहरे सम्मुख खड़े होते हैं। तुम दोनों की समाज के प्रति जो लगन है, उसका संस्कार उन दोनों बच्चों पर निरंतर होता रहेगा। जिस आदर्श को तुम दोनों ने अपनाया है, उसे निभाने की सिद्धता के लिए और अधिक संतान की आवश्यकता नहीं है। मेरा विश्वास है, यह बात तुम दोनों ने मिलकर तय कर ली होगी। तुम दोनों के प्रति हृदय में एक सहज आत्मीयता उदित हुई है। इस कारण मैं इतनी स्पष्टता से लिख रहा हूँ। उसे आप दोनों में से कोई अन्यथा नहीं लोге, इसकी अपेक्षा है।

आप लोगों ने जिस रूप में विद्यालय को खड़ा किया है। बच्चों के सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकास की दिशा में सफलता प्राप्त कर रहे हो। उससे मैं बहुत प्रसन्न एवं प्रभावित हूँ। आप लोगों ने जो उद्घाटन समारोह आयोजित किया था, उस समय वर्षा-काल के कारण कुछ दिक्कतें थीं। इसके बावजूद आसपास के ग्रामों से जितनी संख्या में लोग आए थे, उससे अनुमान हो रहा था कि आपके जीवन एवं कार्य से लोग कितने आकर्षित हैं। कार्य का विस्तार बढ़ाकर अपने सपनों को साकार करने के लिए जन-समूह की जो पूंजी आप लोगों ने अर्जित की है, वह सफलता का स्पष्ट संकेत है।

ग्रामीण अंचल में संपूर्ण कार्यक्रम इतना अनुशासनबद्ध, सुव्यवस्थित एवं तन्मयतापूर्ण था, जिससे सहज में ही अनुभव हो रहा था कि प्रबंधात्मक कुशलता से आप लोग संपन्न हों। मैं आप लोगों की प्रशंसा करने के लिए इन बातों का उल्लेख नहीं कर रहा हूँ। जो वस्तुस्थिति देखने को मिली और उससे जो मेरे मन में धारणा बनी, उसको मैं लिख रहा हूँ।

वस्तुतः कुटुंब समाज की आधारभूत इकाई (यूनिट) है। उस कुटुंब की संस्कार-क्षमता बढ़ाने की ओर सदियों से जो लक्ष्य रहा है। उसी कारण समाज की दिन-प्रतिदिन अवनति हो रही है। इस अवनति को रोककर समाज को उन्नति की ओर बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि अनुकरणीय परिवार समाज में खड़े हों। मेरे जैसा अविवाहित व्यक्ति समाज को अधिक प्रेरणा नहीं दे सकता। समाज असंख्य कुटुंबों का समूह है, अतः समाज की उन्नति के लिए आदर्श व्यक्तियों की नहीं, आदर्श कुटुंबों की आवश्यकता है। जिस ओर बड़े-बड़े लोगों का भी आज तक ध्यान नहीं गया है। परिणामस्वरूप महापुरुषों की परंपरा के बावजूद समाज अवनति की दिशा में बढ़ रहा है। तुम्हारे समान कुटुंब का विस्तार वर्तमान काल की आवश्यकता है। डॉक्टर ने दापोली में रहकर डॉक्टरी करने का जो निर्णय किया है, वह प्रशंसनीय है। अपनी प्रैक्टिस करते हुए भी सामाजिक कार्य में जुटे रहना आवश्यक है। कुटुंब का अर्थात् बच्चों का भविष्य बिगाड़ने से अन्य कुटुंब को सामाजिक कार्यों में सक्रिय बनाना संभव नहीं होगा।

कई लोग स्वयं तो समाज के कार्य में रात-दिन जुटे रहते हैं, किंतु अपने बच्चों को सामाजिक-कार्य की हवा तक लगने नहीं देते। मेरी अपेक्षा है कि इस कथन को समझने में आप दोनों को कोई कठिनाई नहीं होगी। आपने देखा होगा, जो अपने जीवन के 10-12 साल का समय समाज के कार्य में लगाए रखता है, वह अन्य लोगों को समाज कार्य करने के लिए प्रेरित करता है, किंतु विवाह के बाद वह अपनी पत्नी-बच्चों को समाज कार्य के लिए प्रेरित करने के स्थान पर

उन्हें पारिवारिक जीवन तक ही सीमित रखता है। परिणामस्वरूप कुटुंब एवं समाज परस्पर पूरक नहीं बन पाता, जो समाज की उन्नति के लिए अनिवार्य है। मेरा विश्वास है, तुम दोनों इस प्रकार की गलती अपने जीवन में नहीं होने दोगे। जिस आदर्श को लेकर आप दोनों कार्य कर रहे हो, उसी दिशा में आप दोनों अपने प्यारे बच्चों को भी गतिशील करने के लिए अनुकूल संस्कार दोगे। इस विश्वास के साथ इस लंबे पत्र को विराम दे रहा हूँ।

18

12 फरवरी, 1994

प्रिय डॉ. राजाभाऊ,

प्रिय बेटी रेणु का लेख पढ़ा। मुझे पूरा लेख बहुत पसंद आया। उसने रत्नागिरी जिले की समस्याओं के मर्म को ठीक से पहचाना है और इस कारण आशा बंधी है कि उसके सभी विचार अब व्यावहारिक रूप में आकर ग्रहण करेंगे। कम-से-कम आपके 19 गांवों में। आपने जो सारी जानकारी एकत्रित की है, वह बहुत ही व्यवस्थित और सब कामों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। निम्नलिखित गांवों की जानकारी पहुंच गई है-

1. ओणनवसे, 2. गुड़घे, 3. तेरेवायंगणी, 4. गावरई, 5. माथगुजर, 6. नानटे, 7. आगरवायंगणी, 8. मळे, 9. बोरिवली, 10. कोलथरे, 11. पंचनदी, 12. दुमदेव, 13. आधारी, 14. वणौशी, 15. चिखलगांव, 16. देवके, 17. किन्हल, 18. ओलगांव और 19. उबर्ले

अपने सहयोगियों के साथ आपने जो व्यवस्थित रूप से आवश्यक जानकारी का संकलन किया है, वह प्रशंसनीय है। साथ ही प्रत्यक्ष कार्य करने की दृष्टि से आधारशिला का काम करनेवाला है। काम की जिस दिशा की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करना चाह रहा था, उस दिशा को प्रिय बेटी रेणु ने अपने लेख में स्वयं अंकित किया है। इस कारण मेरा मन प्रसन्नता एवं संतोष अनुभव कर रहा है। मैं गत माह के प्रवास में बंबई भी गया था। उस समय महेंद्रा एंड महेंद्रा कंपनी के चेयरमैन प्रिय श्री केशव से भेंट हुई थी तथा उन्होंने आपके लिए जीप देने का मुझे वचन भी दिया है। संभवतः मैं फिर से 22 फरवरी को बंबई जा रहा हूँ। उस समय केशव से आग्रह करूंगा कि वे शीघ्र-अतिशीघ्र आपको जीप दे दें। वह जीप महेंद्रा एंड महेंद्रा कंपनी के नाम से होगी, किंतु उसका उपयोग आप कर सकेंगे। कारण, कानून की दृष्टि से वे जीप का दान नहीं कर सकते। हमें अपने काम से मतलब है। जीप किसके नाम से रहती है, उस कारण अपने काम में कोई अंतर नहीं आता।

मैं कल प्रवास के लिए प्रस्थान करूंगा और वापस यहां 27 फरवरी को पहुंचूंगा। उसके बाद ही आपके द्वारा भेजी गई सामग्री का अध्ययन कर पाऊंगा।

18 अन्य लोगों के समाजोपयोगी कार्य में भी नानाजी का सहयोग स्मरणीय है।

विराट पुरुष

19

22 मार्च, 1994

प्रिय डॉ. सुमन,

आपका शिवरात्रि के दिन लिखा पत्र प्राप्त हुआ। आपने चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय में प्रौढ़ शिक्षा के संबंध में कार्य होने की अपेक्षा की है। आपकी अपेक्षा सही है, किंतु चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय की प्रौढ़ शिक्षा के संबंध में प्रचलित अवधारणा से बहुत भिन्न अवधारणा है। आवश्यकता है युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना की। जिस ओर कभी किसी का ध्यान गया है, इसकी मुझे जानकारी नहीं है। मेरा मत है कि सामाजिक पुनर्रचना की अपेक्षा के कारण सभी प्रकार की शिक्षा, विभिन्न प्रकार के प्रयासों पर लोगों का समय, शक्ति और असीम धन व्यय होने के बावजूद समाज अवनति की दिशा में बढ़ रहा है।

इस चिंताजनक अवस्था के कारण चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय ने महिला-पुरुष की शिक्षा की दिशा सामाजिक पुनर्रचना के अनुकूल बनाने का प्रयास किया है। दूसरी चीज वर्तमान काल में शिक्षा को आजीविका अर्जित करने के माध्यम के रूप में ही लोग अपना रहे हैं। जब तक शिक्षा केवल आजीविका के साधन के रूप में प्रचलित रहेगी, तब तक शिक्षा व्यापक रूप ग्रहण नहीं कर सकती।

अतः हिंदी के शब्दों के सही अर्थ प्रयोग किए जाने चाहिए। उस अर्थ में प्रयोग किए जाते हैं या नहीं किए जाते, यह मैं कह नहीं सकता, किंतु जब कोई व्यक्ति सेवा की बात करता है तो मेरी धारणा बनती है कि वह अवैतनिक काम करने के लिए तैयार है। कारण, सेवा अर्थार्जन का वाहक नहीं होती और यदि वेतन की अपेक्षा है तो वह सेवा नहीं कही जा सकती। उसे चाकरी कहना पड़ेगा। आपके पत्र में जो सेवा शब्द का प्रयोग किया गया है, वह किस अर्थ में किया गया है, इसका अनुमान मैं लगा नहीं सकता। कारण, मैं आपसे परिचित नहीं हूँ।

20

06 अप्रैल, 1994

प्रिय बेटा स्मिता,

29 मार्च का पत्र मिला। तुम्हें यहां आना अच्छा लगा। व्यक्तिगत लाभ न होते हुए भी संतोष की तुमने अनुभूति की, यही आज समाज की आवश्यकता है। उस सोच से तुम विभूषित हो, यह मेरे लिए विशेष समाधान का विषय है। कारण, ऐसी सोच वाली बेटा पाना आजकल दुर्लभ है।

जनजीवन मूल्यविहीन होता जा रहा है। ढाई सौ साल पूर्व पश्चिम में औद्योगिक क्रांति हुई थी। उसने विश्वव्यापी मानव जीवन को प्रभावित किया। उपभोगवाद की प्रवृत्ति सब पर सवार

19 डॉ. सुमन को वर्तमान प्रचलित शिक्षण की अनुपयुक्तता बताते हुए युगानुकूल सामाजिक पुनर्रचना के अनुकूल शिक्षण पर जोर।

20 सामाजिक कार्यकर्ता सौ. स्मिता पटवर्धन को प्रेरणास्पद आत्मीय पत्र।

हुई। परिणामस्वरूप व्यावहारिक जीवन से मानवीय मूल्यों का लोप होता गया।

मंदिरों, मठों, कथा-कीर्तनों का क्रम चलता चला आ रहा है, किंतु वे बातें सुनने में अच्छी लगती हैं और श्रवणशक्ति तक सीमित रह गई हैं। व्यावहारिक जीवन में उनका सुपरिणाम दिखाई नहीं देता। परिणामतः नैतिकता जीवन से तिरोहित हो गई है। समाज में विषमता का नग्न तांडव हो रहा है। भौतिक सुख-प्राप्ति के आगे किसी का कदम बढ़ नहीं रहा, अतः हमें मानवीय मूल्यों की पुनर्चना नहीं करनी है, बल्कि मानवीय मूल्यों पर आधारित सामाजिक जीवन की पुनर्चना करनी है।

यह जानकर मुझे खुशी हुई कि तुम अपने सहयोगियों के साथ सभी बातों को सुसंगत रूप में लिपिबद्ध करने जा रही हो। ईश कृपा से तुम में प्रतिभा एवं क्षमता है। अब तुमने मन से यह काम करने का संकल्प लिया है, अतः यह काम होगा और बहुत बढ़िया होगा।

21

11 अप्रैल, 1994

प्रिय श्री कपूर साहब,

दोष ही ढूंढने में लग जाएं तो किसी को भी दोषमुक्त पाना कठिन होगा। अपने समाज में अनेक अवतार माने जाते हैं। असंख्य भक्तगण उनकी पूजा करते हैं, किंतु उन अवतारों में दोष ढूंढने का काम किया गया तो हर अवतार में कोई-न-कोई कमी पाई जाएगी। वस्तुतः यह नकारात्मक वृत्ति है। सृजनात्मक कामों में यह वृत्ति बाधक सिद्ध हुआ करती है।

दीनदयाल शोध संस्थान की तुलना अन्य संस्थाओं या कामों के साथ करना न्यायोचित नहीं होगा। कारण, दीनदयाल शोध संस्थान का काम बहुत भिन्न है। हमें दीनदयाल शोध संस्थान को, उसके लक्ष्य को तथा दायित्वों को पूर्ण रूप से समझना होगा। अन्यथा अपने विश्वविद्यालय को ठीक दिशा में चलाना संभव नहीं होगा।

अपना समाज बहुत पुराना है। सदियों तक उसे गुलामी में रहना पड़ा है, अतः उसमें अनेक कुप्रथाएं एवं अंधविश्वास प्रचलित हैं। गुलामी में लंबा काल बिताने के कारण तथा उसी काल में पश्चिमी देशों में हुई वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति के कारण समाज ने अपने मानवीय जीवन मूल्यों की महत्ता खोई है। विश्वव्यापी भोगप्रवण प्रवृत्ति के कारण अपना समाज विशेषतः पढ़ा-लिखा वर्ग आधुनिकता के नाम पर उसी प्रवृत्ति का शिकार हो गया है। परिणामस्वरूप व्यक्तिवाद की प्रवृत्ति सब पर सवार है। व्यक्ति की व्यापकता अधिकतम परिवार को कटघरे तक पहुंचाती है। धनार्जन के अतिरिक्त जीवन में अन्य मनोभाव नहीं रहा। ऐसी स्थिति में युगानुकूल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पुनर्चना की आवश्यकता रहती है। तभी परंपरागत

21 खरी-खरी बात भी कितनी विनम्रता और दृढ़ता के साथ कही जा सकती है, उसकी एक बानगी संस्थान द्वारा स्थापित ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति राजनारायण कपूर को लिखे पत्र में।

विराट पुरुष

मानवीय जीवन-मूल्यों के आधार पर राष्ट्र और समाज सर्वांगीण उन्नति कर सकता है।

दुर्भाग्य से स्वतंत्र भारत के नेतृत्व ने उपर्युक्त बातों की ओर से मुंह मोड़ लिया। अपने पारिवारिक हितों को आधार बनाकर संभाला गया शासन राजनीति के इस युग में भी लोग परिवारवाद चलाने में संकोच नहीं कर रहे।

अपनी परंपरा, अपने मानवीय जीवन-मूल्य और उपलब्ध संसाधनों का ध्यान रखे बिना विकसित देशों की नकल करने का काम आजाद भारत ने प्रारंभ किया। परिणामस्वरूप समाज में भयानक विषमता एवं बेकारी बढ़ती जा रही है। उसके दुष्परिणाम कितने भयंकर हो रहे हैं, यह सर्वविदित है।

सत्ता को ही देवता माना जा रहा है। शासन एवं प्रशासन के अर्थात् नौकरशाही के द्वारा ही राष्ट्र नवनिर्माण की अपेक्षा की जा रही है। देश में विद्यमान जनशक्ति विशेषतः युवाशक्ति का उपयोग राष्ट्र नवनिर्माण में करने का विचार ही मन में उदित नहीं हो रहा है। परिणामस्वरूप राजनेता सत्ता का मजा ले रहे हैं और राष्ट्र एवं समाज का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है।

उपर्युक्त चिंताग्रस्त परिस्थिति से देश और समाज को उबारने की दिशा में कार्य करने के लिए कोई व्यक्ति या संस्था कदम बढ़ाती हुई दिखाई नहीं देती। इस अति आवश्यक किंतु पूर्णतः अपेक्षित एवं बहुत ही कठिन कार्य का बीड़ा दीनदयाल शोध संस्थान ने उठाया है। इसके लिए आवश्यक है कि देश की ग्रामीण इकाइयों में चेतना जाग्रत की जाए कि हमारे गांव की पूरी आबादी का विकास और उन्नति का काम हम स्थानीय लोगों को ही मिल-जुलकर करना है। नेताओं तथा सरकार पर निर्भर रहकर कुछ नहीं होगा। यह गत पैंतालीस सालों का अनुभव है।

यह काम केवल चेतना जगाने मात्र से भी होनेवाला नहीं है। इसमें हमारी प्रचलित जीवन-रचना बाधक है। उसमें व्यक्ति, परिवार तथा पूरी आबादी में परस्पर पूरकता का अभाव हो गया है। हर परिवार अपने ही हित में सोचता है। अपनी आबादी के शेष लोगों की उसे परवाह नहीं है। ऐसे वातावरण में परस्पर पूरकता की भावना निर्माण करना कितना कठिन कार्य है, इसका अनुमान सहज में ही लगाया जा सकता है। किंतु यह कार्य बहुत कठिन होने के कारण छोड़ा नहीं जा सकता। दृढ़प्रतिज्ञा होकर इसमें जुटना होगा, अन्यथा अपने पूर्वजों ने जो धरोहर हमें सौंपी है, उसके साथ हम अप्रामाणिक सिद्ध होंगे।

परिवार समाज की आधारभूत इकाई है। पति-पत्नी परिवार की धुरी हैं। उनके परस्पर संबंध समाज की मूलभूत इकाई की भावना पर निर्माण करने होंगे। माता-पिता और उनकी संतान में सामाजिक दृष्टि से आवश्यक संस्कारों की नई विधियां विकसित करनी होंगी। परिवार एवं उसके पास-पड़ोस में परस्पर पूरकता की व्यावहारिक प्रक्रिया चलती रहे, इसके लिए उपयुक्त कार्यक्रम आयोजित करने होंगे। तभी आबादी के जीवन में परस्पर पूरकता अंकुरित होगी। इन सब भावनात्मक विधियों को दैनिक व्यवहार के सभी कामों से जोड़ना होगा। तभी समयानुकूल सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक पुनर्रचना संभव होगी। यह दायित्व स्वयं ही शोध संस्थान ने स्वीकार किया है।

ये सब काम प्रयोगात्मक हैं। हर एक प्रयोग सफल नहीं हुआ करता। यह प्रयोग महिला-

समाजशास्त्री

पुरुषों की मानसिकता से संबंधित है। यह मशीन व टूल्स के उपकरणों मात्र से ही संबंधित नहीं है। चारों ओर का वातावरण पूर्णतः प्रतिकूल है। हम प्रचलित प्रवाह की प्रतिकूल दिशा में बढ़ना चाह रहे हैं। इसके बावजूद दीनदयाल शोध संस्थान को पांच से दस प्रतिशत सफलता प्राप्त हो रही है। इसे मैं कम नहीं मानता, किंतु इतनी प्रतिशत सफलता से संतुष्ट भी नहीं हूँ। आप जानते हैं कि लोगों को चटपट नतीजे प्राप्त करने की चाह रहती है, किंतु इस काम में धैर्य बहुत आवश्यक है। लगातार प्रयास करने के बावजूद परिणाम पाने में बहुत विलंब लगता है। लोगों की जो मानसिकता बनी है, वह सदियों का परिणाम है। झट से बदलने की अपेक्षा करना व्यावहारिकता से मेल नहीं खाता। इस कारण युगानुकूल पुनर्गठन के काम में टिका रहना सरल नहीं है। यह काम तथा अन्य कामों में कोई साम्य नहीं है, अतः अन्य कामों से शोध संस्थान के कामों की तुलना नहीं की जा सकती।

मैं सार्वजनिक रूप से अनेक बार कह चुका हूँ कि दीनदयाल शोध संस्थान को अपनी लक्ष्य सिद्धि की दृष्टि से कम-से-कम तैंतीस प्रतिशत सफलता मिलनी चाहिए, किंतु हमें तो पांच से दस प्रतिशत ही सफलता मिल रही है। विफलता बहुत अधिक है। इसके बावजूद लोगों से हमें सहायता मिल रही है, किंतु आपको इस विफलता के जख्मों पर नमक छिड़कने में ही आनंद आता हो तो मुझे उसमें भी आपत्ति नहीं है। कारण, हमने जान-बूझकर यह असंभव कार्य स्वयं ही अपनाया है।

इस पक्ष में तो आपने सीधे-सीधे मुझ पर आरोप लगाया है कि मैं चापलूसों एवं चाटुकारों से घिरा रहता हूँ। इस पर मैं क्या करूँ? पढ़कर हंसी अवश्य आई। कारण, आप स्वयं जानते हैं कि मैं किताब, कलम व कागज से घिरा रहता हूँ।

चाटुकार दो प्रकार के लोगों के चारों ओर मंडराया करते हैं। एक, उनके चारों ओर, जो नियुक्तियाँ किया करते हैं, या उनके चारों ओर जो विशेष अधिकार संपन्न होते हुए अपनी बुद्धि से वस्तुस्थिति को समझने में असमर्थ रहते हैं, अर्थात् बुद्ध होते हैं। प्रथम श्रेणी में तो मैं हूँ नहीं। कारण, नियुक्तियों का काम आप कर रहे हैं। हाँ, मैं आप चाहें तो दूसरी श्रेणी में गिना जा सकूंगा, किंतु जब मैं ही आपके कार्यों में किसी प्रकार हस्तक्षेप नहीं करता तो तथाकथित चाटुकार क्या कर पाएंगे।

आपने अल्पावधि में बहुत बड़ा व व्यापक काम खड़ा किया है, अतः मैंने आपको सलाह दी थी कि अब आप अपने काम को दृढ़मूल करें। हर काम को अपेक्षित दिशा दें, किंतु आप विस्तार में अधिक रुचि रखते हैं। परिणामस्वरूप संचालन कार्यों में कठिनाइयाँ उभर रही होंगी। संभवतः इस कारण किसी अन्य पर दोष मढ़कर कुछ राहत अनुभव करना चाह रहे होंगे। अन्यथा आप द्वारा निर्मित एवं संचालित प्रशासन से आपके ऊबने का क्या कारण हो सकता है? लगता है, आप अपनी ही परछाई से परेशान हैं अन्यथा परेशानी का अन्य कोई कारण नजर नहीं आता।

मुझे आपने आत्मनिरीक्षण की सलाह दी है। मैं उसका स्वागत करता हूँ। मेरी सुविचारित धारणा है कि हर मानव को अपने जीवन की अंतिम सांस तक आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। इस कार्य को मैं सन् 1949 से लगातार करता आ रहा हूँ। फलस्वरूप सन् 1950 में मैंने सरस्वती शिशु मंदिर योजना प्रारंभ की थी। वह बढ़ती गई, आज देश में डेढ़ हजार से अधिक शिशु मंदिर

विराट् पुरुष

काम कर रहे हैं। आत्मनिरीक्षण के फलस्वरूप ही मैं राजनीति से अलग हो गया हूँ, किसी की सलाह से नहीं, आत्मनिरीक्षण का मेरा काम सदैव चलता रहेगा, इसका आप विश्वास रखें।

आप तीक्ष्ण बुद्धि के धनी हैं। लगन के पक्के हैं। दिन-रात परिश्रम करना आपका स्वभाव है। यदि आप अपनी कार्यशैली में थोड़ा सा परिवर्तन करेंगे तो सोने में सुहागेवाली कहावत चरितार्थ हो जाएगी।

आप हर काम पर अपनी मुहर लगाना चाहते हैं। वस्तुतः केंद्रीयकरण अस्थायी सफलता देता है। हिटलर, माओ, स्टालिन इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। सामाजिक सफलता के लिए विकेंद्रीकरण नितांत आवश्यक है।

हम जितने भी काम चला रहे हैं या चलाएंगे, उन सभी कामों के लिए अलग-अलग संचालन समितियाँ बनाएं। उसी प्रकार विश्वविद्यालय के लिए भी समिति अवश्य बनाएं। उसे आप विकास समिति कहें या अंतरंग समिति कहें। सभी निर्णय विचार विनिमय के द्वारा समिति ही किया करे। इससे सामूहिक दायित्व का भाव विकसित होगा। इससे व्यक्तिगत परेशानी कम हो जाएगी।

व्यक्ति चाहे जितनी आयु पा जाए, किंतु उसकी सीमा है अर्थात् व्यक्ति अस्थायी तत्त्व है। संस्था या विश्वविद्यालय तुलनात्मक रूप से स्थायी तत्त्व है। अतः समिति में निरंतरता की व्यवस्था संभव है। इसी कारण समिति द्वारा काम कराना अधिक हित में होगा।

विश्वविद्यालय या अन्य सभी प्रकल्प दीनदयाल शोध संस्थान के हैं। संस्थान की अपनी अवधारणा है। तदनुसार ही हर एक प्रकल्प की तथा प्रकल्पों के अंतर्गत कार्यक्रमों की दिशा बनाए रखना आवश्यक है। उस संबंध में मैंने इस पक्ष में सबकुछ स्पष्ट किया है। विश्वविद्यालय की पुस्तिका में भी इन्हीं सब बातों को शिक्षण के ढांचे में प्रतिपादित किया है।

22

28 जुलाई, 1994

प्रिय श्री शिवराज पाटिलजी,

एक अगस्त को लोकमान्य बालगंगाधर तिलकजी की पुण्यतिथि है। उन्हें श्रद्धांजलियां अर्पण करने का कार्यक्रम देश भर में आयोजित हो रहा है। इसी अवसर पर मैं आपका ध्यान लोकमान्य तिलकजी के जन्म-स्थान चिखलगांव की ओर आकृष्ट कराना चाहता हूँ।

उनका जन्म-स्थान रत्नागिरी जिले में दापोलीनगर से 12 किलोमीटर पर है। स्वराज्य प्राप्ति के बाद सैंतालीस साल बीत गए, किंतु स्वराज्य की सर्वप्रथम घोषणा करनेवाले लोकमान्य

22 ग्राम विकास की नानाजी की विंता को दरशाता पत्र। तत्कालीन लोकसभा अध्यक्ष श्री शिवराज पाटिल को लोकमान्य तिलक के जन्मस्थल रत्नागिरी के चिखलगांव के विकास के लिए आर्थिक सहयोग के लिए आग्रह।

तिलकजी का जन्म-स्थान, उनका गांव और गांव के चारों ओर का क्षेत्र सभी दृष्टियों से अविकसित एवं उपेक्षित पड़ा हुआ है।

कुछ ही साल पूर्व उसी क्षेत्र की एक सुसंस्कृत युवा-दंपती (डॉ. राजा दांडेकर एवं उनकी सुशिक्षित पत्नी और रेणु दांडेकर) चिखलगांव की हालत देखकर बहुत दुःखी हुए। पति-पत्नी दोनों आदर्शवादी युवा हैं। उन्होंने स्वप्रेरणा से संकल्प किया कि वे लोकमान्य तिलक के जन्म-स्थान के विकास में अपना समय लगाएं। उन्हें अपने जीवन की परवाह कम है, अधिक परवाह उस क्षेत्र के विकास की है।

वह क्षेत्र शिक्षा की दृष्टि से भी अत्यधिक उपेक्षित है, अतः उन्होंने अपने पुणे शहर में निवास करनेवाले सहपाठी एवं मित्रों की सहायता से 'लोकमान्य सार्वजनिक धर्मादाय न्यास' की स्थापना की तथा उसे पंजीकृत भी कराया। उसी के अंतर्गत उन्होंने चिखलगांव में 'लोकमान्य विद्यालय' प्रारंभ किया है। सौ. रेणु दांडेकर ने स्वयं अध्यापिका का दायित्व संभाला है तथा डॉ. राजा दांडेकर विद्यालय के लिए आर्थिक सहायता तथा अन्य साधन सामग्री जुटाने में संलग्न हैं।

उस विद्यालय में पास-पड़ोस के 19 गांव से छात्र-छात्राएं पढ़ने के लिए पैदल आते हैं। इसी से सहज में ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उस क्षेत्र की दशा कितनी दयनीय है?

मैं स्वयं जाकर क्षेत्र का अध्ययन कर आया हूँ। मेरे मन में एक ही भावना है कि ऐसे आदर्शवादी युवक-युवतियों के उत्साह में किसी प्रकार की कमी न आने दी जाए, तभी देश की उन्नति की संभावना बढ़ सकती है।

जिनके कठिनतम संघर्ष एवं बलिदान के कारण हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ और शासन करने का सुअवसर मिला है, उनके जन्म-स्थान की किसी भी प्रकार से उपेक्षा न हो। इसके लिए हर संभव प्रयास करना हमारा कर्तव्य है।

मैंने दांडेकर दंपती को सुझाया है कि वे उन 19 गांवों के सर्वांगीण-विकास का कार्य भी प्रारंभ करें, जहां से छात्र-छात्राएं पढ़ने के लिए आते हैं।

वे दोनों साधनविहीन होने के बावजूद इन ग्रामों का भ्रमण करते रहते हैं, अतः मैंने महेंद्रा एंड महेंद्रा कंपनी के चेयरमैन महोदय से अनुरोध किया कि वे एक जीप इस दंपती के काम के लिए प्रदान करें। खुशी की बात है कि उन्होंने अविलंब यह अनुरोध स्वीकार किया और उनकी जीप लोकमान्य तिलकजी की पुण्य-तिथि अर्थात् 1 अगस्त, 1994 को उनके पास पहुंच जाएगी।

मैंने एक पत्र महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री महोदय प्रिय श्री शरद पवारजी को लिखा है। उनसे प्रार्थना की है कि वे इस वर्ष की पुण्य-तिथि के उपलक्ष्य में चिखलगांव के विद्यालय के लिए ग्यारह लाख रुपए का अनुदान दें, जिससे विद्यालय का भवन ठीक किया जा सके तथा छात्र-छात्राओं के लिए अलग-अलग उपयुक्त छात्रावास का निर्माण किया जा सके।

आपसे मेरी सविनय प्रार्थना है कि लोकसभा द्वारा निर्णय लिया गया है कि हर एक संसद सदस्य को उनके क्षेत्र के विकास के लिए एक-एक करोड़ रुपया खर्च करने को मिलेगा। यदि

विराट पुरुष

आप चाहें तो सांसदों से चिखलगांव के विकास के लिए कम-से-कम 25-25 हजार रुपया लेकर स्वराज्य प्राप्ति के संघर्ष में विशेष योगदान देनेवाले के जन्म-स्थान को विकसित करने की दृष्टि से उस धन का उपयोग किया जाए।

इस काम के लिए श्रेष्ठतम 11 लोगों का चयन किया जाए। जिन 11 श्रेष्ठतम लोगों का चयन किया जाए, वे वही हों, जिन्होंने स्वराज्य प्राप्ति में सभी प्रकार की यातनाएं सही हों तथा जिनके जन्म-स्थान एवं स्मारक उपेक्षित पड़े हुए हैं।

यदि यह संभव नहीं है तो कम-से-कम लोकमान्य तिलक के चिखलगांव के लिए आप लोकसभा के सदस्यों से अच्छी राशि एकत्रित कर विकास-कार्य में प्रदान करने की कृपा करें।

23

04 मई, 1995

प्रिय बेटी अलका,

फोन पर तुमसे बात हुई। चिड़ियाघर के लिए तुम्हें और धन की आवश्यकता है, यह ध्यान में आया। मैंने उसकी स्वीकृति दे दी है। प्रिय डॉ. तिवारीजी को पत्र भी लिख दिया है। उन्हें यही लिखा है कि चिड़ियाघर के निर्माण के लिए आवश्यक धन की पूर्ति की जाए।

तुमने फोन पर बताया कि तुम्हें दस हजार रुपए मिल चुके हैं और 40 हजार रुपए और लगनेवाले हैं। फोन पर अधिक बात करना संभव नहीं था, इसीलिए यह पत्र लिख रहा हूं।

किसी भी काम के लिए धन की आवश्यकता पड़ती है और उसकी पूर्ति करना नितांत आवश्यक होता है, इसमें दो राय नहीं हो सकती। इसके बावजूद हमें एक बात अवश्य सोचनी होगी। हम सब लोग सामाजिक कार्य में संलग्न हैं और इस कार्य को संपन्न करने के लिए समाज के द्वारा ही आवश्यक धन-प्राप्ति का प्रयास किया जाता है। जिन पर समाज का विश्वास होता है कि यह दिए गए अनुदान का ठीक उपयोग करेंगे। थोड़ा भी अपव्यय नहीं होने देंगे, उतनी ही अधिक आर्थिक सहायता सामाजिक कार्यों के लिए प्राप्त हुआ करती है। इसमें समाज कार्य का दायित्व संभालनेवालों को जिन बातों पर धन खर्च करना पड़ता है, उनमें से हर एक बात को बहुत विश्लेषण के साथ समझकर ही धन लगाना चाहिए। किसी ने कह दिया कि इतना धन लगेगा और हमने मान लिया यह उचित नहीं है। हमें धन व्यय करते समय यह विशेष ध्यान रखने की आवश्यकता है कि चाहे वह किसी भी प्रकार का काम हो अधिक-से-अधिक बचत करते हुए काम कितना अच्छा हो सकता है, यह हमें सोचना होगा और सोच-समझकर ही व्यय करना होगा।

मेरा कहना यह नहीं है कि और चालीस हजार रुपया नहीं लगेगा। हो सकता है इससे भी

23 कम व्यय में अधिक और अच्छा काम कैसे हो सकता है, इसका नानाजी न केवल खुद प्रयोग करते थे, बल्कि अपने से जुड़े हर कार्यकर्ता को इस प्रयोग के लिए प्रेरित करते थे। सौ. अलका जोग को वनवासी बच्चों की पाठशाला आश्रमशाला में मनोरंजन और ज्ञानवर्धन के लिए बनाई गई योजना पर पत्र के माध्यम से कुछ यही सुझाया गया था।

समाजशास्त्री

अधिक लगे, किंतु उसमें से 10 पैसे भी अपव्यय नहीं हुआ है, इसका हमें समाधान मिलना चाहिए। वैसे बैठे-बैठे मैं मन-ही-मन अनुमान लगा रहा हूँ। उस अनुमान के आधार पर मुझे नहीं लगता कि इतना धन लगेगा। कारण, लगनेवाले फव्वारे हम अलग से लाए हैं। कुछ फव्वारे विश्वविद्यालय में फालतू पड़े हुए हैं। किसी ने जो भी कीमत कह दी और वही कीमत हमने दे दी, वह उचित नहीं है। विश्वविद्यालय में जो पहले फव्वारे आए थे, उनके बिल पड़े होंगे। बिलों में जो कीमत होगी, उसका हमें ध्यान नहीं है। वहां जाकर उन बिलों से कीमत देखी जा सकती है। यह सब करने की जब हमें जरूरत पड़ती है, अर्थात् कहीं आना-जाना पड़ता है तो तुम मोपेड का इस्तेमाल कर सकती हो अर्थात् इन कामों के लिए जो पेट्रोल लगेगा, उसको हम आश्रमशाला के अकाउंट से खर्च कर सकते हैं, किंतु हर काम के लिए जीप बहुत महंगी पड़ती है। हम गरीबों के लिए काम कर रहे हैं, अतः हमारे काम करने के तौर-तरीके भी गरीबों जैसे ही होने चाहिए। सभी जगह आने-जाने के लिए जीप का उपयोग करना उचित नहीं है। इन सब बातों की ओर मैं तुम्हारा ध्यान आकृष्ट कर रहा हूँ कि तुम्हारा जीवन सभी के लिए एक आदर्श स्थापित करे और अनुकरणीय बने। हर एक को लगे कि अलका ताई जैसा आदर्श हम सभी को अपने में स्थापित करना चाहिए, इसीलिए मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।

अब मैं 16 मई की प्रातः चित्रकूट पहुंचूंगा। मेरा विश्वास है कि तब तक तुम्हारे बहुत सारे काम अच्छी स्थिति में देखने को मिलेंगे।

24

08 जून, 1996

प्रिय श्री कपूर साहेब,

आपका 23 मई का कृपा पत्र मिला। मैं जिस काम को छोड़ता हूँ, उसे फिर स्पर्श नहीं करता। अपना परिवार छोड़ा, उस ओर फिर कभी कदम नहीं बढ़ाया। राजनीति छोड़ी, फिर उस ओर नजर नहीं डाली। विश्वविद्यालय छोड़ा है, अब उसकी चिंता नहीं सताती।

शिक्षा क्षेत्र में शासन के सहयोग से अभिनव प्रयोग करने की अभिलाषा से चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय प्रारंभ किया था, किंतु शासन-व्यवस्था अस्थिर होती है। शिक्षा क्षेत्र के प्रयोग स्थायी महत्व के होते हैं। दोनों का मेल नहीं हो सकता। इस बात को मैं सन् 1990-91 में समझ नहीं पाया था। मानव को अनुभव से ही सीखना पड़ता है। किए पर दुःख मनाने के स्थान पर भविष्य सुधारना ही मानव की सफलता का मार्ग है। यही मेरी धारणा है।

देश की शासन-व्यवस्था बिगड़ती जा रही है। वह और अधिक बिगड़नेवाली है। कारण,

24 शासनाधारित प्रकल्प ध्येय प्राप्ति में साधक नहीं होते। समाज निर्माण के लिए अपनी अंतरात्मा की आवाज पर कार्यरत रहना ही श्रेयस्कर है। चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय के कुलपति राजनारायण कपूर को पत्र।

विराट पुरुष

देश की नवरचना का संपूर्ण दारोमदार सरकार को सौंपा गया है। उसमें सर्वसाधारण नागरिकों, विशेषतः युवक-युवतियों के लिए कोई स्थान नहीं है। यह बहुत बड़ी भूल है।

समाज में विशेषतः युवक-युवतियों में जब तक देश की नवरचना का भाव नहीं जगेगा कि कैसे जीवन की बाजी लगाकर स्वराज्य प्राप्ति की गई तब तक वे युगानुकूल नवरचना में नहीं जुटेंगे। यह भावना नहीं आने पर न देश का भविष्य उज्ज्वल बनेगा, न शासन तंत्र ही सुधरेगा। यह मेरा सुविचारित मत है।

मैं अपना शेष जीवन काम में ला रहा हूँ। मेरे काम की यह दिशा बड़े लोगों को उचित अनुभव नहीं होती। इससे मुझे कोई परेशानी नहीं है। मेरी अंतरात्मा जो कहती है, उसी के अनुसार मैं कदम बढ़ाता हूँ।

अनेक लोग मुझे भिन्न मार्ग पर चलने का आग्रह करते हैं। यह उनका मेरे प्रति प्रेम है। इसके लिए मैं उन सबका आभारी हूँ, किंतु मैं अपने काम की दिशा बदल नहीं सकता। अतः प्रेरणा के विपरीत कदम बढ़ाने का मुझमें साहस नहीं है। मैं अपने मार्ग पर चलने के लिए किसी से आग्रह नहीं करता। सभी को यथायोग्य अभिवादन के साथ।

25

03 अक्तूबर, 1996

आदरणीया उषा ताई,

आपका 17 सितंबर का पत्र मिला, खुशी हुई। इंदौर में मुझे पुण्यश्लोक मां अहिल्याबाई का पुरस्कार अवश्य प्राप्त हुआ, किंतु मैं पुरस्कार पाने की आयु पार कर चुका हूँ। कारण, आयु के अस्सी साल पूर्ण कर इक्यासी साल में प्रविष्ट हो रहा हूँ। अब किसी प्रकार का कर्तृत्व करने की मेरी आयु शेष नहीं है।

वस्तुतः पुरस्कार उन लोगों को दिया जाना चाहिए, जो युवक या युवतियां हों। कारण, उन्हें कर्तृत्व करने के लिए प्रोत्साहन मिले और कर्तृत्व करने के लिए पर्याप्त आयु भी हो। इन दोनों दृष्टियों से मैं अयोग्य हूँ, किंतु अत्यधिक आग्रह के कारण मैंने इंदौर जाना स्वीकार किया है। वहां के लोगों ने सर्वसम्मति से जो निर्णय किया था, उसकी अवहेलना करना उचित नहीं था, अतः पुरस्कार की एक लाख रुपयों की राशि स्वीकार तो की, किंतु मैंने इंदौर के रविंद्रालय में उपस्थित जन-समूह को एवं पुरस्कार आयोजित करनेवाली समिति से विनम्र भाव से अनुरोध किया कि देश में महिलाओं का सर्वांगीण विकास करने की दृष्टि से कहीं भी प्रशिक्षण केंद्र नहीं है। पुण्यश्लोक मां अहिल्याबाई के कार्य का केंद्र इंदौर रहा है। वे विशेष उपाधि की शिक्षाविद् नहीं थीं। मराठवाड़ा के छोटे से गांव में धनाग्रे परिवार में पैदा हुई थीं। संयोगवश उनका विवाह युद्ध निपुण मल्हारवा

25 सामाजिक कार्य में सफलतापूर्वक काम के लिए अहिल्याबाई पुरस्कार के संबंध में सुश्री उषा ताई चाटी को पत्र। पुरस्कार राशि का उपयोग स्थानीय कार्यों में ही करने का आग्रह।

समाजशास्त्री

होलकर के पुत्र से हुआ था। मल्हाराव का कर्तृत्व अहिल्याबाई की आश्चर्यजनक ग्रहणशीलता के कारण अहिल्याबाई में प्रतिबिंबित हुआ था। जिसे उन्होंने मल्हाराव और प्रति खंडेराव के निधन के बाद प्रकट किया, अतः वर्तमानकालीन युवतियों के सर्वांगीण विकास के प्रशिक्षण का केंद्र इंदौर को बनाना सर्वोपयुक्त है। आप सब मिलकर महिलाओं के सर्वांगीण विकास का प्रशिक्षण प्रतिष्ठान इंदौर में प्रस्थापित करें और मुझे पुरस्कार के रूप में दी हुई यह राशि उसी काम में लगाएं। आप द्वारा प्रस्थापित यह प्रतिष्ठान एक वर्ष ठीक दिशा में काम करता रहा तो दीनदयाल शोध संस्थान अपनी ओर से 51,000 रुपए इस काम के लिए अर्पित करेगा।

खुशी इस बात की है कि उपस्थित संपूर्ण जनसमूह ने और अहिल्याबाई के नाम से बनी पुरस्कार समिति ने मेरे इस सुझाव का सर्वसम्मति और उल्लास के साथ समर्थन किया और मैंने प्राप्त एक लाख रुपए की राशि वहीं उन्हें समर्पित कर दी। इस कारण पुरस्कार प्राप्ति के लिए मेरा अभिनंदन करने के स्थान पर आप कृपा कर चिरंजीव सौभाग्यवती प्रिय सुमित्रा ताई महाजन का और इंदौर के महिला-पुरुषों का अभिनंदन करें, जिन्होंने इंदौर के महिला प्रशिक्षण प्रतिष्ठान प्रारंभ करना स्वीकार किया है।

26

10 अक्टूबर, 1996

प्रिय बेटी रेणु,

तुम्हारा 2 अक्टूबर का पत्र कल ही प्राप्त हुआ। आदर्श शिक्षक पुरस्कार से तुम विभूषित होने जा रही हो, यह पढ़कर मन बहुत प्रसन्न हुआ। तुम्हारे समान युवतियां इसी प्रकार प्रगति करती रहें यही मेरी कामना है। मेरा विश्वास है कि तुम्हारी व्यस्तता के कारण बच्चों की उपेक्षा नहीं होगी।

मैं बड़े-बड़े नेताओं की ओर दृष्टिपात करता हूं तो मन निराश होता है। कारण, वे बड़े-बड़े कामों में लगकर नेतृत्व के सम्माननीय पदों पर आरुढ़ होते हैं। उनकी कीर्ति भी चारों ओर फैलने लगती है, किंतु उनकी संतान के जीवन में सामाजिकता का लवलेख दिखाई नहीं देता। दुनिया भर के लोगों में राष्ट्र और समाज की उन्नति के लिए उपदेश देते रहना, किंतु अपनी संतान को उस दिशा में न बढ़ाना गत कई दशकों से देखने को मिल रहा है। यदि समाजसेवी लोगों की संतान भी सामाजिकता से वंचित रही तो देश का भविष्य कैसे बनेगा, यह मेरी चिंता का विषय है।

घर-घर में लड़के और लड़कियां जन्म लेती हैं, किंतु विवाह का लक्ष्य क्या है, पिता के नाते या मां के नाते कौन सा दायित्व निभाना है, इसकी भी नई संतान को दिशा प्राप्त होने का मार्ग

26 नानाजी की ओर से सौ. रेणु दांडेकर दापोली को लिखे पत्र में सामाजिक कार्यकर्ता के समाज के साथ अपनी संतान को भी बेहतरवाले दायित्व का बोध कराया गया है। क्योंकि संतान में अच्छे नागरिक का संस्कार माता-पिता द्वारा ही दिया जाता है। तभी वह आगे चलकर सामाजिक दायित्व का निर्वहन करने लायक बन पाएगा।

विराट पुरुष

अवरुद्ध दिखाई देता है।

तुम्हारे बच्चे छोटे अवश्य हैं, किंतु बच्चों की मानसिकता गर्भकाल से नहीं, तो कम-से-कम शैशवावस्था से ही बनना प्रारंभ होती है, यह आदर्श शिक्षिका को बताने की आवश्यकता नहीं है।

खुशी की बात है कि तुम दोनों सामाजिक कार्य में मनोवेग से जुटे हुए हो। आप दोनों को देखकर दोनों बच्चों के मन में सामाजिकता के परिणाम अवश्य आते होंगे, किंतु उतने भर से काम नहीं चलता। आप दोनों मिलकर अपने बेटे और बेटी को क्या बनाना चाहते हैं। वह बनाने की प्रक्रिया आप लोगों ने कौन सी अपना रखी है, इस पर उनका भविष्य का जीवन निर्भर करता है।

उपर्युक्त बातें मैंने यों ही लिख दीं। यदि इन बातों में आप दोनों को लगा हो कि कोई तथ्य है तो विचार करना।

27

13 दिसंबर, 1996

प्रिय बेटी रेणु,

तुम्हारा पत्र मिला, किंतु बहुत विलंब से। पत्र पर लिखी हुई तिथि तथा मिलने की तिथि में सैंतीस दिन का अंतर है। देश का पोस्ट और टेलीग्राफ विभाग कितना अस्त-व्यस्त है, यह कम चिंता की बात नहीं है। यह विभाग सर्वसाधारण लोगों के सदैव निकट संपर्क में रहता है, इसलिए इसकी अस्त-व्यस्त स्थिति ध्यान में आती है, किंतु शेष विभाग इतने निकट संपर्क में नहीं रहते, इसलिए सरकार की इतनी बिगड़ी प्रशासनिक स्थिति ध्यान में कम आती है।

इन सब बातों से लगता है कि इस देश की स्थिति सुधारने का एकमेव मार्ग है देश की छोटी-बड़ी आबादियां स्वयं परस्पर पूरक बनकर अपना-अपना सर्वांगीण विकास करके दिखाएं। सरकार सहायक हो या न हो, उसके कारण इन आबादियों के विकास की गति में विशेष अंतर न आने दें। तभी देश का शासन सुधरेगा और समाज की उन्नति होगी।

उपर्युक्त अनुभूति के कारण ही तुम दोनों मिलकर उस दिशा में काम कर रहे हो, उससे खुशी होती है। तुम दोनों के बारे में गर्व अनुभव होता है। सामाजिक काम के साथ-साथ तुम दोनों से अधिक योग्यता, क्षमता एवं लगन से युक्त चि. प्रिय कैवल्य और मैत्रेयी भी अधिक सक्षम हों, यही मेरी अपेक्षा है। अन्यथा लोग लोकमान्य तिलक और गांधी जैसे बन जाते हैं, किंतु उनकी संतान में वह दिशा अपनाकर उनके समान कर्तृत्व की अपेक्षाएं धूमिल हो जाती हैं। यह देश का दुर्भाग्य ही है। इसी कारण मैं अपनी बेटी रेणु और प्रिय राजा से अपेक्षा करता हूँ कि वह अपनी संतान को समाज-कार्य में अपने से भी ज्यादा बढ़-चढ़कर काम करनेवाला बनाकर दिखाएंगे, इसी विश्वास की अपेक्षा में।

27 पत्राचार में डाक विभाग की शिथिलता और गैर-जिम्मेदाराना व्यवहार चिंता का विषय है। पर उपाय भी है, परस्पर पूरकता के माध्यम से सर्वांगीण विकास।

प्रिय श्री मिश्रीलालजी,

आशा है, आप स्वस्थ एवं प्रसन्न होंगे। काफी लंबा काल बीत गया है, आपसे भेंट नहीं हो पाई। गत वार हम मिले थे, तब आपसे मैंने अनुरोध किया था कि आप एक बार चित्रकूट अवश्य आएँ। चित्रकूट के चारों ओर वनवासियों की संख्या भी पर्याप्त है। इनके पूर्वज प्रभु राम के साथी और सहयोगी रहे हैं। फिर भी इनकी स्थिति किसी अन्य वनवासियों से कम अभावहीन नहीं है। दीनदयाल शोध संस्थान अपनी ओर से इन सबकी स्थिति सुधारने में संलग्न है। इसी कारण मैं आपसे साग्रह अनुरोध करता हूँ कि आप दो-तीन दिन निकालकर दीनदयाल शोध संस्थान द्वारा किए जा रहे प्रयासों को स्वयं देखें और हमारा मार्गदर्शन करें।

मेरी बहुत दिनों से प्रबल इच्छा रही है कि श्री वर्तक साहेब सपत्नीक दीनदयाल शोध संस्थान के साथ जुड़कर काम करें। यह इच्छा साकार होने का समय अब आ पहुँचा है। प्रिय श्री वर्तक साहेब यहां आकर काम में जुट गए हैं, किंतु आपके सहयोग के बिना दीनदयाल शोध संस्थान की चाह पूरी नहीं हो सकती। सौ. प्रिय हेमलता बहन आपके नेतृत्व में कार्य कर रही हैं। आपकी अनुमति के बिना उन्हें मैं यहां आने के लिए कह नहीं सकता।

वस्तुतः जिस आयु में श्री वर्तक साहब और प्रिय हेमलता बहन हैं, उन्हें एक-दूसरे से अलग रहना सुविधाजनक नहीं है। वैसे भी चित्रकूट ऐसा क्षेत्र है, जहां की परंपरा अपनी विशेषता रखती है। प्रभु राम यहां आए। यद्यपि वे वनवास के लिए आए थे, फिर भी सीता माई उनके साथ आई थीं। इसका अर्थ है चित्रकूट में जो भी काम करने के लिए आए, वह अपने साथ पत्नी को भी ले आए अर्थात् पति-पत्नी मिलकर इस क्षेत्र में काम करें।

अब श्री वर्तक साहब ने यहां रहकर काम करने का संकल्प लिया है, अतः हेमलता बहन को भी वहां आना चाहिए। मैं सीधे हेमलता बहन को यहां आने के लिए कहूँ, यह अपनी संगठन की परंपरा के अनुसार नहीं होगा, इसलिए इस पत्र के द्वारा मैं आपसे सविनय अनुरोध कर रहा हूँ कि आप ही प्रिय हेमलता बहनजी को यहां आकर काम करने के लिए सूचित करें।

वस्तुतः आपके पास काम करनेवाले महिला-पुरुषों का अभाव नहीं है। हेमलता बहन को वर्तक साहब के साथ रहना आवश्यक है, अतः आप कृपया यह व्यवस्था करने का कष्ट करें। उपर्युक्त अनुरोध के साथ ही मैं आपसे फिर साग्रहपूर्वक अनुरोध कर रहा हूँ कि आप दो-तीन दिन के लिए चित्रकूट अवश्य आएँ। सभी बंधु-बहनों को यथायोग्य अभिवादन के साथ।

28 वनवासी कल्याण आश्रम के कार्यकर्ता श्री मिश्रीलालजी को लिखे पत्र में सामाजिक कार्य में पति-पत्नी दोनों को एक साथ रहकर काम करने पर जोर दिया गया।

चि. प्रिय सुदाम,

तुम्हारा 15 दिसंबर का पत्र मिला। मैं एक ही बात तुम्हें स्पष्ट रूप से लिखना आवश्यक समझता हूँ। मनुष्य ने जब एक बार किसी लक्ष्य सिद्धि के लिए अपना जीवन समर्पित किया तो उसे स्वयं के बारे में क्षण मात्र के लिए भी सोचना नहीं चाहिए। स्वयं के संबंध में मन में आशंकाओं को क्षण मात्र के लिए भी स्थान दिया तो कार्य के प्रति निष्ठा में अंतर आ जाता है।

समर्पण के बाद सफलता-असफलता के संबंध में विचार करना समर्पित व्यक्ति का दायित्व नहीं होता। उलट ऐसी मानसिकता को मस्तिष्क में स्थान दिया तो ध्येय सिद्धि के लिए आवश्यक क्षमता निर्माण नहीं होती।

संत तुकाराम का जीवन इस दृष्टि से समर्पित व्यक्ति के लिए अनुकरणीय एवं आदर्श है। जब-तब उन्हें अपने परिवार जनों से, विशेषतः पत्नी से झिड़की मिलती थी तो वे उसे भगवान् की कृपा मानते थे। वे भगवान् से कहते थे कि भगवान्, तू इतना दयालु है कि तूने मुझे ऐसी जीवन-संगिनी उपलब्ध कराई है, जिससे मैं उसमें लिप्त न होकर तुम्हारे चरणों में एकाग्र होकर तल्लीन रह पाता हूँ, अन्यथा मैं उसी के मोह-पाश में फंस जाता।

समर्पित व्यक्ति को नित्य प्रति कम-से-कम आधा घंटा किसी-न-किसी का चरित्र या आत्मचरित्र पढ़ने का अभ्यास करना चाहिए। यही एकमेव साधक को अपनी साधना सफल बनाने का सुगमतम, किंतु सर्वाधिक प्रभावी माध्यम है। यह मैं अपने अनुभव से बता रहा हूँ।

मैं स्वयं निम्न कोटि का कार्यकर्ता रहा हूँ। न मुझमें किसी के गुण की रुचि थी, न किसी के स्नेह का मुझे सहारा था। विद्याध्ययन करने की भी सुविधा नहीं थी। भावावेश में ही मैं ध्येय के प्रति समर्पित हुआ। समर्पण के बाद मैंने स्वयं के संबंध में सोचना ही बंद कर दिया। एक ही प्रयास मन में बनाए रखा कि मुझे आजीवन समर्पित जीवन बिताना है। उससे मैं क्षण मात्र भी अलिप्त नहीं रहूंगा। सफलता, असफलता यह मेरा विषय नहीं है। इसी साधना में मैं लगा रहा। इस साधना में 37 वर्ष के काल तक मुझे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली, किंतु उस कारण मैंने कभी भी ग्लानि अनुभव नहीं की। मैंने अपनी समर्पण की भावना पर आंच नहीं आने दी। संभवतः इसी निष्ठा के कारण समर्पित जीवन के 37 साल बीतने के बाद मुझे सौंपे गए काम में किंचित सफलता पाना प्रारंभ हुआ। उस सफलता का भी मैंने कभी

29 सोनदरा गुरुकुलम के संचालक श्री सुदाम भोडवे को मार्गदर्शन। समाज के लिए पूर्ण समर्पण के बाद स्वयं के बारे में किसी भी प्रकार की चिंता करना उचित नहीं।

समाजशास्त्री

मन में श्रेय नहीं लिया। सफलता या असफलता का मैं स्वयं को कारण मानता तो अपने ध्येय और अपने में अंतर कर बैठता। समर्पण में कमी आ जाती। आज भी मैं किसी भी सफलता का कारण स्वयं को नहीं मानता। स्वयं को श्रेय लेना या स्वयं को दोषी समझना समर्पण की भावना में त्रुटि आने देना है। यह मेरी धारणा है और इसी धारणा के कारण मुझ पर दुःखी होने का प्रसंग नहीं आता।

मैंने तुमसे भी अधिक गरीब परिवार में जन्म पाया है। कभी मेरे पास मेरा अपना एक रुपया भी नहीं रहा। आज भी नहीं है। वह आजीवन कभी भी न रहे, यही मेरी आकांक्षा है। आज तक न मैं कभी अपने नाम को सामने लाया हूँ, न लाऊंगा। मरणोपरांत भी मेरे नाम से कुछ भी न हो और मेरा शरीर किसी मेडिकल कॉलेज को सौंप दिया जाए, जिससे विद्यार्थी मानव शरीर का गहन अध्ययन कर सकें। मैं समर्पित हूँ तो फिर मेरा अस्तित्व अलग से कैसे है, जिसके बारे में मैं सोचूँ? मेरा तुम से साग्रह अनुरोध है कि तुम स्वयं के संबंध में विचार करना छोड़ दो और रात-दिन अपने कार्य के प्रति समर्पित रहो। इसी में मानव जीवन की सार्थकता है।

30

24 जुलाई, 1997

प्रिय बेटी नीना,

तुम्हारा 10 जुलाई का पत्र पढ़कर बहुत खुशी हुई। मैंने समाज स्वास्थ्य शिल्पियों के सम्मुख मूलभूत प्रश्न इसी कारण प्रस्तुत किया था कि आप सबके चिंतन की गतिशीलता बढ़े व मानव प्रवृत्ति समझना संभव हो।

तुमने इस समस्या को लेकर काफी विचार किया और उसे अनेक रूपों में देखने का प्रयास किया। तुम्हारे द्वारा प्रस्तुत किया हरेक पहलू तथ्यपूर्ण है, किंतु एक अधिक महत्व की बात नजर से ओझल रही।

मानव अन्य प्राणियों से भिन्नता रखता है। अन्य प्राणियों की उपभोग प्रवृत्ति पूर्णतः प्राकृतिक नियमों से बंधी है। वे उसका उल्लंघन करने की क्षमता नहीं रखते, किंतु मानव इस विषय में स्वतंत्र है। उसके पास मानसिक एवं बौद्धिक शक्ति की अधिकता है। उसकी उपभोग लालसाएं प्रकृति से नियंत्रित नहीं हैं। इस कारण उसकी वासनाएं चाहे जब उद्दीप्त होती हैं, संयम की क्षमता अविकसित रही तो वे अनावर हो जाती है। कानपुर से प्रकाशित होनेवाले 'अमर उजाला' समाचार-पत्र के 23 जुलाई के अंक में प्रथम पृष्ठ पर एक समाचार छपा है। जैन मुनि आचार्य सन्मति सागर नामक गुरु ने अपनी शिष्या संयमभूषणमती से बलात्कार किया, जिसे दो बार

30 समाजशिल्पी दंपती परिवार योजना में कार्यरत कार्यकर्ता को संयम का मूल्य समझाता पत्र।

विराट पुरुष

गर्भपात कराना पड़ा। इस कारण मानव को इस अनावर होनेवाली उपभोग लालसा पर संयम का अंकुश रखने में वस्त्र धारण भी एक साधन है।

31

11 सितंबर, 1997

प्रिय बेटा पिकी,

तुम्हारा 4 सितंबर का हिंदी में लिखा पत्र मिला। तुम्हें मां बनते समय काफी परेशानी हुई, यह जानकर मन उदास हुआ, किंतु चि. प्रिय 'नारायण जय' के अवतरण से खुशी हुई। यद्यपि वह 'आई.सी.यू.' में कुछ काल तक रहेगा। फिर भी ईश्वर की कृपा से ठीक होकर स्वस्थ रूप में हम सभी के आनंद का विषय बनेगा, इसका मुझे विश्वास है।

मैं समझता हूँ कि तुम्हें व प्रिय रुबिन को धक्का लगना स्वाभाविक है, किंतु उस कारण हताश होना उचित नहीं है। मानव-जीवन को सुख-दुःख के झूले पर ही झूलना पड़ता है। उसके लिए हर एक व्यक्ति को मानसिक सिद्धता विकसित करनी जरूरी है।

मैं तो अपने भाग्य से शैशवावस्था में ही अपनी मां से बिछुड़ गया था। परिवार की आर्थिक दुर्दशा अंतहीन थी। मैं जी पाऊंगा, इसकी किसी को आशा नहीं थी। मेरे लिए दूध खरीदकर पिलाना भी संभव नहीं था। रोटी का गूदा पानी में मिलाकर दूध की जगह पिलाया जाता था। पढ़ाई के लिए भी धन नहीं था। संपन्न घरों में काम कर पढ़ाई करता था, किंतु भगवान् की कृपा थी और अपने मन का सहारा था। इस कारण जीवन में शैशवावस्था से प्रारंभ हुई कठिनाइयां मेरे लिए सहायक ही बनीं। अपने अनुभव से मैं तुम दोनों से कहूंगा कि अपने मन को विचलित न होने देना। भगवान् के भरोसे हिम्मत से आगे बढ़ना। खुशी के दिन आए बिना नहीं रहेंगे।

32

28 फरवरी, 1998

माननीय डॉ. चतुर्वेदीजी,

आपका पत्र पाकर खुशी हुई। 21 मार्च को आपके विश्वविद्यालय में उपस्थित होने का मैंने अपना कार्यक्रम बनाया है। दिल्ली से मैं सुबह ट्रेन से ही पहुंचूंगा तथा 21 मार्च की रात्रि में ही वहां से दिल्ली के लिए प्रस्थान करूंगा। गाड़ी की सूचना आरक्षण होते ही मेरे सहयोगी श्री रमेश श्रीवास्तव देंगे।

31 श्री जयनारायण राठी की सुपुत्री का प्रेम संबंध विवाह में परिणत करनेवाले नानाजी का दोनों को कठिनाइयों से विचलित न होने की प्रेरणा देता पत्र।

समाजशास्त्री

यह अपेक्षा की गई है कि मैं दीक्षांत-भाषण लिखकर भेजूं। इसमें एक कठिनाई है। मैंने आज तक कभी लिखकर भाषण नहीं दिया है। सामने बैठे हुए लोगों के चेहरे देखे बिना क्या बोला जाए, यह मैं तय नहीं कर पाता। कारण, मेरा औपचारिकता से संबंध नहीं है। समाज का भविष्य बनानेवाले प्रचलित मार्गों में से कोई मार्ग मुझे पसंद नहीं आता। इस कारण आप मुझे क्षमा करेंगे। समय पर जो बातें वहां के वातावरण के अनुसार कहने का मन होगा, उसके लिए आपकी अनुमति मिलेगी, यह अपेक्षा है।

33

01 जुलाई, 1998

प्रिय श्री बालकृष्णजी,

मेरा पत्र पाकर संभवतः आपको आश्चर्य होगा। आपकी अनुपस्थिति में मैं आपके घर आकर बहुत स्वादिष्ट भोजन कर चुका हूं। प्रिय बेटा पुष्पा से मेरा परिचय हुआ है। कारण, वह वनवासी बंधु-बहनों की सेवा में सक्रिय है। आज मैं आपको विशेष रूप से पत्र लिख रहा हूं।

अपने देश को आजादी मिले पचास साल हो गए हैं। फिर भी हम अपने देश को स्वाधीन अर्थात् स्वावलंबी नहीं बना पाए। कारण, आजादी मिलने के बाद देशभक्ति की भावना किस रूप में प्रकट करें, यह बात सर्वसाधारण नागरिकों के सम्मुख किसी ने रखी नहीं। फलस्वरूप सर्वसाधारण नागरिकों की, विशेषतः युवक-युवतियों की असीम शक्ति देश की नवरचना में लग ही नहीं पाई।

चित्रकूट प्रभु राम के अद्वितीय कार्य का केंद्र रहा है। सत्ता छोड़कर सर्वसाधारण नागरिकों की लोकशक्ति कितनी समर्थ हो सकती है, यह प्रभु राम ने सिद्ध कर दिखाया था। उस शक्ति के सम्मुख बड़े-से-बड़े शक्तिशाली राज्य पराभूत हुए थे, अतः प्रभु राम से प्रेरणा लेकर चित्रकूट के चारों ओर के पांच सौ गांवों में गांव के नागरिक अपने बलबूते पर अपने गांव को सब दृष्टि से संपन्न करके दिखावें यह प्रकल्प चल रहा है। जो कार्य किए जा रहे हैं, उनकी सचित्र पुस्तिका साथ में संलग्न है।

मेरा आपसे साग्रह अनुरोध है कि आप प्रिय बेटा पुष्पा सहित दो-तीन दिन के लिए चित्रकूट आकर यहां चल रहे कामों को स्वयं देखें। आप दोनों आएंगे इस विश्वास में।

32 अजमेर वि.वि. के कुलपति द्वारा वि.वि. के दीक्षांत समारोह में लिखित भाषण देने के आग्रह पर जताया गया असमर्थता पत्र। नानाजी ने स्पष्ट किया कि भाषण श्रोताओं का स्तर, उनकी मानसिकता और ग्रहणशक्ति के आधार पर होता है।

33 कोलकाता के श्री बालकृष्णजी मूंदड़ा को चित्रकूट आने का आमंत्रण देते हुए साधारण नागरिक की लोकशक्ति का वर्णन करते हुए।

प्रिय बंधुओ एवं बहनो,

अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् के स्वर्ण जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में राष्ट्रीय अधिवेशन मुंबई में आयोजित है। इस मंगल प्रसंग पर आपका हार्दिक अभिनंदन।

प्राकृतिक संसाधनों एवं वैज्ञानिक क्षमताओं का उपयोग कर मानव ने कई विस्मयकारी आविष्कार किए हैं। भौतिक सुखोपभोग के नए-नए और सुविधाजनक साधनों के अंबार खड़े किए हैं। विश्व के कोने-कोने से केवल संपर्क प्रस्थापित करने की ही नहीं, अपितु घर बैठे विश्वदर्शन की सुविधा भी उपलब्ध कर रखी है, किंतु सर्वहितकारी जीवन-रचना के अभाव में सर्वसाधारण मानव अधिकाधिक परेशानियों का शिकार बनता जा रहा है।

सन् 1917 में रशिया में साम्यवादी क्रांति हुई थी। विश्व के नौजवान उससे प्रभावित हुए थे। कुछ काल तो ऐसा भी बीता, जिसमें लगा कि वर्गसंघर्ष की आंधी विश्वव्यापी बनेगी, किंतु 70 साल की अल्पावधि में ही विदेशमूलक वर्ग संघर्ष आधारित जीवन रचना साम्यवाद की जन्मभूमि रशिया में ही ढह गई। हिंदू दर्शन के अनुसार अमानवीयता पर आधारित कोई भी जीवन-रचना अधिक काल तक टिका नहीं करती। वर्ग संघर्ष पर आधारित जीवन रचना की विफलता ने इस तथ्य को फिर से उजागर किया है।

साम्यवाद की विफलता के बाद संसार में पूंजीवाद का बोलबाला हो रहा है। इसे अनुकरणीय जीवन रचना मानने का दौर चला है। सभी देश उसी दिशा को अपना रहे हैं। पूंजी के लालच में अधिकाधिक धन बटोरने की स्पर्धा चल पड़ी है। अधिक क्षमतावान देश कमजोर देशों का तथा अधिक समर्थ व्यक्ति सामान्य लोगों का शोषण कर रहे हैं। इस अमानवीय जीवन रचना का भी आगामी 30-35 सालों में चरमरा जाना अवश्यभावी है। उसी के साथ प्रचलित विषमता-मूलक शिक्षा-पद्धति, स्वास्थ्य-व्यवस्था तथा सामाजिक एवं आर्थिक रचना का ढांचा भी बिखर जाएगा।

उस शून्यकाल में वैकल्पिक जीवन-रचना की आवश्यकता होगी। उस दिशाहीन अवस्था में मानवीयता आधारित सर्वहितकारी जीवन-रचना का युगानुकूल एवं अनुकरणीय नमूना उपलब्ध कराने की सिद्धता अभी से करना आवश्यक है। अपना ही यह दायित्व है। कारण 'वसुधैव कुटुम्बकम्' अपना जीवन-दर्शन है। दीनदयाल शोध संस्थान हिंदू जीवन-रचना का आधुनिक काल के लिए उपयुक्त एवं अनुकरणीय नमूना प्रस्तुत करने में संलग्न है। यह सर्वांगपूर्ण नमूना खड़ा करने के लिए प्रभु राम की कर्मभूमि चित्रकूट परिसर का चयन किया गया है। इस कार्य के लिए 'समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवार' योजना का अभिनव माध्यम अपनाया गया है। नव

34 अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् की स्वर्ण जयंती पर कार्यकर्ताओं का अभिनंदन एवं चित्रकूट प्रकल्प देखने का निमंत्रण ताकि प्रेरणा भी मिले और सहयोग भी।

समाजशास्त्री

विवाहित पति-पत्नी के एक सौ ग्यारह जोड़े इस कार्य में लगाने की योजना है। पति और पत्नी दोनों का स्नातक होना जरूरी है। कारण, युगानुकूल जीवन-रचना खड़ी करना अनुसंधानात्मक कार्य है। यह कार्य करते हुए गहन अध्ययन करने की क्षमता आवश्यक है। सामाजिक जीवन-रचना की आधारशिला कुटुंब व्यवस्था है, अतः आदर्श कुटुंबों द्वारा ही अनुकरणीय सामाजिक जीवन-रचना खड़ी की जा सकती है।

तथाकथित प्रगतिशीलता के नाम पर व्यक्तिनिष्ठ आचरण की प्रवृत्ति सर्वव्यापी बन रही है। जनजीवन की सर्वांगीण उन्नति के लिए आवश्यक परस्पर पूरकता की भावना लुप्त हो रही है। पारिवारिक जीवन में भी परस्परपूरकता का अभाव बढ़ रहा है। यही सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं की जड़ है।

दीनदयाल शोध संस्थान ने 'समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवार अभियान' के माध्यम से युगानुकूल एवं अनुकरणीय जीवन-रचना का नमूना उपयुक्त समय पर उपलब्ध कराने का व्रत लिया है।

अभी तक 21 समाज स्वास्थ्य शिल्पी परिवार कार्य में संलग्न हुए हैं। शेष दंपतियों का चयन किया जा रहा है। जहां-जहां समाज-स्वास्थ्य शिल्पी परिवार कार्य कर रहे हैं, उनमें तथा उनके कार्यक्षेत्र के पांच ग्रामों के निवासियों में एकात्मता का वातावरण पनप रहा है। परस्पर पूरकता की दिशा में प्रगति के कारण प्रचलित विषमतामूलक शिक्षा-पद्धति, स्वास्थ्य-व्यवस्था एवं सामाजिक तथा आर्थिक रचना में अपेक्षित सुधार दिखाई देने लगा है।

दीनदयाल शोध संस्थान आप से साग्रह अनुरोध करता है कि समय निकालकर आप इस सामयिक एवं महत्त्वपूर्ण प्रयोग को आकर देखने की कृपा करें। आपका मार्गदर्शन एवं सहयोग इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सफल बनाने में सहायक सिद्ध होगा। कृपया अवश्य पधारिए।

35

22 मार्च, 1999

चि. सौ. प्रिय शुभांगी,

तुम्हारा 11 मार्च का पत्र समाचार-पत्रों की कतरन के साथ मिला। मैं प्रवास में था। रात में ही लौटकर आया हूँ। इस कारण पत्रोत्तर में विलंब हो रहा है।

तरुण भारत में मेरे संबंध में तुमने जो लेख लिखा है, वह मुझे नागपुर में ही पढ़ने को मिला। लेख पढ़ने के बाद मैंने अनुभव किया कि तुम्हारे अंतःकरण का मातृत्व जाग्रत् शब्दों के माध्यम से पेपर पर अंकित हुआ है।

तुम्हारा लेख मेरे लिए प्रेरणा का कारण बना है। जिन गुणों का तुमने अपने लेख में विवरण प्रस्तुत किया है, उन गुणों का मैं अधिकारी नहीं हूँ। यह मैं भली-भांति जानता हूँ, किंतु तुम्हारी

35 संस्थान के नागपुर स्थित बालजगत् प्रकल्प की प्रथम संचालिका डॉ. शुभांगी पानुरकर के तरुण भारत दैनिक में उनके द्वारा नानाजी पर लिखे गए लेख पर सहज व आत्मीयतापूर्ण प्रतिक्रिया।

विराट पुरुष

ममतामयी आकांक्षाओं को पूर्ण करने का मैं अपने जीवन में निरंतर प्रयास करता रहूंगा।

संभवतः तुम्हें इस बात का पता है कि मुझे न अपनी कीर्ति की अभिलाषा है, न उपाधियों से प्रेम है। मुझे 'पद्मविभूषण' देने की घोषणा होने जा रही है, इसका मुझे अनुमान भी नहीं था। समाचार-पत्र में यह बात छपते ही गृह-मंत्रालय से मेरे पास फोन आया कि मैं 'पद्मविभूषण अलंकरण' ग्रहण करने की घोषणा को कृपया निरर्थक न बनाऊं, इसीलिए मैं चुपचाप बैठा रहा।

मैं अपने जीवन में जो कुछ करना चाह रहा हूं, वह प्रचार-प्रसार से संपन्न नहीं हो सकता। आवश्यकता है केवल काम में लगे रहने की। प्रचार माध्यमों के कारण काम के लिए आवश्यक एकाग्रता टिका नहीं करती, इसकी मुझे अपने गत जीवन के कारण अनुभूति है।

तुम्हारा पत्र पाकर बहुत खुशी हुई। किसी भी व्यक्ति को आत्मीयता के शब्द सुख पहुंचाते हैं। मैं इस विषय में अपवाद नहीं हूं।

तुमने 'मुक्तछंद' प्रबंध लिखा है। वह मुझे देखने को नहीं मिला। वैसे भी मैं साहित्यिक नहीं हूं। वह मिल भी जाता तो मैं उसे कितना समझ पाता, यह कह नहीं सकता। मैं तो एक साधारण कार्यकर्ता मात्र हूं। मेरी बेटी का प्रबंध पाने की उत्कंठा अवश्य है। प्रिय मालती ताई एवं आ. राम शेवालकर से तुम्हारे प्रबंध के संबंध में प्रशंसनीय बात सुनकर बहुत खुशी हुई। उसके लिए मैं तुम्हारा मन से अभिनंदन करता हूं।

मैं वृद्ध होता जा रहा हूं। फिर भी मेरा स्वास्थ्य काम करने में अड़चन नहीं आने देता। तुम्हारे जैसी ममतामयी बेटी सपरिवार चित्रकूट आवेगी तो मुझे बहुत खुशी होगी।

मैं बड़े-बड़े लोगों से घिरा रहने में आनंद अनुभव नहीं करता। मैं तो इन औपचारिकताओं से हमेशा दूर रहने में ही संतोष पाता हूं, अतः यह कभी भी न सोचना कि बड़े लोगों से घिरा होने के कारण मुझे अपनी बेटी से मिलने में किसी भी प्रकार की बाधा उपस्थित होगी।

36

28 जुलाई, 1999

प्रिय श्री विमलजी,

कलकत्ता नहीं आ पाने के कारण बहुत दिनों से आपसे भेंट नहीं हो पाई। आपका भी सपरिवार चित्रकूट आने का कार्यक्रम बन नहीं पाया।

इधर काम करते हुए ऐसा अनुभव हुआ कि काम में लगे सभी कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त समाज के घटकों को भी, हम क्या कर रहे हैं, क्यों कर रहे हैं और उसके परिणाम क्या होंगे, की जानकारी होना जरूरी था।

अपने काम की सफलता पूर्णतः जनसहयोग पर निर्भर है। हमें उन लोगों का सहयोग तब तक

36 कोलकाता के श्री विमल लाटजी से अपेक्षा कि वे वहां के प्रतिष्ठित लोगों को संस्थान के कार्य से परिचित कराएं।

समाजशास्त्री

प्राप्त नहीं हो सकता, जब तक उन्हें अपने काम की जानकारी न हो तथा उसके लाभ की अनुभूति न हो।

उपर्युक्त आवश्यकता की अनुभूति ने चित्रकूट प्रकल्प की संपूर्ण जानकारी देनेवाली पुस्तिका छापने के लिए प्रोत्साहित किया। तदनुसार यह पुस्तिका तैयार की गई है, जिसकी प्रतिलिपि इस पत्र के साथ संलग्न है, प्राप्ति की सूचना देंगे यह विश्वास है।

मैं आपसे अपेक्षा करना चाहता हूँ कि कलकत्ते में जिन महानुभावों के द्वारा हम लोगों को इस काम में सहयोग प्राप्त हो सकता है, उन सभी को यह पुस्तिका पहुंचाई जा सके। तो इसका उपयोग अवश्य होगा, किंतु आप जानते ही हैं कि आजकल कागज-छपाई आदि काफी महंगी हो रही है।

दीनदयाल शोध संस्थान सबके सहयोग के आधार पर ही चल रहा है। इस कारण हम यह पुस्तिका एक सौ रुपये योगदान-राशि के रूप में लेकर ही दे रहे हैं, इसलिए आप अपने सभी साथी-सहयोगियों के द्वारा कलकत्ते के विशेष लोगों को यह पुस्तिका पहुंचाने की कृपा करें। इस काम के लिए आपको कितनी पुस्तिकाओं की आवश्यकता होगी, यह सूचित कर सकेंगे तो सुविधा होगी।

37

06 मार्च, 2001

प्रिय श्री नरेंद्र मोहनजी,

प्रति रविवार 'विचार प्रवाह' शीर्षक के अंतर्गत आप लेखमाला लिखते आ रहे हैं। वह विचार प्रेरक होने के कारण मैं पढ़ता हूँ। गत 25 फरवरी को आपने अपने 'विचार प्रवाह' द्वारा अति महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया है। 'कैसे समाप्त होगा भ्रष्टाचार?' यह प्रश्न मुझे भी व्यथित करता रहा है।

भ्रष्टाचार ने संसार के सभी देशों के समाजों को कम-अधिक मात्रा में अपना शिकार बनाया है। उसका निर्मूलन करने का उपाय अभी तक कोई कर नहीं पाया है। कारण, भ्रष्टाचार के मूल स्रोत को ही नजरअंदाज किया जा रहा है। भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने की क्षमता भारतीय तत्त्वज्ञान में विद्यमान है, किंतु हम लोगों ने उसे भुला दिया है।

प्रकृति ने मानव को मानवीयता अर्थात् संवेदनशीलता का वरदान दिया है। इसकी अनुभूति के लिए अनुकूल वातावरण का अभाव हुआ है। परिणामस्वरूप मानव मानवीयता से ही वंचित होता जा रहा है। पास-पड़ोस में विपन्नावस्था में जीनेवालों को देखकर भी संपन्न लोगों के मन में पीड़ा अंकुरित नहीं होती। कारण, प्रकृति प्रदत्त संवेदनशीलता मानव मन को झकझोरने में

37 हिंदी दैनिक जागरण के संपादक श्री नरेंद्र मोहन के भ्रष्टाचार विषय पर लिखे लेख पर प्रतिक्रिया। जन्म लेनेवाले हर बच्चे पर जब तक सामाजिक दायित्वबोध के संस्कार नहीं डाले जाते तब तक भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाना संभव नहीं है।

विराट पुरुष

असमर्थ हो रही है। चारों ओर का वातावरण संवेदनशीलता के प्रतिकूल है।

वस्तुतः मानव अकेले रह नहीं पाता। सामाजिकता मानव की अनिवार्यता है। मानव अपनी आजीविका भी बिना समाज के सहारे चला नहीं सकता। समाज की कोई-न-कोई आवश्यकता पूरी करके ही वह अपनी रोजी-रोटी कमा पाता है। इस प्रकार से परस्पर पूरकता ही मानव के व्यक्तित्व एवं समाज के अस्तित्व का आधार है। प्रचलित सामाजिक जीवन में इसी का अभाव हुआ है। मानव मूलतः सामाजिक प्राणी होते हुए भी अधिकाधिक व्यक्तिवादी बनकर सबके लिए परेशानी का कारण बन रहा है।

पारिवारिक जीवन में भी व्यक्तिवाद हावी है। इस कारण दादा-दादी तथा पोता-पोती को मिलकर रहनेवाले परिवारों का दर्शन दुर्लभ हुआ है। पति-पत्नी और छोटे बच्चों तक ही पारिवारिक जीवन सिकुड़ गया है। फलस्वरूप समाज दिखाई अवश्य देता है, किंतु प्रचलित समाज व्यावहारिक धरातल पर सामाजिक जीवन से शून्य हुआ है।

समाज के घटक जन्म पाते हैं परिवारों में, किंतु जन्म देनेवाले माता-पिता इस तथ्य को भूल गए हैं। वे अपने पुत्र या पुत्री का पालन-पोषण करते समय उनमें सामाजिक दायित्वबोध के संस्कार नहीं देते। वे स्वयं भी सामाजिक दायित्व का पालन नहीं करते। माता-पिता अपने बच्चों का जीवन खुशहाल कैसे हो, इसी एक बात को ध्यान में रखते हैं। यही स्थिति समाज के अनपढ़ लोगों में ही नहीं, अपितु शिक्षित, संपन्न, विचारक, लेखक, उपदेशक तथा सामाजिक एवं राजनीतिक नेताओं के परिवारों में भी प्रचलित है। हर व्यक्ति अपनी खुशहाली के लिए दूसरों की हानि की परवाह नहीं करता। ऐसी स्थिति में सक्षम का संपन्न होना व अक्षम का पीड़ित रहना अवश्यंभावी है। यही वृत्ति भ्रष्टाचार की जड़ है।

स्वतंत्र भारत में सामाजिक दायित्वबोध तथा परस्पर पूरकता का व्यवहार प्रचलित करने का अभियान चलाया जाना आवश्यक था। दुर्भाग्य है कि देश के नेताओं ने इस मूलभूत आवश्यकता का अनुभव ही नहीं किया। इसके लिए मैं अपने को भी दोषी मानता हूँ। कारण, उस समय मैं इस तथ्य को समझ नहीं पाया था।

हमारा परंपरागत तत्त्वज्ञान हजारों साल के अनुभवों पर आधारित है। तभी तो 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' तथा 'सर्वभूत हितैरतः' का मार्गदर्शक संदेश हमारे ऋषि-मुनियों ने हमें दिया था। हमारे तत्त्वज्ञान ने मानव को मानव मानकर ही व्यवहार करने की शिक्षा दी थी। हमने न किसी को मुसलमान माना था, न ईसाई, न मानव-मानव में किसी प्रकार का भेद किया था। इसी विशेषता के फलस्वरूप भारत को विश्वगुरु का गौरव प्राप्त था। हमारे पूर्वजों ने व्यक्तिगत कुटुंब एवं वसुधैव कुटुंब का मेल बिठाया था, किंतु हमने स्वयं अपने तत्त्वज्ञान को संकुचित बनाया है। भ्रष्टाचार उसी का दुष्परिणाम है।

जब तक हर परिवार में जन्म पानेवाले बच्चों को सामाजिक दायित्वबोध के लिए अनुकूल वातावरण उपलब्ध नहीं होगा, भ्रष्टाचार समाप्त नहीं होगा। हर परिवार में सामाजिक दायित्व का

व्यवहार प्रचलित करना असंभव नहीं है। कारण, भारतीय परंपरा के परिणामस्वरूप यह बात हमारे रक्त में विद्यमान है। उसे पुनर्जागृत करने की आवश्यकता है। यह कार्य संभव है। मैं अपने कुछ ही सालों के अनुभव के आधार पर विश्वास के साथ यह कह रहा हूँ।

38

29 अक्टूबर, 2001

डॉ. सुष्मिताजी,

‘सेवा सुरभि’ का ‘नारी शक्ति’ विशेषांक प्रकाशित हो रहा है। यह जानकर खुशी हुई। भारत की पुरातनतम अखंड परंपरा में मातृशक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। मानव के मानवीय गुणों के प्रेरणास्रोत के रूप में विद्या की देवी शारदा, संपदा की देवी लक्ष्मी तथा पराक्रम की देवी दुर्गा को माना गया है। इन मान्यताओं का आधार गहन एवं आधारभूत चिंतन है। यदि इस परंपरा को आगे बढ़ाया गया तो नारी सशक्तीकरण की आवश्यकता अनुभव नहीं होगी। नारी ही पुरुष की जन्मदात्री मां है। वह ही मानव के शरीर को ही नहीं, मस्तिष्क एवं हृदय को भी ढालती है। यदि मातृत्व सक्षम-सबल रहा तो पुरुष प्रभावी समाज की संभावना ही नहीं रहेगी।

मेरी शुभकामनाएं हैं कि यह नारी शक्ति विशेषांक इस दिशा में दुनिया को शिक्षित करेगा।

39

16 नवंबर, 2001

प्रिय श्री सुरेंद्र सिंहजी,

आपका पत्र पाकर खुशी हुई। मैंने राज्यसभा में नामांकन स्वीकार किया है—एक निश्चित लक्ष्य सम्मुख रखकर। देश में लगभग 800 सांसद हैं। उन्हें सब प्रकार की सुविधाएं उपलब्ध हैं। अपने-अपने चुनाव-क्षेत्र में समाज कल्याण के कार्यों के लिए उन्हें 2 करोड़ रुपया प्रतिवर्ष खर्च करने को मिलता है। यदि इन 800 सांसदों द्वारा प्रामाणिकता के साथ अपने-अपने चुनाव-क्षेत्र में काम किया जाए तो देश का नक्शा बदला जा सकता है। इसका एक उदाहरण मैं प्रस्तुत करना चाह रहा हूँ।

38 भारतीय परंपरा में तो मातृशक्ति को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। फिर नारी सशक्तीकरण का अर्थ क्या?

39 श्री सुरेंद्र सिंहजी चौहान राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के अखिल भारतीय अधिकारी रहे और मध्य प्रदेश के नरसिंहपुर जिले में एक ग्राम विकास प्रकल्प के जनक हैं। उनके पत्र के उत्तर में नानाजी ने राज्यसभा के लिए नामांकन स्वीकार करने के पीछे का उद्देश्य समग्र विकास में सांसदों की भागीदारी के लिए उदाहरण प्रस्तुत करना बताया।

विराट पुरुष

मैं जानता हूँ कि अन्य सांसद मेरे कहने के अनुसार शायद ही काम करें। फिर भी काम कैसे करना चाहिए, इसका एक नमूना प्रस्तुत हो सकता है, अतः मेरा राज्यसभा में बना रहना मैं आवश्यक मानता हूँ।

सांसदों की तिगुनी वेतन-वृद्धि का प्रस्ताव अमान्य करने का मैंने सभी सांसदों से अनुरोध किया था। अधिकांश लोगों ने मेरा विचार लिखित रूप से मान्य किया, किंतु अपनी पार्टी का आदेश पालन करने की विवशता उन्होंने लिखी है। कम-से-कम उचित बात लोगों के ध्यान में लाना मेरे कारण इसीलिए संभव हो रहा है कि मैं भी एक सांसद हूँ। वैसे सांसद होने के कारण मुझे कोई विशेष सुविधा नहीं, अपितु काम का बोझ ही बढ़ रहा है। मैं संघ का स्वयंसेवक हूँ। न मुझे नाम की लालसा है, न कीर्ति की, न प्रतिष्ठा की। मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ एक प्रामाणिक एवं निष्ठावान स्वयंसेवक के नाते ही कर रहा हूँ। हो सकता है, मेरी समझ गलत हो, किंतु जो लग रहा है, उतनी ही मेरी क्षमता है।

40

06 फरवरी, 2002

प्रिय श्री बृजलालजी,

आपका व्यथित हृदय से लिखा पत्र मिला, पढ़कर मन उदास हुआ।

श्री विलासराव ने मेरा पत्र पाने का उत्तर अवश्य दिया, किंतु उन्होंने कार्य करने के संबंध में उत्तर में किसी भी प्रकार का उल्लेख नहीं किया। आपने डेंटल कॉलेज के लिए सभी औपचारिकताएँ पूरी कीं। विशाल भवन का निर्माण हुआ है। डेंटल कॉलेज को शासकीय अनुमति न मिली तो इसका क्या किया जाए, यह प्रश्न आपके सम्मुख उपस्थित है। यह चिंता का विषय है।

जिस लगन एवं परिश्रम से आपने अपने आर्थिक साधन से जो कर दिखाया है, वह अद्वितीय है, किंतु उसका अंतिम रूप ग्रहण न हो पाने से व्यथित होना स्वाभाविक है। मैं स्वयं इस दृष्टि से कुछ भी न कर पाया, इसका मुझे स्वयं कम दुःख नहीं है।

संभवतः आप मेरे विचारों से पूर्ण अवगत नहीं हैं। मैं सामाजिक कार्य के लिए समर्पित हूँ। मेरे समर्पण का अर्थ है—स्वयं को शून्यवत् मानना। संघ का आदेश पालन कर अनिच्छा होते हुए सन् 1951 में राजनीति के क्षेत्र में काम करना प्रारंभ किया था। ईश्वर की कृपा से जो भी दायित्व मिला, उसे सफलता के साथ निभा पाया, किंतु उसका श्रेय मैंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। जब सन् 1977 में केंद्रीय मंत्री बनाया जाने लगा तो संघ की इच्छा के प्रतिकूल मैंने राजनीति से ही स्वयं को अलग कर लिया। अनेक जगहों पर मेरे नाम से कुछ चीजें खड़ी

40 श्री बृजलालजी खुराना नानाजी के पैतृक गांव के समीप हिंगोली जिले के रहनेवाले हैं एवं नानाजी को पितातुल्य मानते थे।

करने की लोग कोशिश करते रहे, किंतु मैंने अपनी 'विल' रजिस्टर कर घोषणा की कि मेरे नाम से मेरे जीते जी या मेरे मरने के बाद भी मेरे नाम से कोई स्मारक नहीं बनाया जाएगा। आज तक मैंने जितनी भी चीजें खड़ी की हैं, उन पर मेरा नाम कहीं भी आपको नहीं मिलेगा, न कहीं मेरा फोटो लगा दिखेगा। समर्पित जीवन का अर्थ ही है कि स्वयं के संबंध में इस दुनिया में कोई भी निशानी न छोड़ना, अतः डेंटल हॉस्पिटल के लिए मेरा नाम देने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता।

अब महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री बदल गए हैं। मैं 5 मार्च को मुंबई में हूँ। उस समय मुख्यमंत्री श्री सुशील कुमार शिंदे मुंबई में होंगे तो मैं उनसे मिलकर हिंगोली के डेंटल हॉस्पिटल के लिए बातचीत करूंगा। यदि श्री शिंदे मिलेंगे तो मैं आपको भी 5 मार्च को मुंबई बुला लूंगा।

41

11 फरवरी, 2002

वि. प्रिय विकास,

तुम्हारा 30 जनवरी, 2002 का पत्र मिला। साथ में तीन ऑडियो कैसेट्स भी प्राप्त हुए। नियमित अभ्यास न होते हुए भी तुम हिंदी में बहुत अच्छा लेखन कर सकते हो, यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ।

तुमने चित्रकूट में जिन प्रकल्पों को देखा, उन्हें उसी रूप में समझा, जिस उद्देश्य से इन प्रकल्पों का शुभारंभ किया गया है। हर प्रकल्प के प्रमुखों के नाम भी तुमने ठीक से स्मरण रखे हैं। इससे मुझे अनुभूति हुई कि तुमने मन लगाकर प्रकल्पों का अवलोकन किया है। इससे मुझे बहुत खुशी हुई। सर्वसाधारण लोग चित्रकूट में चल रहे प्रकल्पों को देखते हैं, प्रशंसा भी करते हैं, किंतु हर प्रकल्प का मर्म समझ नहीं पाते। कारण, सबकी दृष्टि मूलभूत नहीं होती। वे आंखों से तो देखते हैं, खोजपूर्ण दृष्टि का उपयोग नहीं करते। तुमने हर प्रकल्प के मर्म को छूने का प्रयास किया है। इससे लगा कि तुम यदि इस प्रकार के कामों में रुचि लेते तो संभवतः तुम स्वयं ऐसे कामों को कर पाओगे।

मैंने बचपन से तरुणावस्था तक तुम्हारे परिवार में केवल अन्न-पानी ही ग्रहण नहीं किया, अपितु स्व. तात्या काका तथा काकी से माता-पिता का भरपूर प्यार भी पाया है।

मैंने जब अपना जीवन संघ-कार्य के लिए अर्पित किया था तो चार-पांच सालों में एकाध बार मैं घर आता था। ति. प्रिय वहिणी मातृवत् प्रेम से 'सांजोरियां' बनाकर मुझे खिलाया करती थीं। उसी अन्न पर आप सब लोग भी पले हैं। इसी कारण तुम मेरे कार्य के मर्म को समझ पाए, ऐसा मुझे लगता है।

41 किसी भी कार्य को खोजपूर्ण दृष्टि से देखने पर ही उसका सही आकलन किया जा सकता है। श्री विकास पाठक से नानाजी के पारिवारिक संबंध थे।

विराट पुरुष

इस पत्र को मैं अधिक लंबा नहीं बनाता। प्रिय बेटी माधवी का विवाह होने जा रहा है। विवाह की एक रूढ़ि बन गई है। हर एक युवती और युवक का विवाह किया जाता है, किंतु विवाह क्यों, यह समझने और समझाने का प्रयास नहीं होता। इस कारण विवाह के परिणाम सामाजिक जीवन में अपेक्षित फल प्रदान नहीं करते।

तुम और वैशाली दोनों शिक्षित या सुशिक्षित माने जा सकते हो। तुमने अपने बच्चों को भी शिक्षा प्रदान की है, किंतु क्या तुम दोनों ने अपनी बेटी प्रिय माधवी को यह बताया है कि तुम्हारा विवाह क्यों कराया जा रहा है?

मेरी दृष्टि से यह बहुत महत्व का विषय है। मानव को छोड़कर अन्य प्राणियों में विवाह नहीं होता। मानव प्राणी के लिए ही विवाह की प्रथा क्यों प्रारंभ हुई? क्या इस पर जन्म देनेवाले माता-पिता, पढ़ानेवाले गुरुजन तथा नेतृत्व करनेवाले नेतागण स्वतंत्रता पाने के बाद भी विचार नहीं करते।

यदि मैं पढ़ी-लिखी माधवी को पूछता कि तुम विवाह क्यों कर रही हो, तो वह क्या उत्तर देती? प्रतिवर्ष लाखों विवाह होते हैं। विवाहबद्ध युवक-युवतियों को विवाह का मूल हेतु ही ज्ञात नहीं होता। ऐसी स्थिति में देश का भविष्य कैसे बनेगा?

यह प्रश्न मैंने इसलिए उपस्थित किया है कि तुम इन बातों के संबंध में सोचने की क्षमता रखते हो। तुम्हारा पत्र पढ़कर मुझे इसकी अनुभूति हुई है। शेष कुशल।

42

27 फरवरी, 2002

प्रिय बेटी सुहासिनी,

तुम्हारा पत्र 21 फरवरी को दिल्ली पहुंचा था। मैं कल ही चित्रकूट से यहां आया। तब तुम्हारा पत्र पढ़ने को मिला, खुशी हुई। वस्तुतः मैं भी सभी के समान व्यक्ति हूँ। अत्यंत अभावग्रस्त परिवार में जन्म मिला। अति अल्पायु में मां स्वर्गवासी हुई। बाद में पिताजी भी नहीं रहे, अतः किसी के यहां गाय-भैंस का दूध निकालकर कुछ पैसा पाकर पढ़ाई करता रहा। इस कारण अभावग्रस्तों के प्रति मेरे मन में विशेष सहानुभूति बचपन से ही अंकुरित होकर बढ़ती गई। वह अभी भी उसी रूप में कायम है।

जन्म से मनुष्य छोटा या बड़ा नहीं होता। जो जितना बड़ा लक्ष्य सम्मुख रखकर कार्य करेगा, उस बड़े कार्य के कारण वह उतना बड़ा माना जाता है, किंतु मूलतः वह सबके समान ही रहा करता है।

मनुष्य जितना बड़ा दायित्व संभालेगा, उसके अंदर की ईश्वर प्रदत्त क्षमताएं अपने आप प्रकट होने लगती हैं। वस्तुतः मैं स्वीकृत किया दायित्व निभा रहा हूँ। इसलिए मेरे अंदर प्रकृति की क्षमताएं प्रकट हो रही हैं। तुम भी यदि कोई महान् दायित्व स्वीकार कर उसे निभाने में जुटोगी

42 श्रीमती सुहासिनी सोलापुर में शिवमंगल शहा प्रतिष्ठान में बालिकाओं के विकास के लिए कार्यरत रहीं।

तो तुम्हारे अंदर की सुप्त क्षमताएं प्रकट होने लगेंगी। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं।

43

27 फरवरी, 2002

प्रिय बेटी मंजू सिंह,

तुम्हारा पत्र मिला, अच्छा किया। अपनी मनःस्थिति प्रकट की। तुमने अपने बच्चे गुरुकुल से हटा लिए, इसकी जानकारी मुझे मिली थी, किंतु क्यों हटा लिए, इसके कारण मैं नहीं गया। मैंने सब काम प्रिय श्री भरतजी को सौंप दिए हैं। आयु अधिक होने पर यही करना समझदारी है।

माता-पिता की समझदारी के कारण पारिवारिक जीवन में सुसंस्कारों का वातावरण संभव हो सकता है। यह होना बच्चों के विकास के लिए जरूरी भी है, किंतु परिवारों में सामाजिक जीवन का अभ्यास संभव नहीं होता, जबकि बच्चों को अपना संपूर्ण जीवन सदा-सर्वदा समाज में ही बिताना पड़ता है।

उपर्युक्त आवश्यकता पूर्ति के लिए ही पुरातन काल में गुरुकुल की शिक्षा-पद्धति विकसित हुई थी। उसमें बच्चों को 24 घंटे विभिन्न परिवारों से आए बच्चों के साथ मिल-जुलकर रहने का अभ्यास होता था। इससे सामाजिक जीवन पुष्ट होता था।

नए युग में यह महत्वपूर्ण पहलू नजरअंदाज कर दिया गया है। उसके दुष्परिणाम समाज को भुगतने पड़ रहे हैं। पारिवारिक सुसंस्कारों के बावजूद नई पीढ़ी व्यक्तिवादी बन रही है। सामाजिक जीवन बिखर रहा है। इसका स्वावलंबन अभियान की पुस्तिका में विस्तार से उल्लेख किया है। संभवतः तुमने उसे समझने का प्रयास नहीं किया है।

मैं किसी से सुनी-सुनाई बातों पर नहीं जाता। कारण, उससे सब प्रकार के लोगों को साथ में लेकर चलना संभव नहीं होता। मैं तो नित्यप्रति अपने ही गिरेबान में झांकता रहता हूं। अपने से कोई ऐसा काम न हो, जिससे पछताना पड़े या किसी के दिल को कष्ट पहुंचे। इस कारण मुझे कभी भी संदेह नहीं होता कि कोई मेरे बारे में गलत धारणा बनाएगा। जब तुमने गलती नहीं की तो परेशान या बेचैन क्यों हो रही हो?

44

21 मार्च, 2002

चि. प्रिय बंडू,

चि. प्रिय भरत, प्रिय श्री यादव काका, प्रिय श्री शेंबेकर तथा प्रिय श्री अभय महाजन बीड़ जिले

43 गुरुकुल शिक्षा-पद्धति को त्यागने के कारण ही नई पीढ़ी व्यक्तिवादी बन रही है। कार्यकर्ता मंजू सिंह को पत्र।

विराट पुरुष

में सभी कार्यों को ठीक दिशा प्रदान करने के लिए आए थे। अंबाजोगाई में इन सभी लोगों ने बैठक ली थी तथा सभी को यह कल्पना दी थी कि संपूर्ण जिले में समन्वय का काम तुम्हें सौंपा गया है। इस बैठक के बाद कुछ समय बीत गया है, इसीलिए मैं आज पत्र लिख रहा हूँ।

मैं अनौपचारिक रूप से बीड़ जिले के काम की एवं कृषि विज्ञान केंद्र के काम की तुम्हारे द्वारा की हुई नवीन रचना जानना चाहता हूँ। तुम्हारा तथा चि.सौ. प्रिय मृदुल का और मेरा संबंध केवल कार्यकर्ता के रूप में ही नहीं है, अपितु मेरे अपने बच्चों के रूप में भी है। इस कारण तुम दोनों से प्रभावशाली तथा विशेषता युक्त कार्य की मुझे अपेक्षा है।

जिस अन्न-पानी पर मैं पला हूँ, उसी परिवार में तुम्हारा भी जन्म हुआ है। स्व. आभा एवं बाजीराव मेरे बचपन से ही अभिन्न साथी रहे हैं। वे सामाजिक कार्य में भले ही कुछ न कर पाए हों, किंतु मैं जो कुछ भी कर पा रहा हूँ, उनका अखंड स्नेह मेरी प्रेरणा का आधार रहा है।

अब अधिक आयु होने के कारण मैं थकने की स्थिति में आ रहा हूँ, किंतु देश की परिस्थिति मुझे पिछले कुछ दिनों से सोने नहीं दे रही है। उसके उपाय का मार्ग वर्तमान नेतृत्व में से किसी को भी सूझता दिखाई नहीं देता। इस कारण संभवतः इस आयु में कोई नया कदम बढ़ाना पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में मैं तुम दोनों से विशेष अपेक्षा कर रहा हूँ। वह अपेक्षा है—मराठवाड़ा का बीड़ जिला प्रगति का विशेष और अनुकरणीय नमूना बने। तुम दोनों में इस दृष्टि से क्षमता है। कारण, तुम दोनों बुद्धिमान, कल्पनाशील एवं स्वस्थ शरीर के धनी हो और इसी कारण तुम लोगों ने काम की जो रचना की होगी, उसे मैं विस्तृत रूप में जानना चाहता हूँ।

तुम दोनों के काम में किसी प्रकार की बाधा न पहुंचे, इसीलिए प्रधान सचिव के नाते प्रिय भरत को, सचिव के नाते प्रिय शेंबेकरजी को और वयोवृद्ध के नाते प्रिय यादव काका को एक साथ भेजा था, अतः बीड़ के पूरे काम की रचना कर यथाशीघ्र सूचित करना। मुझे तुम दोनों से इस काम के अतिरिक्त कुछ भी नहीं चाहिए। यद्यपि स्वाभाविक रूप से भी देखा गया तो मेरी वृद्धावस्था के आधार तुम ही दोनों हो, किंतु उसकी मुझे आवश्यकता पड़नेवाली नहीं है।

45

01 अप्रैल, 2002

चि. सौ. प्रिय बेटी स्मिता,

तुम्हारा पत्र तथा चित्र पाकर खुशी हुई। काम की अधिकता तथा आयु की वृद्धि मेरे काम

44 श्री गणेश पाठक उपाख्य बंडू भैया नानाजी के एक बालसखा के बेटे हैं और ग्रामोदय प्रकल्प गोंडा में समाजशिल्पी परिवार के रूप में 15 वर्ष और उसके पश्चात् बीड़ में सचिव के नाते कार्य करते रहे हैं।

समाजशास्त्री

की गति को घटा रही है। इस कारण तुम्हारे पत्र का उत्तर देने में विलंब हो रहा है। मुझे विश्वास है, मेरी अवस्था को अनुभव कर तुम नाराज नहीं होगी।

स्व. प्रिय भिड़ेजी संतपुरुष थे। मेरा और उनका संबंध सन् 1943 से रहा है। नागपुर से प्रचारक निकलकर वे मेरे ही विभाग में (गोरखपुर) जिला प्रचारक के रूप में पहुंचे थे। युवावस्था होते हुए भी वे स्वभावतः सरल, गंभीर तथा परिश्रमशील थे। तब से उनके जीवन के अंत तक मेरा उनका बहुत निकट का संबंध रहा है। इतने लंबे काम में मैंने कभी भी उन्हें क्रोधित होते नहीं देखा। किसी भी बात के लिए किसी अन्य को दोष देना, उनके स्वभाव में ही नहीं था। अध्ययन और चिंतन उनकी रग-रग में समाया हुआ था। स्नेह संबंध जोड़ना, उनकी विशेषता थी। उन्हें लेकर आप लोगों ने जो कार्यक्रम किया, उससे मुझे बहुत सुख मिला।

महिला सशक्तीकरण के संबंध में मैंने कभी विचार नहीं किया। कारण, महिला को कोई अन्य शक्ति प्रदान करेगा, ऐसा मुझे नहीं लगता। भारतीय जीवन-पद्धति में महिला ही सब प्रकार के आवश्यक मानवीय गुणों की प्रदाता रही है। विद्या की देवी सरस्वती, समृद्धि की देवी लक्ष्मी तथा पराक्रम की देवी दुर्गा, जो स्वयं शक्ति प्रदाता है, क्या उसका सशक्तीकरण कोई संस्था कर सकती है?

जो संस्था सशक्तीकरण के कार्यक्रम संचालित कर रही है, उससे महिला वर्ग को कुछ लाभ हो सकता हो तो वह करने में मुझे किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं होगी। शेष कुशल।

46

09 मई, 2002

प्रिय डॉ. विकासजी,

आदरणीय श्री बाबा का आशीर्वाद प्राप्त है, यह जानकर अतीव प्रसन्नता हुई। बाबा के प्रति मैं अपने मन में सदैव श्रद्धा रखता आया हूं। निस्स्वार्थ भाव से बिना किसी स्वार्थ के आजीवन संलग्न रहना एक अनोखी तपस्या है। आधुनिक काल में ऐसे तपस्वियों का दर्शन दुर्लभ हुआ है।

मैं जब कभी लोगों को आदर्श पारिवारिक जीवन का उदाहरण देता हूं तो देश भर में केवल दो ही लोगों के नाम का उल्लेख कर पाता हूं। देश में बड़े-से-बड़े नेताओं को देखने का

45 सौ. स्मिता पटवर्धन अनेक प्रकार के सामाजिक विकास के प्रकल्पों से संबंधित हैं। संस्थान से भी सक्रिय संबंध। उन्हें लिखे पत्र में नानाजी ने प्रेरक संदेश दिया कि नारी को कोई अन्य क्या शक्ति प्रदान करेगा, वह तो स्वयं सभी मानवीय गुणों की प्रदाता है।

46 प्रख्यात समाजसेवी बाबा आमटे के सुपुत्र डा. विकास आमटे को लिखे पत्र में आदर्श पारिवारिक जीवन की कल्पना।

विराट पुरुष

मुझे अवसर मिला है, किंतु किसी की भी संतान अपने पिताजी के समान समाजसेवा में या देशभक्ति में संलग्न दिखाई नहीं देती। यह परंपरा चलानेवाले दो ही अनुकरणीय व्यक्तित्व वर्तमान काल में देखने को मिलते हैं। वे हैं—आदरणीय बाबा आम्टे तथा दूसरे हैं वर्धा के बंग महोदय। दोनों की संतानों ने अपने पिताजी का आदर्श कायम रखा है, अन्यथा किसी के भी परिवार में सामाजिक दायित्व-बोध का अंश भी दिखाई नहीं देता। ऐसे महापुरुष का आशीर्वाद मैं प्रभुतुल्य मानता हूं।

मैं अभी कुछ दिन पूर्व निश्चित कार्यक्रमों के कारण अत्यधिक व्यस्त हूं, अतः मैं जून के प्रथम सप्ताह में आदरणीय बाबा के दर्शन के लिए आऊंगा। निश्चित तिथि की सूचना भेजूंगा।

47

21 मई, 2002

प्रिय श्री राजाभाऊ,

आपका विस्तृत पत्र मिला। दीनदयाल शोध संस्थान स्वैच्छिक संस्था है। उसकी आयु किसी भी व्यक्ति की आयु से अधिक लंबी होना स्वाभाविक है। परिवार की स्थिति भी ऐसी ही होती है, अतः किसी भी परिवार या संस्था का संचालन एक ही व्यक्ति के द्वारा संभव नहीं होता।

मेरा अपना सुविचारित मत है कि व्यक्ति को साठ वर्ष के बाद अधिकार पद पर रहना नहीं चाहिए। यह बात मैं सार्वजनिक रूप से 20 अप्रैल, 1978 को कह चुका हूं। इसलिए मैंने दीनदयाल शोध संस्थान के अधिकार पद से स्वयं को मुक्त करा लिया है। इतना ही नहीं, मैं दीनदयाल शोध संस्थान के प्रबंध समिति की सदस्यता से भी स्वेच्छा से मुक्त हुआ हूं। आपत्य के नाते मेरा शोध संस्थान के साथ जो आत्मीयता का संबंध है, वह तो आजीवन बना रहेगा—यह स्वाभाविक ही है, किंतु दीनदयाल शोध संस्थान के संचालन का अधिकार मैंने अपने पास नहीं रखा।

कृषि विज्ञान केंद्र (आई.सी.ए.आर.) के द्वारा दीनदयाल शोध संस्थान को प्राप्त है। अंबाजोगाई के अतिरिक्त अन्य तीन कृषि विज्ञान केंद्र भी संस्थान के पास हैं। उनमें से किसी भी कृषि विज्ञान केंद्र को अन्य संस्था को देना दीनदयाल शोध संस्थान के अधिकार में नहीं है।

प्रिय यादव काका तथा मैंने जितना भी संभव था दीनदयाल शोध संस्थान को आगे बढ़ाने का काम किया, किंतु हम दोनों ने विचारपूर्वक संस्थान के संचालन का दायित्व युवा वर्ग को सौंप दिया है। इसी धारणा से कि वे हमसे अधिक अच्छा काम करेंगे तथा उसकी प्रगति को बढ़ाते रहेंगे। हमारी उनके साथ पूरी तरह से सद्भावना है तथा बनी रहेगी। यह परंपराओं को स्थायित्व प्रदान करने की प्रणाली है।

व्यक्तिगत संतति के प्रति अपना लगाव स्थायी रहता है, किंतु विवाह के बाद अपनी बेटियों

47 बीड़ जिले में संस्थान के संचालक के रूप में कार्य कर चुके श्री राजाभाऊ धाट को हर काम के लिए नई पीढ़ी को सामने लाने की आवश्यकता पर बल।

पर हम स्वयं का अधिकार समाप्त कर लेते हैं। इसी भावना के साथ कि उन्हें हम जिनके अधिकार में सौंप रहे हैं, वे उनका भविष्य हमसे अधिक उज्ज्वल बनाएं। मैं समझता हूँ कि मुझे आपके पत्र के उत्तर में इससे अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

48

कोयंबटूर, 03 अगस्त, 1984

प्रिय ज्योति,

तुम्हारा विवाह हुआ। विवाह के बाद तुम्हारे साथ इस बारे में कुछ चर्चा हुई नहीं। इसलिए आज इस बारे में लिख रहा हूँ।

विवाह। मनुष्य के जीवन का, अपने संस्कृति के अनुसार एक अभूतपूर्व परिवर्तन का क्षण। फिर भी विवाह को इस दृष्टिकोण से कोई सोचना नहीं। विवाह को एक साधारण सी बात समझा जाता है। इस बारे में गहराई से सोचने की किसी को आवश्यकता भी महसूस नहीं होती। वास्तविकता यह है कि विवाह विधि सामाजिक जीवन का आधारस्तंभ व मानव जीवन का दायित्वपूर्ण शुभारंभ है। लेकिन शादी को सिर्फ पति-पत्नी तक ही सीमित रखा गया। इसी वजह से संपूर्ण समाज कितना विघटित हो रहा है। लेकिन विचारवंत व राष्ट्रनेता भी इस बारे में सोचने पर उदासीन हैं, यह चिंता का विषय है।

सेक्स। विश्व के प्रत्येक प्राणीमात्र का अभिन्न अंग है। संपूर्ण सृष्टि इसी पर निर्भर है। इस बाबत मानवेतर प्राणी प्रकृतिबद्ध सीमा में स्वभावतः आबद्ध रहते हैं। मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जिसको इस बाबत प्रकृति ने स्वाधीन बनाया है। ऐसा क्यों? कोई इस बारे में सोचता है? इस बारे में बोलना या विचार करना अश्लील व त्याज्य माना जाता है। लेकिन ऐसा होता तो अपनी संस्कृति सर्वांगीण व शाश्वत हो ही नहीं सकती। यह सच है कि इस विषय के बारे में कहां, कैसे और किससे कहना इसका ध्यान रखना आवश्यक है। यही तो अपनी संस्कृति की सीख है। लेकिन अनेक शतकों की परंपरा बन गई है, इसलिए इस बाबत में उचित दृष्टिकोण एक-दूसरे को देना त्याज्य होकर रहा है। इस कारण कितना नुकसान हो रहा है, समाज का और साथ में पति-पत्नी का भी। इस बारे में सोचने की कोई पहल करता नहीं।

लेकिन हम इस बात पर विचार करेंगे, क्योंकि इस पर ही समाज की नींव रखी गई है। प्रकृति कहो या ईश्वर ने मानव को सेक्स के बारे में स्वाधीनता दी है। इस स्वाधीनता के साथ मनुष्य को मन, बुद्धि व आत्मा जो निसर्गतः प्राप्त है जो अन्य प्राणियों को प्राप्त नहीं है। जिन प्राणियों में बुद्धि है, वे सिर्फ खाद्य व भोग तक ही अति सीमित हैं। इन तीनों की महत्ता सहज ध्यान में आती है। मानव को जन्म के साथ यानी शरीर के साथ जैसी वासना मिली है, वैसे ही संवेदना भी मिली है। इसलिए मनुष्य में विवेकशील बनने की क्षमता है। इसलिए मनुष्य वासनाओं को नियंत्रित कर सकता है। संयमी बन सकता है। इससे ही संस्कृति का विकास होता रहता है। समाज अखंड

48 नातिन ज्योति के विवाहोपरांत विवाह का व्यापक अर्थ समझाता पत्र।

विराट पुरुष

प्रगति कर सकता है। विवाह पद्धति में यही तो मर्म छिपा है। लेकिन आज यही मर्म उपेक्षित है।

इसलिए मेरा मानना है कि शादी सिर्फ पति-पत्नी का विषय नहीं, न केवल परिवार का ही विषय है।

वास्तव में, यह विषय पूर्णतः सामाजिक है। लेकिन दुर्भाग्य है कि इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। लेकिन ज्योति। प्रत्येक बात में दूसरों को दोष देकर समाधान माननेवालों में से हम नहीं हैं। जो किसी ने नहीं किया या कोई करता नहीं, वह कितना ही कठिन क्यों न हो, वह हम करके दिखाएंगे, यही तो अपना निश्चय है। यही अपना सच्चा आदर्शवाद। मैं तुमको अपने पास लेकर आया, केवल अपनी पोती करके नहीं तो तुम्हारा एक सामान्य परिवार में जन्म होकर भी तुम जीवन में कुछ विशेष कर दिखाओ इस पावन हेतु से। मैं तुम्हें केवल अपनी पोती ही नहीं मानता, तुम मेरी एक आत्मीय, आदर्शवादी कार्यकर्त्री के नाते विकसित हो। इसलिए मेरे साथ आजीवन रहनेवाली मेरी अभिन्न बेटा, इस अपेक्षा से। दैवयोग ही कितना उत्तम! अपना प्रिय प्रमोद भी मिला। मन, ध्येयनिष्ठा हो तो ध्येय पूर्ति के लिए ईश्वर ही सहायक बनता है। इसमें तुम्हारे पिता प्रिय चि. राम का मुझ पर अडिग विश्वास भी उतना ही सहायक है। इसलिए प्रिय प्रमोद केवल तुम्हारा पति या मेरा दामाद ही नहीं, एक ध्येयवादी परिश्रमशील सहयोगी है। इस सुखद मनस्थिति के साथ मैं तुम्हारे साथ यह पत्र-व्यवहार प्रारंभ करता हूँ। यह पत्र-व्यवहार सामाजिक पुनर्रचना के अपने ध्येय सिद्धि में सहायक होगा। प्रत्यक्ष व्यावहारिक जीवन में नए-नए प्रयोग कर विवाह विधि को युगानुरूप बनाने में और वैवाहिक जीवन को योग्य दिशा देने अर्थात् सामाजिक जीवन की नींव पक्की करने की कामगिरी निभाने में इसका बहुत लाभ होगा।

इस दृष्टि से मेरा यह पहला पत्र। तुम दोनों इसे पढ़कर इस पर मनन, चिंतन करना।

मैं जितना स्पष्ट तुमको लिख सकता हूँ, उतना अन्य किसी को नहीं। लेकिन तुम विवाहबद्ध होनेवाली या जो हो चुकी, ऐसी तुम्हारी अपनी सहेलियां या परिचितों को इस दृष्टिकोण के बारे में अपने साथ सम्मिलित कर सकती हो। इसको प्रेरित करने का प्रयास किया तो उसमें से एक भी अपनी सहयोगी बनी तो हम अपने उद्देश्य में सफल हो जाएंगे। शुरू में यह काम कठिन जरूर है, लेकिन तुम जानती हो कि बड़ी-बड़ी नदियों का उद्गम स्थान कितना छोटा होता है। अस्तु। इस बार इतना ही। यह पत्र संभाल के रखना। काम आएगा।

49

25 मई, 2002

चि. प्रिय विकास,

तुम्हारा पत्र मिला। प्रिय बेटा माधवी का विवाह सानंद संपन्न हुआ, जानकर खुशी हुई।

49 विवाह केवल एक औपचारिक रिवाज बनकर रह गया है। उसके पीछे की मूलभावना है सामाजिक दायित्व बोधयुक्त जीवन-रचना। इसका विस्मरण हो रहा है। श्री विकास पाठक को पत्र।

समाजशास्त्री

‘कन्यादान’ शब्द प्रयोग मैं पसंद नहीं करता। कन्या कोई जड़ वस्तु नहीं है। शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा का वह एकात्म एवं प्राणवान रूप है। उसे स्वयं के विषय में निर्णय लेने की क्षमता है। वह अपना व अपनी संतान का भविष्य बनाने का सामर्थ्य रखती है। किसी के हाथ का खिलौना बनने की उसे जरूरत नहीं है। विवाह के बाद वह नई सृष्टि रच सकती है। उसका दान कैसे किया जा सकता है?

प्रचलित प्रथाओं में कौन सी प्रथा चलाए रखने लायक है और कौन सी प्रथा को तिलांजलि देना आवश्यक है, इसका निर्णय पढ़े-लिखे लोगों को करना चाहिए। यह नहीं किया गया तो हमारी अपनी गतिशील संस्कृति गतिहीन बन जाएगी। दुर्भाग्य से वही हो रहा है। अपनी भाषा में युगानुकूल शब्द समाविष्ट है। इस शब्द से उपर्युक्त दिशा का बोध होता है।

विवाहोपरांत कन्या की विदाई का प्रसंग उपस्थित होता है। उस समय अंतःकरण की भावनाएं उभर आती हैं। जन्म से ही सतत सान्निध्य में रही, विकसित हुई, युवावस्था को प्राप्त हुई और अपने से अभिन्न बनी अपनी ही लुभावनी कन्या पराए परिवार में नववधू बनी है। यह देख माता-पिता का तथा परिजनों का दिल भर आना स्वाभाविक है। इसमें वियोग के दुःख का कितना भाग है और कन्या के जीवन की सार्थकता की अनुभूति के आनंद का कितना भाग है, यह निश्चित नहीं किया जा सकता। विदाई के समय मैं भी रहता तो संभवतः अपने आंसू न रोक पाता। यह अवस्था सहज और स्वाभाविक है।

आप लोग चित्रकूट आए थे। चित्रकूट से जाने से पूर्व मेरे साथ बैठे थे। प्रिय बेटी माधवी के विवाह में मैं आऊं, इसका आग्रह कर रहे थे। स्वयं माधवी ने भी आने के लिए कहा था।

उस समय मैंने एक प्रश्न पूछा था। संभव है उसका आपको स्मरण हो।

विवाह करने के पीछे कौन सी प्रेरणा है? विवाह क्यों किया जाता है? किंतु आपमें से किसी ने भी उत्तर नहीं दिया। सबने मौन साध लिया था। मैंने भी उस विषय को वहीं विराम दिया था। किंतु मैं आज इस पत्र में इस बात का उल्लेख करना चाहता हूँ। कारण, तुम्हें अभी चि. प्रिय आनंद एवं मानसी का विवाह करना है। तुम लोग प्रातः चाय के साथ समाचार-पत्र पर नजर अवश्य डालते होंगे। दुनिया भर की खबरें पढ़ते होंगे। उन खबरों की प्रतिक्रिया क्षणमात्र के लिए क्यों न हो, आपके मन-मस्तिष्क में उभरती होगी।

महाराष्ट्र में मराठा कहनेवालों का राजनीति में अर्थात् प्रशासन में अधिक प्रभाव है। रिपब्लिकन पार्टी अपनी जाति को आगे बढ़ाना चाहती है। तमिलनाडु में विशिष्ट जाति के लोग चाहे करुणानिधि के नाम से या जयललिता के नाम से शासन पर हावी हैं। बिहार में लालू यादव राज कर रहा है तो उत्तर प्रदेश में मुलायम सिंह यादव अपना जोर आजमा रहा है। हरियाणा में जाटों का नेता ओमप्रकाश चौटाला राज्य संभाल रहा है। वही स्थिति लगभग सभी प्रदेशों में है। इसकी जानकारी तुमको है। अभी-अभी मायावती ने उत्तर प्रदेश का शासन संभाला है और उसमें हम लोगों के विचार के लोग भी शासन सत्ता में सम्मिलित हुए हैं।

इसलाम के माननेवालों ने पाकिस्तान बना लिया है और भारत में भी वे सत्ता-संघर्ष में अपनी

विराट पुरुष

शक्ति का प्रभावी प्रदर्शन कर रहे हैं। खंडित भारत स्वतंत्र होने के बाद भारतीय आधार पर कौन काम कर रहा है? जातिवाद, क्षेत्रीयवाद एवं संप्रदायवाद के सहारे सत्ता हथियाने का तांडव हो रहा है। इस अवस्था में क्या खंडित भारत की अखंडता बचेगी?

ऐसा क्यों हो रहा है, क्या कभी तुमने सोचा है? तुम पढ़े-लिखे हो। सुखानंद से परिवार चला रहे हो और पढ़ने-लिखने में रुचि रखते हो। तुम्हें यह भी लगता है कि तुमने अपनी संतान को पढ़ा-लिखाकर योग्य बनाया है। तुम्हारी योग्यता और कर्तृत्व में मुझे संदेह नहीं है। इसके बावजूद मैं एक प्रश्न पूछ रहा हूँ।

अपना समाज है। उसे सनातन समाज के नाम से भी जाना जाता है। इसका अर्थ है कि अपना समाज कब प्रारंभ हुआ, इसकी इतिहास को जानकारी नहीं है तथा अनंत काल तक चलता रहेगा, यह हम लोगों की धारणा है। इसी कारण हम उसे सनातन मानते हैं।

मैं तुम्हें पूछना चाहता हूँ कि अपने समाज का सनातनत्व कायम रखने का दायित्व किनके जिम्मे है? जिनके जिम्मे है, क्या वे अपना दायित्व निभा रहे हैं?

थोड़ा विचार करो। समाज के घटक कहां से आ रहे हैं? समाज के घटकों का जन्म हर परिवार में होता है। जन्म वही देते हैं, जो विवाहबद्ध होते हैं। क्या विवाहबद्ध होनेवालों को यह अनुभूति है कि उनका बेटा या बेटी जितनी उनकी संतान है, उतनी ही समाज की दायित्वपूर्ण घटक है? उसे समाज के उत्थान के लिए भी काम करना है? क्या विवाह के समय वधू बननेवाली युवती और वर बननेवाले युवक को इसकी जानकारी उनके माता-पिता देते हैं? परिणामस्वरूप स्वतंत्रता पाने के बाद नेता बनकर शासन करनेवाले लोग न देश की परवाह करते हैं, न समाज की। यह स्थिति इसी प्रकार चलती रही तो क्या भारत कभी उन्नत होगा? इस संबंध में हर एक माता-पिता को सोचना आवश्यक नहीं है?

तुम्हारा एक संवेदनशील पिता होने के कारण मैं अपने इस पत्र में इन बातों का उल्लेख कर रहा हूँ।

50

10 जून, 2002

प्रिय प्रो. रंगनाथजी नवले,

हम लोग 7 जून को विवाहोपरांत कृषि विज्ञान केंद्र के स्थान पर पहुंचे। वहां अच्छी संख्या में प्रभावी लोगों को देखकर विश्वास हुआ कि नंदूरबार का कृषि विज्ञान केंद्र द्रुतगति से अपेक्षित प्रगति करेगा।

आपने कार्यकर्ताओं की बैठक भी रखी थी। पता नहीं उस बैठक में मेरे द्वारा कहीं बातें आप लोगों को रुचिकर लगीं या नहीं। हम लोग पुरानी परंपरा की बातें करते हैं, अतः मैं पुरानी

50 नन्दूरबार (महाराष्ट्र) के प्रो० रंगनाथजी को लिखे पत्र में महिलाओं के प्रति नानाजी के विचारों की एक बानगी।

बात को याद कराना चाहता हूँ।

आद्य शंकराचार्य देश का भ्रमण कर रहे थे। उत्तर भारत में प्रवास करते समय वे विद्वान् मंडन मिश्र के यहां पहुंचे। शंकराचार्य के विचारों के प्रतिकूल विचार मंडन मिश्र के थे। उन विचारों को शंकराचार्य अनुपयोगी मानते थे, अतः मंडन मिश्र एवं शंकराचार्य में विवाद होने की स्थिति आई। उस विवाद का निर्णय कौन करे, यह प्रश्न उपस्थित हुआ। मंडन मिश्र की पत्नी भारती ने उस विवाद की मध्यस्थता की।

उपर्युक्त घटना का अर्थ है कि हमारी पुरातन परंपरा में महिलाएं देश और समाज के कार्य से अनभिज्ञ नहीं रहा करती थीं। प्रत्यक्ष घटनेवाली गतिविधियों से परिचित नहीं रहती तो ऐसे विवादों की मध्यस्थता कैसे कर पाती? नई पीढ़ी का विकास बिना महिलाओं की योग्यता के नहीं हो सकता।

इसी कारण मैंने कार्यकर्ताओं के सम्मुख इस पहलू को प्रस्तुत करना आवश्यक समझा। संभवतः उसी कारण डॉक्टर गजानन डांगे दोपहर में अपने साथ अपनी पत्नी सौ. कल्याणी बहन को लाकर परिचय करा पाए थे।

51

06 जुलाई, 2002

चि. प्रिय राजेंद्र सिंह,

तुम्हें अपने जीवन में 3 जुलाई, 2002 को बहुत खतरनाक अनुभव करने को मिला। प्रिय बेटी मंजू को तो अपहरणकर्ताओं ने रात में 9 बजे के लगभग छोड़ दिया था। उसने रात्रि में अकेले ही साहस के साथ पटनी तक आने की हिम्मत की। संभवतः मामूली महिला घबराकर रोती हुई निराशा की शिकार हो जाती। मंजू के चले जाने के बाद तुम अकेले ही अपहरणकर्ताओं के बीच बंदी बने रहे।

तुमने अपना संतुलन तनिक भी न खोते हुए आत्मविश्वास के साथ इस खतरनाक परिस्थिति का मुकाबला किया। इस कारण मेरे मन में तुम्हारे लिए सुखद अभिमान अनुभव हो रहा है। तुमने अपनी सूझबूझ से अपहरणकर्ताओं के साथ सार्थक बातचीत की। अपने आदर्श के प्रति खतरनाक लोगों के दिल में भी जगह बनाने में तुम सफल रहे। अपनी ध्येयपूर्ति के लिए अपना बलिदान देने की तुम्हारी सिद्धता ने आतंकवादियों को प्रभावित किया तथा स्वयं ही बिना किसी अनुचित व्यवहार के तुम्हें उन लोगों ने मुक्त किया।

51 कठिनतम परिस्थिति में भी मन का संतुलन कायम रखते हुए दृढ़विश्वास और आत्मीयता के बल पर डकैतों के मन में भी परिवर्तन लाया जा सकता है। श्रेष्ठतम व्यवहार के लिए राजेंद्र सिंह का मनपूर्वक अभिनंदन। श्री राजेंद्र सिंह व उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मंजू सिंह ने 15 वर्ष समाजशिल्पी दंपती के रूप में कार्य किया। चित्रकूट में काम करते हुए डकैतों ने उनका अपहरण कर लिया था। वर्तमान में संस्थान द्वारा संचालित जनशिक्षण संस्था में कार्यरत।

विराट पुरुष

तुम्हारे अपहरण की खबर पाकर पूरे इलाके के महिला-पुरुष बेचैन हुए। वे रात-दिन तुम्हारी खोज में जंगल का चप्पा-चप्पा छानते रहे। यह तुम्हारी निस्स्वार्थ भाव से की गई जनसेवा का सुपरिणाम है। तुम्हें सुरक्षित रूप में पाकर उनकी खुशी की सीमा नहीं रही। इसका अर्थ है कि अपने द्वारा किए जा रहे काम की लोगों को, विशेषतः अभावग्रस्तों को कितनी जरूरत है। तुम्हारे इस अद्भुत साहस ने अपने सभी समाजशिल्पी दंपतियों को बहुत उत्साह प्रदान किया है। वस्तुतः स्व. दीनदयालजी के तपस्वी जीवन का यह प्रतिफल है।

इस संकटपूर्ण परिस्थिति में चि. प्रिय भरतजी द्वारा जिस दूरदृष्टि एवं कुशलता से कार्य हुआ है, यह अपने आपमें एक अनोखी मिसाल है।

52

08 जुलाई, 2002

प्रिय श्री जगदीशजी,

तुम्हारा पत्र तथा तुम्हारे द्वारा बनाई हुई योजना प्राप्त हुई। मैं लंबे प्रवास में था। इस कारण पत्र का उत्तर विलंब से दे रहा हूं।

तुम्हें समाज के अभावग्रस्त विद्यार्थियों की चिंता है। उनकी सहायता के लिए तुम्हारा अंतःकरण व्यथित होकर अग्रसर होता है, यह बहुत अभिनंदनीय बात है, किंतु हमें अपने समाज के अभावग्रस्तों के लिए किस रूप में सहायक बनना चाहिए, इस पर विचार करने की आवश्यकता है। समाज में अभावग्रस्तों की कठिनाइयों को दूर करना समाजसेवा का अभिनंदनीय कार्य है, किंतु समाज द्वारा प्राप्त सुविधाओं से केवल उनका व्यक्तिगत भविष्य अच्छा बनने से समाजसेवा का कार्य सफल नहीं होता। वे अपने व्यक्तिगत जीवन को सुखमय अवश्य बनाते हैं, किंतु उनमें संपन्न बन समाजसेवा का भाव नहीं पनप पाता। इसका उदाहरण श्रद्धेय विनोबा भावे द्वारा चलाए गए 'भूदान अभियान' की विफलता से समझ में आना चाहिए। 'भूदान' की विफलता तथा उसके दुष्परिणामों को देखकर जयप्रकाश नारायण बहुत दुःखी होकर उस अभियान से हट गए थे। कारण, 'भूदान' से लाभान्वित हुए लोग अपने जीवन में सामाजिक दृष्टिकोण अपना नहीं सके। इस प्रकार के अनेक समाजसेवा के विफल उदाहरण हैं। उन सबका उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। इन सब बातों को अनुभव कर दीनदयालजी ने 'एकात्म मानव' के विकास का मार्ग अपनाया था। तदनुसार ही दीनदयाल शोध संस्थान के कार्यक्रम बने हैं। उसी दिशा में हम लोग नए-नए काम हाथ में ले सकते हैं, इसका तुम्हें विचार करना चाहिए। अन्यथा परिश्रम करने के बावजूद सामाजिक जीवन खुशहाल नहीं हो पाएगा।

52 नागपुर के बालजगत् प्रकल्प के संचालक जगदीश सुकलीकर का अभिनंदन। साथ ही यह आग्रह भी कि लक्ष्य-प्राप्ति में सहायक कार्यक्रमों पर जोर दें। व्यक्तिगत विकास होना चाहिए, पर साथ ही सामाजिक दायित्वबोध का विकास भी आवश्यक।

दीनदयाल शोध संस्थान के कार्यक्रमों की गाइड लाइन भी मैं इस पत्र के साथ जोड़ रहा हूँ। कोई भी कार्यक्रम हाथ में लेने से पूर्व दीनदयाल शोध संस्थान के प्रधान सचिव से विचार-विनिमय कर कार्यक्रम की शुरुआत करनी चाहिए। अन्यथा हम लोगों द्वारा बनाई गई गणेशजी की मूर्ति विकृत रूप धारण करेगी।

53

19 जुलाई, 2002

चिरंजीव प्रिय बंडू,

तुमने हाइड्रोसिल का ऑपरेशन करा लिया है, यह जानकर खुशी हुई। अब तुम्हारा स्वास्थ्य अधिक अच्छा होगा तथा कार्यक्षमता भी बढ़ेगी, किंतु सामान्य स्थिति प्राप्त होने तक अधिक दौड़-धूप नहीं करनी चाहिए। दीनदयाल शोध संस्थान विभिन्न प्रकार के प्रकल्प चला रहा है। उनमें दो प्रकार के कार्यकर्ता लगे हैं। कुछ कार्यकर्ता नौकरी करने के लिए अपने प्रकल्पों में पहुंचे हैं तथा कुछ कार्यकर्ता समर्पित भाव से काम करने आए हैं। उन्हें भी हम जीवन-निर्वाह के लिए सीमित आर्थिक सहायता देते हैं, किंतु वे हमारे पास नौकरी करने नहीं आए हैं। हमारे द्वारा चल रहे प्रकल्पों की लक्ष्य-सिद्धि में दोनों का योगदान महत्वपूर्ण है। कारण, हम नौकरी करनेवाले कार्यकर्ताओं में भी सामाजिक दायित्व की भावना विकसित करते हैं।

दीनदयाल शोध संस्थान 'मानवों का एकात्म विकास' करने का लक्ष्य लेकर प्रारंभ हुआ है। इस लक्ष्य-सिद्धि के लिए ही हमने विभिन्न प्रकल्प हाथ में लिए हैं। इस विशेषता को ध्यान में रखकर ही हमें अपना काम करना होगा। बीड़ जिले में इस कार्य का अनुकरणीय नमूना खड़ा करने का दायित्व तुम और प्रिय मृदुल मिलकर संभाल रहे हो। वस्तुतः दीनदयाल शोध संस्थान ने दूरगामी दृष्टि रखकर काम प्रारंभ किया है। इस बात को अपने नेतृत्व करनेवाले कार्यकर्ताओं को सदैव ध्यान में रखना चाहिए, इसीलिए मैं आज अपने कार्य की पृष्ठभूमि का संक्षेप में उल्लेख कर रहा हूँ।

अपने समाज के आदि रचनाकारों ने लंबे अनुभवों के बाद मानव समाज के लिए स्थायी लक्ष्य निर्धारित किए थे। वे मानव समाज को चिरंतन मानते रहे हैं। कारण, उसके प्रारंभ या अंत का ज्योतिष विज्ञान को भी ज्ञान नहीं है। मानव ही एक ऐसा प्राणी है, जो स्वयं अपना भविष्य बना और बिगाड़ सकता है। प्रकृति की इस देन को भारतीय मनीषियों ने जान लिया था। उन्होंने यह भी अनुभव किया था कि मानव प्राणी का समूह (समाज) के रूप में रहना अनिवार्य है। कारण, प्रकृति ने मानव समाज को परस्परावलंबी बनाया है। कोई व्यक्ति स्वयं पूर्ण नहीं है।

चिर-जीवी मानव समाज की अवनति न हो, अपितु सदा सर्वदा उसकी उन्नति होती रहे, यह भारतीय मनीषियों की आकांक्षा थी। इसीलिए उन्होंने मानव के लिए 'सर्वभूत हितैरतः' का

53 श्री गणेश पाठक को संस्थान के मूलभूत कार्य का स्मरण एवं सामाजिक भावना व सामाजिक दायित्व का बोध कराता पत्र।

विराट पुरुष

लक्ष्य निर्धारित किया था। उन्होंने तदनुसार सामाजिक जीवन की रचना भी खड़ी की थी। सिद्धांत तो स्वार्थी हैं, किंतु सामाजिक रचनाओं को काल के अनुसार बदलना तथा विकसित करना पड़ता है। इस प्रक्रिया की अवहेलना हुई तो वैचारिक स्तर पर सिद्धांत कोरे उपदेश का रूप लेते हैं और व्यावहारिक धरातल पर आचरण सिद्धांतहीन बनता है। परिणामस्वरूप मानव मानवीयता खोता है। सदियों से यही होता आ रहा है। फलस्वरूप स्थिति यहां तक पहुंची कि परिवार, आबादी, देश उनमें अपनी-अपनी आर्थिक उन्नति करने तथा अधिकाधिक उपभोग सुविधाओं को जुटाने की होड़ लगी हुई है। किसी को किसी की परवाह नहीं रही। आदर्शवादी कहलानेवालों में भी गुटबाजी ने अपना घिनौना स्थान बना लिया है। शासन अधिकाधिक पंगु बनता जा रहा है। अराजकता की मार से जनजीवन त्रस्त है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का व्यवहार सर्वव्यापी बन रहा है। व्यक्तिवाद सब पर सवार है। समाज दिखाई देता है, किंतु उसमें सामाजिक जीवन का अभाव है।

इस दयनीय दशा को देखकर दीनदयालजी अत्यंत व्यथित हुए थे। उनकी इस व्यथा से ही 'एकात्म मानव दर्शन' का जन्म हुआ है। दुर्भाग्य से अपने दर्शन को साकार करने से पूर्व ही नियति ने उन्हें हमसे छीन लिया। प्रभु ने 'एकात्म मानव दर्शन' साकार करने की प्रेरणा प्रदान की है। लोगों की योग्यता की तुलना में स्वयं स्वीकार किया दायित्व बहुत बड़ा है, किंतु प्रभु द्वारा प्रेरित काम को पूरी लगन और शक्ति के साथ करना अपना धर्म है। सफलता की चिंता प्रभु स्वयं करेगा।

हमें इस दायित्व को स्पष्ट रूप से समझना जरूरी है। उसे मैं बताना चाह रहा हूं। हर एक प्रकल्प का लक्ष्य तय है। उसे समय से पूर्ण करने में कार्यकर्ता जुटे हैं। उनके द्वारा कुछ प्रकल्प अनोखी सफलता भी पा रहे हैं, किंतु उतने भर से स्व. दीनदयालजी की आत्मा-संतुष्ट नहीं होगी। कारण, उतने से ही मानव का जीवन एकात्म होनेवाला नहीं है। उसके लिए हमें और आगे बढ़ना होगा।

नवस्वतंत्र भारत की सत्ता संभालनेवाले बड़े-से-बड़े शासकों की संतान सामाजिक दायित्व से बेखबर रहती है। यह असामाजिकता केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं है। सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्र के नेताओं के परिवारों में भी जन्म लेनेवाली संतान सामाजिक दायित्व से पूर्णतः वंचित रह रही है। नेतागिरी करनेवाले इन बड़े-से-बड़े विद्वान् लोगों को भी समझ में नहीं आता कि उनकी संतान समाज की भी घटक है। यदि इसी प्रकार से नई पीढ़ी सामाजिक दायित्व से वंचित रहेगी तो भारत का भविष्य कौन बनाएगा? इस समस्या की ओर किसी का ध्यान नहीं है। परिणामस्वरूप देश का नेतृत्व करनेवालों का स्तर निरंतर घटता जा रहा है और भ्रष्टाचार सर्वव्यापी बन रहा है।

उपर्युक्त वस्तुस्थिति को समझने के बाद सहज में ही ध्यान में आएगा कि केवल आर्थिक उन्नति के लिए ही हम काम करेंगे तो सामाजिक उत्कर्ष संभव नहीं होगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें अभावग्रस्तों का आर्थिक विकास नहीं करना चाहिए। आर्थिक विकास करना तो अनिवार्य है। उसके बिना काम नहीं चलेगा, किंतु आर्थिक विकास के साथ-साथ परिवारों में जन्म पानेवाली पीढ़ी में परस्पर अवलंबन की भावना व सामाजिक दायित्व की चेतना भी विकसित करनी होगी,

अन्यथा विनोबाजी के भूदान अभियान जैसी ही अपने कार्य की गति होगी।

उपर्युक्त दिशा में काम करने का शुभारंभ हमें स्वयं से ही करना होगा। दीनदयाल शोध संस्थान के विभिन्न प्रकल्पों में अनेक महिला-पुरुष कार्यकर्ता लगे हैं। साधारणतः वे सभी विवाहित हैं, अर्थात् उनका अपना परिवार है। उनके बच्चे हैं या होनेवाले होंगे। उनमें सामाजिक भाव कैसे विकसित किया जाए? इस पर हमें सोचकर उपयुक्त विधियां विकसित करनी होंगी। इस कार्य को अभी तक किसी ने भी नहीं किया है। हमें ही इस मूलभूत कार्य की पहल करनी है।

हम एक बात जानते हैं कि नन्हे-नन्हे बच्चे स्वभावतः अपनी माता तथा पिता द्वारा किए जा रहे कामों को करना चाहते हैं। यह बच्चों का जन्मजात स्वभाव है। प्रिय भरतजी की दो साल की नन्ही सी बेटी है। उसकी मां मेरे पैर दबाती है। सिर में तेल की मालिश करती है। मुझे मधुमेह है, अतः वह मुझे औषधि देती है। उसकी बेटी यह देखती है, अतः नन्ही सी बिटिया उसे हटाकर स्वयं वे सब काम करने का हट करती है।

इससे हमें दिशा मिल सकती है कि हम अपने तथा सहयोगियों के परिवारों में बच्चों में सामाजिक भावना विकसित करने के लिए किस-किस प्रकार के कार्यक्रमों की रचना करें। हम यह कार्य करने लग जाएं तो पारिवारिक जीवन समाज के लिए कर्तृत्वशाली घटकों की पूर्ति कर सकता है। समाज को सामाजिक भावना से परिपूर्ण करना संभव हो सकता है। हमें इस दिशा में आगे बढ़ना होगा। वस्तुतः यही दीनदयाल शोध संस्थान के कार्य की विशेषता एवं 'एकात्म मानव दर्शन' का व्यावहारिक रूप खड़ा करने का तरीका है।

तुम, मृदुल, सुदामा एवं रत्ना मिलकर इस कार्य को संपन्न करने की विधियां विकसित करोगे, इसी अपेक्षा से यह पत्र लिखा है।

54

05 अगस्त, 2002

चि. प्रिय भरत,

ऑपरेशन के बाद सामान्य स्थिति आने में विलंब हो रहा है। डॉक्टर अपने ढंग से परामर्श दे रहे हैं, किंतु लगता है, अधिक आयु में किए गए ऑपरेशन का यह परिणाम हो सकता है। मेरा मधुमेह भी एक कारण है। पड़े-पड़े अध्ययन, चिंतन तथा मनन के अतिरिक्त अन्य काम नहीं किए जा सकते। राज्यसभा अवश्य जाता हूँ, किंतु वहां भी अधिक समय तक बैठ नहीं पाता। लगता है, यह समय पढ़ने के लिए ही मिला है।

नवनिर्वाचित राष्ट्रपति डॉ. अब्दुल कलाम के दो नए प्रकाशन पढ़ रहा हूँ—

54 संस्थान के प्रधान सचिव डॉ. भरत पाठक को इस बात का स्मरण करानेवाला संदेश कि केवल आर्थिक विकास पर्याप्त नहीं। मानवीय संवेदना और परस्पर-पूरकता का अभाव रहा तो सर्वांगीण विकास नहीं हो सकेगा।

विराट् पुरुष

‘Ignited Minds’ तथा ‘India 2020 : A Vision for the New Millennium’ इन किताबों को पढ़ने से अनुमान लगाया जा सकता है कि भगवान् ने मानव को कितनी क्षमता दे रखी है। इसका उपयोग बहुत ही कम लोग करते हैं। मैंने तुम्हें डॉ. अब्दुल कलाम का जीवन पढ़ने के लिए दिया था। उसमें उनकी मिसाइल आविष्कारों में तल्लीनता तथा उनके मस्तिष्क शक्ति का अनुमान लगा था, किंतु उसके बाद उन्होंने उपर्युक्त दो किताबें लिखीं और प्रकाशित भी की हैं। भारत के विकास का उन्होंने इतनी गहराई से अध्ययन किया है कि मैं तो आश्चर्यचकित हूँ। कृषि विकास के विषय में भी उन्होंने बड़ी गहराई से अध्ययन किया है। मानव के मन में देशभक्ति हो और देश के भविष्य निर्माण की लगन हो तो वह कितनी विलक्षण क्षमता प्रकट कर सकता है, इसका डॉ. अब्दुल कलाम एक अनोखा नमूना हैं।

मैंने उन्हें परसों ही पत्र भेजा है। साथ में अपनी पुरानी पुस्तिका तथा नई प्रकाशित पुस्तिका ‘Self Reliance Campaign’ भेजी है तथा उनसे मिलने का समय मांगा है।

प्रिय वसंत से बात हुई थी, उसने कहा कि डॉ. अब्दुल कलाम का केवल 25 सितंबर के समारोह में आना उतना लाभदायक नहीं होगा, जितना उनके द्वारा अपने प्रकल्पों को दिखाकर हो सकेगा, किंतु निश्चय तो उनसे मिलने के बाद ही किया जा सकेगा।

जहां तक जयप्रभा ग्राम में जे.पी. एवं प्रभावतीजी के ट्रांसलाइट के अनावरण समारोह का है, उसमें तुम्हारी इच्छा के अनुसार चंद्रशेखरजी तथा शत्रुघ्न सिन्हा दोनों ने आना स्वीकार किया है।

आजादी पाने के पूर्व के काल में होते रहे कामों में उत्साह, लगन, परिश्रम तथा प्रतिफल भी दिखाई देते थे। साधारण से साधारण कार्यकर्ता भी अपनी लक्ष्यसिद्धि में सफलता पाता था, किंतु स्वतंत्र भारत में सामाजिक, आर्थिक या प्रशासनिक कामों में बड़े-से-बड़े लोग भी विफल सिद्ध हो रहे हैं। जब मैं इन दोनों कालों के कारण पर विचार करता हूँ तो मेरे सामने सहज में ही वस्तुस्थिति स्पष्ट होती है।

मैं सन् 1940 में प्रचारक के नाते राजस्थान से उत्तर प्रदेश आया था। उन दिनों मुझे बनारस में भी पर्याप्त समय काम करना पड़ा था। ज्यादातर काम काशी हिंदू विश्वविद्यालय में ही था। उस समय, सर्वसाधारण विद्यार्थियों में भी देश के लिए एक तड़प की भावना छिपाए नहीं छिपती थी। किसी को अपने व्यक्तिगत भविष्य की परवाह नहीं होती थी, किंतु अब इस विश्वविद्यालय में जाएं तो आपको एकदम विपरीत दृश्य देखने को मिलता है।

मैं जब पिलानी में पढ़ता था तो हमें अंग्रेजी पढ़ाने का काम सी.एफ. एंड्रूज करते थे। वे ‘शांति निकेतन’ में रवींद्रनाथ ठाकुर के साथ पढ़ाते थे। बिरलाजी के आग्रह के कारण जाड़े में पिलानी में पढ़ाते थे। मेरा भाग्य था कि मुझे उस समय उनके साथ ‘शांति निकेतन’ जाने का सुअवसर मिला था। उस समय ‘शांति निकेतन’ में यद्यपि कला की अधिक उपासना होती थी। फिर भी युवक-युवतियों में देश के लिए काम करने की होड़ लगी हुई देखने को मिलती थी। राजनीति छोड़ने के बाद अध्ययन की दृष्टि से मैं हफ्ते में तीन बार ‘शांति निकेतन’ हो आया हूँ और मन मसोसकर रह गया हूँ।

आजादी पाने से पूर्व देश में देशभक्ति की इतनी प्रबल लहर थी कि साधारण-से-साधारण

समाजशास्त्री

युवक में स्वार्थ का लवलेश भी दिखाई नहीं देता था, किंतु आजादी के बाद देश का पूरा दृश्य ही बदल गया है। कारण, देश में बह रही हवा ही बदल गई है। मानो आजादी के बाद देश में देशभक्ति की जरूरत ही न रही हो। देशभक्ति का वातावरण न परिवारों में है, न विद्यालयों में और न ही नेताओं के जीवन में। परिणामस्वरूप सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उन्नति की कहीं गुंजाइश ही दिखाई नहीं देती। हर एक अपनी-अपनी झोली भरने में ही लगा हुआ है। देश का शासन मानो सत्ता के उपभोग का माध्यम बन गया है। बड़े-बड़े लोग भी सत्ता का उपयोग देश की दशा सुधारने में अक्षम सिद्ध हो रहे हैं। सत्ता पाने या सत्ता कायम रखने के लिए महाभ्रष्टाचारी सुखराम जैसे लोगों को भी गले लगाने में हिचकते नहीं हैं। उच्चतम पदों पर भ्रष्टाचार में लिप्त लोग न्यायालयों से स्वयं को बचा लेने में सफल हो रहे हैं। मैं इन बातों को पत्र में इसलिए लिख रहा हूँ कि हमने दीनदयालजी की स्मृति में जो काम हाथ में लिये हैं, उन कामों की पृष्ठभूमि में यह सब देखने को मिल रहा है। ऐसी भयानक पृष्ठभूमि होते हुए भी हमें सफलताएं प्राप्त करनी हैं और कुछ मात्रा में मिल भी रही हैं। हमें देश के भविष्य की राह बनना है।

इस समय मैं विनोबा भावे, जे.सी. कुमारप्पा, धीरेंद्रभाई मजूमदार तथा जयप्रकाश नारायण के ग्रामोदय प्रकल्प क्यों विफल हुए, इसका फिर से अध्ययन कर रहा हूँ। उससे स्पष्ट नजर आ रहा था कि ये सभी लोग महान् थे, आध्यात्मिक भी थे, किंतु उन्होंने अपने सामने केवल लोगों के आर्थिक विकास का ही लक्ष्य रखा था।

अभी मैं जे.पी. के गत कार्यों का अध्ययन कर रहा हूँ। उनके मुजफ्फरपुर जिले के मुसहरी प्रखंड का मैंने अभी-अभी अध्ययन किया है। तुमको पता है कि तुम जब बिहार में राममूर्तिजी के सान्निध्य में किसी सम्मेलन में गए थे तो तुम्हें संभवतः राममूर्तिजी ने ही कहा था कि तुम्हें यह सफलता कैसे मिल रही है? उसी मुसहरी का मैं अध्ययन कर रहा हूँ। जे.पी. ने स्वयं की डायरी में वहां के काम के बारे में अपने अनुभव लिखे हैं। उनको देखकर मुझे आश्चर्य लगा कि वे गांव में काम करते रहे। उन गांव के निवासियों की आपस में एक-दूसरे के प्रति संवेदना विकसित हो, इसका ध्यान ही नहीं रखा। परस्पर पूरकता निर्माण किए बिना गांव का विकास नहीं हो सकता, इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। यहां तक कि जैसे वर्तमान राजनीति में एक ही दल में परस्पर प्रतिस्पर्धा दिखाई देती है, उसी का अनुभव जे.पी. को करना पड़ा। लोगों के सम्मुख केवल आर्थिक उन्नति का लक्ष्य रहा तो यही होना अवश्यंभावी था।

उपर्युक्त बातों को देखने के बाद अनुभव होता है कि हमें लोगों की आर्थिक स्थिति सुधारने के साथ-साथ पूरे गांव के निवासियों के जीवन में परस्पर आत्मीयता भी जगानी होगी। इसलिए दीनदयालजी ने 'एकात्म मानव' की अवधारणा प्रस्तुत की थी। हमें उस दिशा को क्षणमात्र के लिए भी आंखों से ओझल नहीं होने देना चाहिए।

मैं अब गांवों का कितना प्रवास कर पाऊंगा, यह कह नहीं सकता। यह काम तो तुम्हें ही करना होगा। इसलिए जो कुछ पढ़ता हूँ, पत्र के द्वारा लिखना चाहता हूँ। उसी दिशा में मेरा यह पत्र माना जा सकता है।

प्रिय बेटा स्मिता,

ईश्वर की विशेष कृपा के कारण एक नन्हे से ग्राम में अभावग्रस्त परिवार में जन्म मिला, अतः परिश्रम करने का गुण शैशवावस्था से ही प्राप्त हुआ। ईश्वर कृपा से धनार्जन की अभिलाषा कभी भी मन को छू नहीं पाई। पद, पदवी, अधिकार, सत्ता और कीर्ति के मोह ने प्रभावित नहीं किया। एक ही अभिलाषा रही कि विवादग्रस्त न होकर सबका प्रेम और सहयोग कैसे प्राप्त हो? उसी साधना में पूरा जीवन बीत गया है। तुम्हारे जैसे प्रेम के धनी महिला-पुरुषों की कृपा ही मेरी पूँजी है और उसी के बल पर मैं बचपन से कदम बढ़ाता आ रहा हूँ।

स्मित-मुखी स्मिता आती है तो लगता है कि माँ की ममता की वर्षा हो रही है। कानों ने काम करना छोड़ दिया है। नाक से सुगंध या दुर्गंध का पता नहीं चलता। एक आँख इमरजेंसी (आपातकाल) में कारावास को समर्पित की थी। जो एक आँख काम कर रही थी, उसकी दृष्टि ग्लूकोमा के कारण घटते-घटते अब केवल 13 प्रतिशत बची है। तुम बड़े प्यार से सूप बनाकर लाई थीं, किंतु डिश, चम्मच और सूप में मेल बिठाने के लिए मेरी आँख तैयार नहीं थी, अतः किसी प्रकार मातृ-हृदय का निचोड़ एक चम्मच मुँह में डालकर मैंने संतोष कर लिया। सबकी कृपा है, इसलिए मेरे लिए किसी बात की कमी नहीं है, ऐसा लोगों को दिखाई देता है और यह सत्य भी है, लेकिन मैं तो केवल प्रेम का भूखा हूँ। गरीबी का शिकार बनकर जन्मदात्री माँ ने अपमान सहने के स्थान पर आत्महत्या कर लेना पसंद किया। वह मेरे इतने छोटपन में गई, जिसका चेहरा तक मुझे याद नहीं है। तुम लोगों का चेहरा देखकर मैं उसी के दर्शन करता हूँ। उससे मुझे अधिक कुछ नहीं चाहिए, न किसी चीज की इच्छा है। यह तुमसे मिलता है, यही मेरे लिए सबकुछ है।

मान्यवर महोदय,

मानव दिन-प्रतिदिन अपने अधिकार खो रहा है। यह सभी के लिए चिंता का विषय है, किंतु यह स्थिति क्यों पैदा हो रही है? इस पर गंभीरता से विचार करना नितांत आवश्यक है।

55 श्रीमती स्मिता पटवर्धन के सहज स्नेह से अभिभूत नानाजी मातृवत् स्नेह के ही आकांक्षी होने की इच्छा रखते हुए।

56 मानवाधिकारों के प्रवक्ता को यह संकेत कि केवल अधिकारों की बात से काम नहीं चलेगा। मानव को कर्तव्य के प्रति जागरूक करना आवश्यक है।

समाजशास्त्री

मानव के अधिकारों का हनन कौन कर रहा है? क्या यह अन्याय मानव के अतिरिक्त कोई और कर रहा है? मानव पर अत्याचार करनेवाला भी मानव ही है। मानव मानव पर अत्याचार क्यों कर रहा है? इस बात की खोज करना आवश्यक है।

मुझे लगता है, जब तक अधिकार की लड़ाई की जाएगी, मानव के अधिकार सुरक्षित नहीं रहेंगे। कारण, मानव जब अपने मानवीय कर्तव्य को भूल जाता है तो मानव अधिकार संकट में पड़ते हैं, अतः आवश्यकता है मानव को कर्तव्य तत्पर बनाने की। मानव मात्र कर्तव्य तत्पर बनेगा, तभी मानवाधिकार सुरक्षित रहेंगे।

57

07 फरवरी, 2003

मा. डॉ. सुधाकरजी,

आपका 2 फरवरी का कृपा-पत्र प्राप्त हुआ। 'स्वातंत्र्यवीर सावरकर स्मारक समिति' ने इस वर्ष के पुरस्कार के लिए मुझे उपयुक्त माना है। इसके लिए मैं आपकी समिति का बहुत आभारी हूँ, किंतु मेरा आप सबसे सविनय अनुरोध है कि आप स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी की स्मृति का पुरस्कार ऐसे सुयोग्य व्यक्ति को प्रदान करें, जो आगे भी कुछ करने की क्षमता रखता हो, जिससे वह और अधिक गतिशीलता से सावरकरजी के ध्येय को आगे बढ़ा सके।

मैं अब अपनी बढ़ी हुई आयु के कारण कुछ भी करने की स्थिति में नहीं हूँ। ऐसी स्थिति में पुरस्कार प्राप्त कर शिथिल पड़ा रहूँ, यह पुरस्कार के प्रति मैं न्याय नहीं कर पाऊंगा। ऐसी स्थिति में पुरस्कार प्राप्त करना मैं व्यक्तिशः नैतिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं मानता, अतः आप लोग कृपा कर मुझे क्षमा करें।

58

14 फरवरी, 2003

प्रिय कार्यकर्ता बंधुओं एवं बहनो,

सोनदरा गुरुकुल का कार्य तथा अंबाजोगाई में कृषि विज्ञान केंद्र द्वारा आयोजित दीनदयालजी के बलिदान-दिवस के अवसर पर 'स्वावलंबन-अभियान' का समारोह बहुत सफल रहा, अतः आप सभी का हृदय से अभिनंदन। आप सभी के परिश्रम का शानदार प्रतिफल देखकर मुझे बहुत खुशी हुई। आप लोग गांव-गांव जाकर 'स्वावलंबन-अभियान' में सहकार्य के लिए लोगों

57 शारीरिक दृष्टि से सक्षम नहीं होने की बात कहकर स्वातंत्र्यवीर सावरकरजी की स्मृति का पुरस्कार ग्रहण न करने के पीछे नानाजी की इच्छा युवाओं को पुरस्कृत कर प्रोत्साहित करने की थी।

58 बड़े समारोह में उत्साह मिलता है। पर जब तक उसके बाद तदनुसृत कार्यक्रमों की शृंखला नहीं होती, वह अस्थायी उत्साह निरर्थक सिद्ध होता है।

विराट पुरुष

से अनुरोध करते रहे। उसके परिणामस्वरूप काफी बड़ी संख्या में लोग 11 फरवरी को समारोह में उत्साह के साथ पहुंचे तथा बड़ी रुचि के साथ सब लोगों ने सहयोग दिया। इससे अनुमान होता है कि लोगों को 'स्वावलंबन-अभियान' का कार्य पसंद है, अन्यथा वे लोग अपने घर से इतनी दूर आकर कार्यक्रमों में सम्मिलित न होते।

केवल इतना बड़ा समारोह करना अपना लक्ष्य नहीं था। अपने समाज में उत्साह से समारोह करने की परंपरा है, किंतु वह परंपरा उत्सवों तक ही सीमित रहती है। हम अपने समारोह को कार्य का शुभारंभ मानते हैं।

11 फरवरी के समारोह के फलस्वरूप सम्मिलित हुए ग्रामीणों के मन-मस्तिष्क में भविष्य निर्माण की कल्पना आकार ले रही है। अतः हमें उन गांवों में अविलंब पहुंचकर उन कल्पनाओं को व्यावहारिक धरातल पर उतारने की दृष्टि से गांव-गांव में उपयुक्त कार्यक्रमों की रचना करनी होगी। यदि इस कार्य में विलंब हुआ तो इन ग्रामवासियों में निर्माण हुई अनुकूलता टिक नहीं पाएगी। उसे पुनर्जाग्रत करना कठिन हो जाएगा। यह आप सब भी सोच ही रहे होंगे। सहज में ही यह बात ध्यान में आई, इसलिए लिखा है।

यद्यपि अधिक आयु के कारण मेरा स्वास्थ्य प्रवास करने के लिए अनुकूल नहीं रहा, इसके बावजूद मैं जुलाई-अगस्त के महीने में आपके इस समारोह के परिणाम के फल देखने के लिए आना चाहता हूं।

59

10 अप्रैल, 2003

प्रिय लता बहन,

मेरा स्वास्थ्य चिंताजनक नहीं है। आयु के कारण शरीर में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। भगवान् की कृपा और माता-पिता की देन के कारण 87 साल तक दिन-रात काम करता रहा हूं, यह कम समाधान की बात नहीं है। अभी भी काम रुका नहीं है।

ग्लूकोमा के कारण दाईं आंख की रोशनी गायब हुए 25 वर्ष बीत गए हैं। वही बीमारी अब बाईं आंख पर भी अपना असर दिखा रही है। केवल 17 फीसदी रोशनी बाईं आंख में बची है। इस कारण रोज अखबार साथियों से पढ़वा लेता हूं और जो कुछ लिखना होता है, वह साथियों से लिखवाता हूं। इस कारण लिखने-पढ़ने का काम भी रुका नहीं है। शरीर ठीक है। कोई बीमारी नहीं है। डायबिटीज भी पूर्ण रूप से काबू में है। पैरों में ताकत कम हो गई है, इसलिए स्वयं ही अधिक चलना संभव नहीं होता, किंतु सब साथी इतना खयाल रखते हैं कि मुझे कोई काम करने में परेशानी नहीं होती।

अभी 27-28 मार्च को प्रिय अटलजी स्वयं ही दो दिन के लिए चित्रकूट आए थे। मैंने

59 प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी द्वारा चित्रकूट प्रकल्प को देखा-सराहा गया। अपने सहयोगियों एवं शासकीय अधिकारियों को चित्रकूट जाकर विकास का रहस्य समझने के लिए प्रेरित किया गया।

समाजशास्त्री

जान-बूझकर उनका कोई सार्वजनिक कार्यक्रम नहीं रखा था। उन्हें गांवों में भी जो काम हुआ है, वह भी दिखाया गया तथा उन गांवों की महिला-पुरुषों से भी चर्चा कराई। वनवासी बालक-बालिकाओं के विद्यालयों में भी उनकी बच्चों से बातचीत कराई। सब चीजों को देखकर वे स्वयं आश्चर्यचकित हुए हैं तथा दिल्ली आकर मंत्रिमंडल के सदस्यों, सरकारी अधिकारियों तथा अन्य मिलनेवालों से खुलकर कह रहे हैं कि ग्राम-विकास का काम कैसे होना चाहिए, यह देखने के लिए आप लोगों को चित्रकूट जाना चाहिए। वे अपने साथियों से कह रहे हैं कि आप धन की कमी कह रहे हो, लेकिन नानाजी ने आधे से भी कम रुपयों में बड़े-से-बड़े काम करके दिखाए हैं।

यह प्रधानमंत्री ने कहा, इसको मैं महत्व का नहीं मानता, किंतु अटलजी ने काम को देखकर जो अनुभव किया, उसको मैं अवश्य महत्व देता हूं।

अभी मैं एक नया काम जो देश के लिए जरूरी है, प्रारंभ करने जा रहा हूं। यह सब मैं अपने साथियों के बल पर कर रहा हूं, क्योंकि भगवान् ने मुझे ऐसे साथी दिए हैं, जो दिन-रात एक करके, जो चाह रहा हूं, वह पूरा करके दिखाते हैं। ऐसी स्थिति में मुझे आयु के कारण शारीरिक कमी के लिए चिंता करने की जरूरत क्यों होनी चाहिए? अब यह जरूर तय किया है कि मैं चित्रकूट और दिल्ली के अलावा अन्यत्र कहीं भी न जाऊं। कारण, उसके लिए शरीर मना करता है।

60

30 जून, 2003

प्रिय बंधुओ और बहनो,

अभी भी अपने गांवों में आवश्यक सुविधाओं का अभाव है। ग्रामवासी कठिनाइयां सहते हुए गांवों में रह रहे हैं। यह जानते हुए भी आप दोनों (पति-पत्नी) मिलकर उन्हीं गांवों में रहकर ग्रामोदय के कार्य में जुटे हैं। यह नई दिशा में पहल का प्रशंसनीय कदम है।

भारत का भाग्योदय जगमगा रहे शहरों से नहीं, अभावग्रस्त दिखाई देनेवाले गांवों से ही होगा। कारण, प्राकृतिक संपदा का अक्षय स्रोत ग्रामीण अंचल में ही मौजूद है। शहर तो उपभोग के केंद्र मात्र हैं।

61

07 जुलाई, 2003

वि. प्रिय विकास,

तुम्हारा पत्र मिला। परिवार की वस्तुस्थिति की जानकारी हुई। प्रिय पिताजी का अपने गांव

60 संस्थान के कार्यकर्ताओं को यह संदेश—भारत भाग्योदय जगमगा रहे शहरों से नहीं, अभावग्रस्त दिखनेवाले गांवों से ही होगा।

61 कार्यकर्ता के परिवार की चिंता। साथ ही कार्यकर्ता को कार्य करने की प्रेरणा।

विराट पुरुष

में और अपने ही आवास में रहने का विचार योग्य है। प्रिय माताजी का उन्हीं के साथ रहना, स्वाभाविक और आवश्यक भी है। बड़े भाई अपना कारोबार स्वतंत्र रूप से करेंगे, यह उनकी रुचि का विषय है और इसलिए वे उसी में अच्छी प्रगति कर पाएंगे। उनका परिवार स्वतंत्र रूप से रहेगा, यह युगानुकूल है। उनकी इच्छा को खुशी से स्वीकार करना चाहिए। उसी से उनका वैवाहिक जीवन सुख-समाधानपूर्ण बनेगा और अपने पारिवारिक संबंध अच्छे बने रहेंगे।

छोटे बंधुराज हैं, उन्हें आज नहीं कल स्वतंत्र रूप से काम करना पड़ेगा। वे भी पिताजी के साथ ग्रामीण अंचल में रह नहीं पाएंगे। उन्हें अपनी आजीविका के लिए कहीं-न-कहीं शहर में ही रहना होगा, इसलिए पूरी परिस्थिति मेरी दृष्टि से बहुत स्पष्ट है। जब तक ये तीनों परिवार स्वतंत्र रूप से रहना प्रारंभ करेंगे, तब तक कुछ कठिनाई अनुभव होगी, किंतु यह कठिनाई स्थायी नहीं, तात्कालिक है। जहां तक तुम्हारा प्रश्न है, वह विचारणीय है। तुम्हारे भविष्य के संबंध में प्रिय पिताजी की एवं माताजी की क्या अपेक्षाएं हैं, इसकी मुझे जानकारी नहीं है, किंतु मैं समझता हूँ कि मैं तुम्हारे बारे में जो कुछ सोच रहा हूँ, उससे कुछ काल के बाद माता-पिता को तथा भाइयों को भी तुम्हारे संबंध में अभियान ही अनुभव होने लगेगा।

चित्रकूट जिले के लिए हमें जन शिक्षण संस्थान का प्रकल्प प्राप्त हुआ है। वह ग्रामीण अंचल में जन कल्याण की दृष्टि से अर्थात् गरीब, उपेक्षित तथा बेकारों के उत्थान की दृष्टि से बहुत महत्व का है। चित्रकूट जिले में इस काम में तुम्हें भी एक महत्वपूर्ण दायित्व सौंपने का मेरा विचार है, जिससे कुछ समय के लिए तुम अपने छोटे भाई के लिए कुछ आर्थिक मदद भी कर सकोगे। प्रभु राम के कार्यक्षेत्र के पीड़ित एवं उपेक्षित बंधु-बहनों के जीवन में खुशहाली निर्माण करने का काम स्वयं में अनूठा कार्य है। यह सब के भाग्य में संभव नहीं होता। कुछ ही दिनों में तुम्हारे काम की सफलता माता-पिता के लिए एवं तुम्हारे बंधुओं के लिए भी गौरव का विषय बनेगी। इसका मुझे विश्वास है। इसलिए मैं समझता हूँ प्रिय माताजी और पिताजी को इस संबंध में समझाकर उन दोनों का आशीर्वाद लेकर तुम्हें इस काम के लिए आगे आना चाहिए।

62

09 अक्टूबर, 2003

प्रिय बेटी चित्रा,

तुम्हारा 18 सितंबर का पत्र मिला। मैं दिल्ली में था। आज ही यहां आया हूँ, इसीलिए पत्रोत्तर में विलंब हो रहा है।

62 शरीर साथ नहीं दे रहा। फिर भी काम करने की अतृप्त अभिलाषा।

समाजशास्त्री

मैं आप लोगों को कैसे भूल सकता हूँ? मैं आदिलाबाद तुम्हारे यहां आ चुका हूँ। उस समय का स्मरण आज भी स्मृतिपटल पर ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। दुःख है कि अब डॉ. हरि नहीं रहे। विधि के विधान के सन्मुख किसी का वश नहीं चलता। इसके बावजूद तुमने अपने बच्चों को बहुत योग्य बनाया है और सभी ठीक दिशा में प्रगति के पथ पर गतिशील हैं।

मैं अब अधिकांश चित्रकूट में ही रहता हूँ। पंद्रह-बीस दिनों में दो-चार दिनों के लिए दिल्ली अवश्य जाता हूँ। अब मैं आयु की दृष्टि से 90 के द्वार पर पहुंच गया हूँ, इसीलिए लंबा प्रवास करना मेरे लिए संभव नहीं रहा अन्यथा मैं अवश्य आता। चित्रकूट प्रभु राम के वनवास का प्रारंभिक काल का स्थान रहा है। उसी को केंद्र बनाकर चारों ओर के 500 गांवों में कार्य चल रहा है। तुमने जिस एक गांव की कल्पना का पत्र में उल्लेख किया है, वैसे 100 से ऊपर गांव सब दृष्टियों से स्वावलंबी बन गए हैं और शेष गांव उस दिशा में प्रगति कर रहे हैं। बिना प्रचार के इस कार्य में मैं संलग्न हूँ। संभवतः तुम्हें पता होगा कि सन् 1977 में चुनाव में इंदिरा गांधी की सरकार को परास्त कर मोरारजी देसाई के प्रधानमंत्रित्व में जनता पार्टी की सरकार बनी थी। उस समय सब लोगों के आग्रह के बावजूद मैंने केंद्रीय मंत्री बनना अस्वीकार किया था और ग्रामीण क्षेत्र में काम करने में जुटा था। तब से देश के कुछ जिलों में ग्रामीण विकास के प्रयोग किए और सन् 1991 से चित्रकूट का चयन कर सन् 1977 के बाद से प्राप्त अनुभव के आधार पर यहां ग्राम विकास का अनुकरणीय नमूना 500 गांवों के रूप में विकसित करने में जुटा हुआ हूँ।

63

19 दिसंबर, 2003

चि. सौ. प्रिय बेबी, अंजु, कु. ऋतुजा एवं श्री सुहासजी,

आप सबके आत्मीयतापूर्ण पत्र पाकर बहुत खुशी हुई। व्यक्ति छोटा हो या बड़ा, बालक हो या वृद्ध, गरीब हो या धनी, सामान्य हो या महान्, दयालु हो या दुष्ट—सभी के लिए आत्मीयता के शब्द प्रमुदित किए बिना नहीं रहते। आप लोग तो मेरे अपने हैं। आप लोगों से मिली आत्मीयता जीवन को सुखानंद से परिपूर्ण कर डालती है। आत्मीयता ही एक ऐसी अनुपम निधि है, जिसमें छोटे-बड़े का अंतर अनुभव नहीं हुआ करता।

तुम्हें चित्रकूट 'माहेर' अनुभव हुआ। इसमें अनहोनी बात क्या है? यह तो वास्तविकता है। 'माहेर' उसे कहते हैं, जिसमें मातृत्व का भाव विद्यमान होता हो। अब तुम लोगों के लिए चि. प्रिय प्रकाश और विकास छोटे हैं। वे 'माहेर' का स्थान ले नहीं सकते, बड़ा तो केवल मैं ही हूँ, अतः मैं जहां हूँ, वहीं तो तुम्हारा वास्तविक 'मायका' है, किंतु तुम लोग संभवतः उसे भूल गए हो और इसी कारण कष्ट में होते हुए भी तुम लोग मायके में नहीं आते। अस्तु, तुम

63 सहज-स्वाभाविक पारिवारिक स्नेह की अद्भुत मिसाल। परिवार के सदस्य न होते हुए भी नानाजी इन सबको पुत्री-तुल्य मानते थे।

विराट पुरुष

चित्रकूट से लौटने के बाद अकोला और नागपुर हो आई। चि. सौ. प्रिय अर्चना चित्रकूट आना चाहती है। वह आएगी तो मुझे बहुत खुशी होगी। चि. सौ. प्रिय माई का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उसे जीवन भर कष्ट सहना होगा, इससे मन दुःखी होता है, लेकिन उपाय नहीं है। चि. प्रिय अप्पा ठीक होंगे। समीर का नया परिवार भी ठीक होगा। प्रिय समीर के विवाह में पहुंचना मेरे लिए कठिन था। उन दिनों मुझे बहुत काम था। उन कामों को छोड़कर अकोला आना कठिन हो रहा था, अतः उन कार्यों को स्थगित किया, आगे के लिए टाल दिया। कारण, चि. सौ. प्रिय माई के बेटे के विवाह में न जाना एक अपराध सा लग रहा था, अतः मैं कठिनाई के होते हुए भी अकोला विवाह में पहुंच गया था, किंतु उसकी बीमारी ठीक करना मेरे लिए संभव नहीं हो रहा है। इसका मुझे दुःख है, किंतु उपाय नहीं है। भगवान् की इच्छा के विपरीत कुछ हो नहीं सकता। आप सब लोगों को ईश्वर सुखी, सानंद एवं उन्नतशील रखे।

64

21 जनवरी, 2004

प्रिय श्री राजाभाऊ,

आपका 14 जनवरी, 2004 का पत्र प्राप्त हुआ। आपको जो मानसिक कष्ट अनुभव हो रहा है, उसका आपने अपने पत्र में उल्लेख किया है। साधारणतः मैं अपने मन की पीड़ा व्यक्त नहीं करता, किंतु आपने जब पत्र लिखा है तो मुझे अपने मन की पीड़ा व्यक्त करना आवश्यक हो गया है।

दीनदयाल शोध संस्थान ने बीड़ जिले में कार्य प्रारंभ किया। प्रारंभ से आपको ही केंद्र बनाकर काम का व्याप बढ़ाया। दीनदयाल शोध संस्थान के आप बीड़ जिले में सर्वेसर्वा मानकर काम चलता रहा।

इसी बीच आपने अलग से 'अंकुर प्रतिष्ठान' की स्थापना की। तब मैं सोचता रहा कि आपको दीनदयाल शोध संस्थान, बीड़ का सर्वेसर्वा मानने के बाद आपको अलग से एक संस्था बनाने की आवश्यकता क्यों अनुभव हुई? विशेष कारणवश अलग संस्था खड़ी करने का आपने निर्णय लिया तो दीनदयाल शोध संस्थान के साथ विचार-विनिमय कर उस 'अंकुर प्रतिष्ठान' की गतिविधियों की रचना की जा सकती थी, किंतु आपने उसकी आवश्यकता नहीं समझी।

ऐसी स्थिति में दीनदयाल शोध संस्थान जो कर रहा है, उससे भिन्न क्या किया जा सकता था? दीनदयाल शोध संस्थान ने अंकुर प्रतिष्ठान की अलग से गतिविधियां प्रारंभ होने तक कोई कदम नहीं उठाया। जब यह स्पष्ट हुआ कि आपने अलग से काम प्रारंभ कर दिया है तो दीनदयाल शोध संस्थान को अपनी भिन्न व्यवस्था करना अवश्यंभावी था। इस तथ्य को आप अपनी दृष्टि से ओझल न होने दें, तो आपके मन को कष्ट होने का कारण अपने आप मिट जाएगा।

64 श्री राजाभाऊ धाट को उनकी गलती का अनुभव करानेवाला पत्र।

65

27 मार्च, 2004

सप्रेम नमस्कार,

चि. प्रिय डॉ. गोपालराव एवं चि. सौ. प्रिय विभाताई ने मिलकर अपनी सुकन्या के विवाह के मंगल प्रसंग पर एक अभिनव प्रयास किया है।

परंपरा से चली आ रही दहेज प्रथा को उन्होंने केवल तिलांजलि ही नहीं दी, अपितु जो जन इस मंगल प्रसंग पर आशीर्वाद के रूप में अपनी शक्ति के अनुसार कुछ भेंट देने की परिपाटी का पालन करते थे, उसे भी वधू-वर के निजी उपयोग में न लाकर सामाजिक कार्य के लिए अर्पित करने का एक अनुकरणीय एवं सामाजिक विकास की दृष्टि से सराहनीय कदम बढ़ाया है।

उस कदम को सफल बनाने के लिए आपके द्वारा अर्पित धनराशि चित्रकूट प्रकल्प के लिए प्राप्त हुई है। उसके लिए मैं आपका बहुत-बहुत आभारी हूँ। यदि आप लोग प्रभु राम की वनवास के प्रारंभिक काल की तपोभूमि चित्रकूट आकर हो रहे कार्य का अवलोकन करने के लिए समय निकाल सकेंगे तो मुझे बहुत खुशी होगी।

66

07 मई, 2004

आदरणीय वैद्यराज,

गुणग्राहकता आपके स्वभाव की विशेषता है, यह ध्यान में आया। केवल अच्छी बातों पर ही दृष्टि केंद्रित करने की सनातन परंपरा के आप प्रतीक हैं।

आपने मेरे लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया है, वह आपकी महानता है। मेरी योग्यता नहीं। मैं तो अति सामान्य कार्यकर्ता हूँ। न मेरा गहन अध्ययन से कोई नाता-रिश्ता है, न मुझे किसी प्रकार की प्रतिभा का वरदान प्राप्त है। मेरी जन्मदात्री माँ के सेवाभाव का जो मुझ पर संस्कार है, उतनी भर पूंजी मेरे साथ है। उसके प्रति निष्ठावान रहना मेरी एकमेव अभिलाषा है।

67

30 सितंबर, 2004

प्रिय बहन स्नेहलताजी,

आपने जिस कार्य को करने का विचार किया है, वह प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है। दीनदयाल शोध संस्थान जो भी कार्य कर रहा है, वह स्थानीय निवासियों के आधार पर कर रहा है। इस

65 सामाजिक कुरीति से अलग चलने के प्रयास पर मनोबल बढ़ाता पत्र।

66 नानाजी का अलग दृष्टिकोण दिखाता भुसावल मध्य प्रदेश के वैद्य डा. श्रीकर द० जळूकर को पत्र।

विराट पुरुष

कारण दीनदयाल शोध संस्थान महिला या पुरुष कार्यकर्ता कहीं अन्यत्र कार्य करने के लिए उपलब्ध कराने में असमर्थ है। यदि आपके द्वारा कार्य करने के लिए तत्पर महिला-पुरुष हों तो उन्हें चित्रकूट में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था अवश्य की जा सकती है।

आप जिन कार्यों को करना चाह रही हैं, उनमें से अधिकांश कार्यों का प्रशिक्षण देने की चित्रकूट में व्यवस्था है। प्रशिक्षार्थी महिला-पुरुष कार्यकर्ताओं को अपने भोजन आदि की व्यवस्था के लिए शुल्क देना होगा तथा प्रशिक्षण के लिए भी आवश्यक शुल्क देना पड़ता है। कारण, देश के विभिन्न भागों से यहां प्रशिक्षार्थी आते हैं। उनके लिए खर्च करने की क्षमता दीनदयाल शोध संस्थान के पास नहीं है। कारण, यह स्थानीय लोगों के परिश्रम के आधार पर ही संपूर्ण कार्य किया जा रहा है।

मैं स्वयं भी अब नब्बे साल का हो रहा हूँ। इस कारण स्वयं अधिक कार्य करने की क्षमता खो चुका हूँ, किंतु सभी कार्य करनेवाले युवा दंपती हैं। वे स्वावलंबी अवश्य हैं, किंतु अन्यो के लिए खर्च करने की क्षमता नहीं रखते। वे अपने अनुभवों के कारण औरों को प्रशिक्षण देने का कार्य अवश्य कर सकते हैं तथा कर भी रहे हैं। आपको कार्य करने के लिए तीन सौ एकड़ भूमि उपलब्ध है यह उत्साहवर्धक बात है। शेष साधन खड़े करने के लिए आपके पास उत्साही सहयोगी भी हैं, अतः आपकी योजना अवश्य सफल हो सकती है।

68

14 अक्टूबर, 2004

चि. प्रिय बेटी सुहास,

तुम्हारा 11 अक्टूबर, 2004 का पत्र मिला। तुम्हारी एकनिष्ठ ध्येय साधना से मैं बहुत प्रसन्न एवं संतुष्ट हूँ। ध्येयवादी व्यक्ति को छोटी-बड़ी आपत्तियों की परवाह नहीं करनी चाहिए। वस्तुतः आपत्तियां अपनी ध्येयनिष्ठा को अधिक चमकाने का काम करती हैं, यदि हम प्रसन्नचित रहकर आपत्तिकाल में अपने मार्ग पर अडिग बने रहते हैं। यह मेरा अपना व्यक्तिगत अनुभव है।

प्रिय श्री दादा जोशी ने तुम्हारे विवाह की रचना की है। वे तुम्हें अपनी कन्या समझकर तुम्हारी चिंता करते रहते हैं, अतः उनकी शुभकामनाएं तुम्हें वैवाहिक जीवन में भी सुख-शांति प्रदान करेंगी एवं तुम्हारी सुनियोजित ध्येयनिष्ठा में सहायक बनेंगी।

जिस कन्या गुरुकुल का तुमने दायित्व ग्रहण किया है, उसमें थोड़ी भी कमी आए बिना तुम्हें एम.एस.डब्ल्यू. का द्वितीय वर्ष पूरा करने में कठिनाई नहीं आएगी।

67 सामाजिक कार्य की थोड़ी इच्छा भांपकर नानाजी ऐसा उत्साहवर्धन किया करते थे, जिससे वह हतोत्साहित होकर इससे विमुख न हो जाए। इंदौर की कार्यकर्ता स्नेहलता रानडे को लिखा पत्र।

68 सोलापुर (महाराष्ट्र) की समाज सेविका सुश्री सुहासिनी को शुभकामनाओं के साथ सामाजिक दायित्व का बोध कराता पत्र।

समाजशास्त्री

जितने दिन तुम्हें एम.एस.डब्ल्यू. के द्वितीय वर्ष में कॉलेज में उपस्थित रहना अनिवार्य है, उन दिनों में तुम किसी-न-किसी सुयोग्य सहेली को गुरुकुल में सदैव उपस्थित रहने के लिए तैयार करो। उसके लिए जो भी वेतन देना पड़ेगा, उसकी व्यवस्था करने में तुम्हें कठिनाई अनुभव होती हो तो मुझे सूचित करना। मैं उसकी व्यवस्था करूंगा।

जब तुमने एम.एस.डब्ल्यू. के शिक्षण को प्रारंभ किया है तो उसे पूर्ण करना उपयुक्त रहेगा। सोलापुर जैसे बड़े नगर में तुम्हारी अनुपस्थिति में गुरुकुल का कार्य योग्यता के साथ निभानेवाली स्नेहमय, योग्य सहेली अवश्य मिलेगी।

तुम्हारी गुरुकुल की कन्याओं की भेजी हुई शुभकामनाएं मिलीं। उन सबको मेरा स्नेहपूर्ण शुभाशीष सूचित करना तथा मेरी ओर से सबका मुंह मीठा करना।

69

01 दिसंबर, 2004

प्रिय श्री चंद्रकांत भाई,

आपका पत्र पाकर अनेक दिन बीत गए हैं। अब शरीर अधिक कार्य करना नहीं चाहता। इस कारण कार्यों में बहुत विलंब हो जाता है। यह ठीक नहीं है। यह समझते हुए भी इसमें आयु के कारण सुधार संभव अनुभव नहीं होता।

आपने किए जा रहे अनेक कार्यों का अपने पत्र में उल्लेख किया है। वे सभी काम अच्छे हैं और किए जाने चाहिए, किंतु अपने समाज में जो मूलभूत कमियां आ गई हैं, उनका उपाय न किया गया तो समाज की स्थिति सुधरने की संभावना दिखाई नहीं देती। समाज की आधारभूत इकाई परिवार है, किंतु क्या समाज का नेतृत्व करनेवाले बड़े-से-बड़े नेताओं को भी इस बात की अनुभूति है कि उनका अपना परिवार भी समाज की मूलभूत इकाई के रूप में काम नहीं करता?

हर परिवार में नई संतान जन्म लेती है और यह संतान समाज का घटक बनती है, किंतु परिवारों में जन्म पानेवाली संतान को इस बात की जानकारी देने की व्यवस्था परिवार में प्रचलित नहीं है। ऐसी स्थिति में समाज में सामाजिक जीवन कैसे संभव होगा?

देश की छोटी-बड़ी सभी आबादियों में अनेक परिवार रहते हैं, किंतु इन आबादियों में सामाजिक जीवन की अनुभूति नहीं होती। हर परिवार अपने ही परिवार की सुख-सुविधाओं की चिंता में लगा रहता है। हर परिवार की आकांक्षा रहती है कि अपनी ही संतान सुखी और संपन्न कैसे बने, इसी कार्य में परिवार की संपूर्ण शक्ति लग जाती है। जिस आबादी में परिवार रहता है, उस आबादी में रहनेवाले अन्य परिवारों तथा उन परिवारों में जन्म पानेवाली संतान के भविष्य की

69 अहमदाबाद प्रकल्प के सचिव। विवाह-कुटुंब-सामाजिक-परस्पर पूरकता पर नानाजी का चिंतन।

विराट पुरुष

चिंता करने की परिवार में भावना ही नहीं होती। इसी से स्पष्ट है कि समाज में सामाजिक जीवन का सर्वथा अभाव है। यही हालत संपूर्ण देश और समाज की है।

उपर्युक्त परिस्थिति का ही परिणाम है कि देश के नाते और देश की या प्रदेश की सरकारें चलानेवाले शासक व्यावहारिक धरातल पर अपनी पारिवारिक सुख-सुविधाओं को ही प्राथमिकता दे रहे हैं। यह व्यवहार समाज में सर्वव्यापी प्रचलित है। चाहे दुकानदार हो, उद्योगपति हो, अध्यापक हो, ठेकेदार हो या अन्य कोई भी हो, सबकी वृत्ति एक समान है। वे अपने परिवार से अधिक व्यापक जीवन-दृष्टि से वंचित हैं। सर्वव्यापी भ्रष्टाचार, अनाचार या व्यभिचार की जड़ में यही मूल कारण है।

दीनदयाल शोध संस्थान इसी मूलभूत दोष को दूर करने के लिए प्रयत्नशील है। इस दिशा में जो सार्थक काम है, उसे हमें सर्वाधिक महत्त्व देना चाहिए।

दीनदयाल शोध संस्थान परिवार को समाज की आधारभूत इकाई अनुभव करता है। परिवारों के बिना समाज का अस्तित्व संभव ही नहीं है। अपनी संस्कृति ने इसी आधार पर अपना विकास किया है। हमने कुटुंब की अवधारणा को मानवीयता के आधार पर मंडित किया था। व्यक्तिगत कुटुंब को विश्वव्यापी मानव मात्र के कुटुंब के साथ जोड़ा था, किंतु अब अपनी आबादी के अन्य कुटुंबों के साथ भी हमारी एकात्मता नहीं रही। यह वस्तुतः अपने समाज में आया हुआ दोष है। इस दोष को मिटाना समय की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता पूर्ति की दिशा में दीनदयाल शोध संस्थान अपने कार्यक्रमों की रचना करता है।

सामाजिक जीवन के शुभारंभ के प्रसंग पर ही आवश्यक सावधानी बरती गई तो यह दोष निर्माण ही नहीं होगा। सामाजिक जीवन का शुभारंभ होता है—वैवाहिक-विधि से। कारण, विवाह के बाद ही नूतन संतान का जन्म होता है और यह संतान ही समाज के गठन का कारण बनती है, अतः विवाहबद्ध होनेवाले युवक-युवतियों में यह भावना दृढ़मूल करने की आवश्यकता है कि उनका विवाह अपने समाज का सनातनत्व कायम रखने के लिए हो रहा है।

आप भलीभांति जानते हैं कि अपना समाज सनातन माना जाता है। सनातन का अर्थ है कि इसका शुभारंभ कब हुआ, इसका इतिहास को पता नहीं है और इसका अंत भी अज्ञात है अर्थात् अपना समाज चिरंतन है। समाज की इस चिरंतनता को बनाए रखने का दायित्व विवाहबद्ध होनेवाले युवक-युवतियों का है। कारण, समाज की निरंतरता नूतन संतान के द्वारा ही टिकी रहती है, अतः वैवाहिक जीवन में प्रवेश करनेवाले युवक-युवतियों को यह जानकारी रही तो उनके वैवाहिक जीवन में अपनी संतान को सामाजिक दायित्वबोध प्रदान करने की जिम्मेदारी ध्यान में आएगी। यह कार्य सदियों से बंद पड़ा है। अपने कर्मकांडियों ने इस मूलमंत्र को भुला दिया है। विवाह के मंत्रों में पति का पत्नी के प्रति और पत्नी का पति के प्रति क्या दायित्व है, इतना ही बताया जा रहा है। सामाजिक दायित्वबोध का उल्लेख तक नहीं होता, अतः हमें विवाह-योग्य युवक-युवतियों को इस दिशा में प्रेरित करने के कार्यक्रम कुशलता से आयोजित करने होंगे। शेष कुशल। सभी को सप्रेम नमस्कार सहित।

चि. प्रिय सुदाम,

तुमने अपने लिए नए दो काम पाने की इच्छा प्रकट की है। कार्य में सफलता एवं असफलता का विचार मेरी दृष्टि से अव्यावहारिक चिंतन है। मेरी प्रारंभिक काल से अवधारणा बनती गई है कि व्यक्ति की सामाजिक कार्य में सफलता अपने पर अर्थात् किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं करती। कारण, सामाजिक कार्य संपूर्ण समूह के द्वारा संपन्न होता है, किसी एक व्यक्ति के द्वारा नहीं होता, अतः जिन लोगों में हम सामाजिक कार्य करने का दायित्व स्वीकार करते हैं तो उस समय यह ध्यान में रखना आवश्यक होता है कि हमें इस कार्य की सफलता में सभी का योगदान प्राप्त करना है और सभी का योगदान तभी प्राप्त होता है, जब कार्य में सफलता का श्रेय सभी को मिल पाता है।

मैंने सन् 1950 में गोरखपुर में सरस्वती शिशु मंदिर प्रारंभ किया था। उनमें केवल अति गरीब लोगों के 17 बच्चे आने लगे थे। कारण, पढ़े-लिखे लोगों को इस शिशु मंदिर से कोई अपेक्षा नहीं थी। पढ़ानेवाला मैं अकेला ही था। उस समय मुझे अपने कार्य की सफलता में अपनी सफलता की अनुभूति न होकर बच्चों की सफलता एकमेव चाह थी। भगवान् की कृपा से मेरी इसी एकमेव भावना से कार्य को लोकप्रिय बनाना संभव हुआ था। मैं भी हर सफलता का श्रेय उन बच्चों को ही देता था। कारण उन्हीं की प्रगतिशील क्षमता के कारण शिशु मंदिर का प्रभाव बढ़ता गया। फलस्वरूप मैंने इस कार्य की सफलता का श्रेय अपना न मानकर बच्चों की ग्रहणशीलता को माना था। उसी को मैंने अपने कार्यों का आधार बनाया हुआ है। उसके सुपरिणाम अनुभव हो रहे हैं। कारण, यह वस्तुस्थिति है। जो कार्य हो रहे हैं, उसका श्रेय सबको है, मुझे ही नहीं है, अतः यह मेरी सफलता है, यह मानना सर्वथा गलत है। इसी भावना से सामाजिक कार्य करना आवश्यक होता है। जो व्यक्तिगत सफलता की आकांक्षा रखता है, उसे सामाजिक कार्य में सफलता पाना संभव नहीं होता अन्यथा मेरे जैसे एक साधारण देहाती व्यक्ति को सामाजिक कार्य खड़ा करना संभव ही नहीं होता, अतः तुम स्वयं जो भी कार्य करो तो इसी भावना से करो तो तुम्हें आसानी से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होगा।

प्रिय रामशंकरजी,

आपका पत्र मिला। सामाजिक कार्य में समर्पण की भावना के आधार पर काम करनेवालों को अनेक बार कई प्रकार की मानसिक यातनाएं सहनी पड़ती हैं। इसका मैं अपने लंबे जीवन में

70 व्यक्तिगत सफलता का आकांक्षी सामाजिक कार्य में सफल नहीं हो सकता। सफलता का श्रेय स्वयं लेना सबसे बड़ी बाधा। कार्यकर्ता श्री सुदाम भोंडवे के नाम पत्र।

71 गोंडा प्रकल्प के संचालक श्री रामशंकर द्विवेदी को सात्वनापूर्ण पत्र।

विराट पुरुष

अनुभव कर चुका हूं। इस प्रकार की यातनाएं सहते हुए भी अपने स्वीकृत मार्ग पर बने रहने से ही लक्ष्य-सिद्धि संभव होती है।

यदि मैं इस प्रकार के अनेक कटु प्रसंगों पर भी अपने मार्ग पर अविचल न रह पाता तो आज जिस स्थिति को प्राप्त कर पाया हूं, वह कदापि संभव नहीं होती।

ढाई दशकों से अधिक काल तक आपसे मेरा साथ बना हुआ है। इधर-उधर की बातों का मुझ पर असर होने की गुंजाइश हो ही नहीं सकती, अतः आपको अपने मार्ग पर अविचल बने रहना चाहिए। इससे अधिक लिखने की मैं आवश्यकता अनुभव नहीं करता।

72

18 नवंबर, 2005

प्रिय बहन मृदुलाजी,

‘वेबसाइट’ के लिए संदेश देना मेरे लिए कठिन कार्य है। देश स्वतंत्र होने के बाद प्रचार-प्रसार और प्रकाशन कार्य आदि तभी सार्थक सिद्ध होते हैं, जब व्यावहारिक धरातल पर रचनात्मक कार्यों का सृजन होता है।

जब देश स्वतंत्र नहीं था, तब इन वाद्यों का जनजागरण की दृष्टि से महत्त्व था, किंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद समाज में रचनात्मक कार्य खड़े किए बिना सभा, बैठकें, प्रस्ताव और प्रकाशन अपने बलबूते पर सामाजिक जीवन में विशेष परिवर्तन ला नहीं पाते।

आजादी के गत 58 साल में रचनात्मक कार्यों की उपेक्षा कर शेष सब काम किए जा रहे हैं। उनसे देश और समाज की दशा में कोई ठोस परिवर्तन होता हुआ दिखाई नहीं देता। इस कारण मैं इस दृष्टि से असमर्थ हूं। संभवतः इसी कारण अभी तक दीनदयाल शोध संस्थान की कोई वेबसाइट नहीं बनाई गई है।

73

13 अप्रैल, 2006

प्रिय कार्यकर्ता बंधुओ और बहनो,

मुझे ज्ञात हुआ कि बीड़ जिले में 20 से अधिक लोगों ने कर्ज और गरीबी से परेशान होकर आत्महत्याएं की हैं। जिन लोगों ने आत्महत्याएं कीं, वे तो संकट से मुक्ति पा गए, किंतु उनके कुटुंबों के लोगों का क्या हाल होगा, इसकी कल्पना कर मेरा मन सिहर उठा।

प्रिय अभयजी से सुबह चर्चा की और उनसे अनुरोध किया कि वे तुरंत बीड़ जाएं। बीड़ जिले

72 सामाजिक कार्यकर्ता, लेखिका एवं गोवा की वर्तमान राज्यपाल मृदुला सिन्हाजी को पत्र।

में दीनदयाल शोध संस्थान काम करता है। कृषि विज्ञान केंद्र और जनशिक्षण संस्थान का कार्य भी उसके पास है। हमारे ही जिले में यदि आत्महत्याएं होती हैं, तो हमें इस दिशा में सक्रिय होना चाहिए।

परम पूज्य डॉक्टरजी पूरे समाज को अपना परिवार मानते थे और हम बिलकुल नए क्षेत्र में जहां संघ का काम करते थे, जहां शाखा प्रारंभ नहीं हुई थी, वहां भी पीड़ित और उपेक्षित लोगों के परिवारों में सहायक बनते थे। मुझे उन दिनों की सहज में ही याद आई। इसी कारण अभयजी को तुरंत बीड़ भेज रहा हूं। इन अभागों परिवारों के सदस्यों को हम अपने पैरों पर खड़े होने में जो भी कार्य संभव होगा, वह हम करें—इसकी मैं आवश्यकता अनुभव करता हूं। मेरा विश्वास है दीनदयाल शोध संस्थान के कार्यकर्ता सहृदय होने के कारण इस कार्य को कुशलता एवं योग्यता से कर दिखाएंगे, इसकी आज अपने देश में नितांत आवश्यकता है।

74

04 अक्तूबर, 2006

प्रिय बेटी नंदिता,

आप लोग मिलकर ठीक दिशा में नए-नए कदम बढ़ा रहे हो, यह देखकर बहुत संतोष और खुशी होती है।

शक्ति की आराध्या देवी मां दुर्गा की मूर्ति-प्रतिष्ठा का कार्यक्रम एवं विशाल भंडारा एक स्तुत्य कार्यक्रम रहा है, जिसमें दीनदयाल शोध संस्थान के कार्यक्रम में जो जुड़े नहीं हैं, उन्हें भी अपने साथ जोड़ने का तथा उनका सहयोग लेने का यह एक उत्तम तरीका है।

उसी प्रकार प्रिय अशोक एवं सीमा के द्वारा देहाती बालकों और किशोरों का शिविर, उनके द्वारा सामूहिक सूर्योदय का दर्शन तथा 'डीप-ब्रीदिंग' कई दृष्टियों से लाभदायक सिद्ध होनेवाला, आप लोगों द्वारा स्वयं सोचा हुआ, अभिनव कार्यक्रम है। इसमें हर गांव के सभी बालकों को सुशिक्षा, सुस्वास्थ्य, सामूहिक जीवन एवं परिश्रमशीलता का हर गांव की नई पीढ़ी में हंसते-खेलते विकास संभव होगा। इस कार्यक्रम से केवल नई पीढ़ी ही नए समाज का निर्माण नहीं करेगी, अपितु पूरे गांव के माता-पिता खुशी-खुशी सत्कर्मों बन पाएंगे।

अपने कार्यक्रमों में आर्थिक लाभ का कार्यक्रम साधारणतः व्यक्ति को व्यक्तिनिष्ठ

73 संस्थान के कार्यकर्ताओं को एक संवेदनशील पत्र। पीड़ितों के प्रति संवेदना व कर्तव्यबोध नानाजी का अविस्मरणीय गुण था।

74 व्यक्तिगत लाभ का आकर्षण सभी को होता है। पर उसे समष्टिगत लाभ के संस्कार में परिवर्तित करना हमारा कर्तव्य है। डीआरआई के उद्यमिता प्रशिक्षण केन्द्र की निदेशिका डा. नंदिता पाठक को इस दृष्टि से कुछ सुझाव।

विराट पुरुष

बना सकता है। उसमें सामाजिकता का भाव तुमने 'उद्यमिता विद्यापीठ' में निर्माण करने का प्रयास अवश्य किया है, किंतु फिर भी व्यक्तिगत भावना किसके जीवन में कब जोर मारेगी, यह कहना कठिन है। यदि हम लोग विभिन्न कार्यक्रमों में संलग्न महिला-पुरुष कार्यकर्ता अधिक संख्या में नहीं, अपितु आठ-दस परिवार दो-ढाई महीने में एकाध बार सुबह आठ बजे से शाम को छह बजे तक एकत्रित रहकर सामूहिक रूप से भोजन आदि कार्यक्रम करें, जिनमें नन्हे से शिशु से लेकर वृद्ध व्यक्ति तक सम्मिलित हों तो लोगों में एक-दूसरे के प्रति आत्मीयता विकसित हो सकती है। परिणामस्वरूप केवल व्यक्तिगत धन का आकर्षण समूह को छोड़कर अलग होने में कुछ रोक लगा सकता है। इतना ही नहीं, लोगों में सामाजिक जीवन का अभ्यास पड़ सकता है। यह प्रयोग करके देखने लायक है। अपने समाज में सामाजिक जीवन की जो प्रेरणा विकसित होनी चाहिए, उसमें इस प्रकार के कार्यक्रम का योगदान हो सकता है।

मेरा स्वास्थ्य वृद्धावस्था के कारण हिलोरें लेता रहता है। उसमें चिंताजनक कुछ भी नहीं है।

75

चित्रकूट 17 दिसंबर, 2008

प्रिय बंधुओ, स्नेहमयी बहनो तथा प्यारे होनहार बच्चो,

प्रभु श्री कामतानाथजी के आशीर्वाद से स्वावलंबन पदयात्रा के माध्यम से 69 स्वावलंबन केंद्रों, 94 ग्रामसभाओं तथा 296 ग्रामों के निवासियों ने परस्पर मिलन का अनोखा आनंद अनुभव किया।

ग्रामवासियों ने अपने-अपने घरों को साफ-सुथरा बनाकर रंगोलियों से सजाया था। भजन मंडलियों के द्वारा 'रघुपति राघव राजाराम' का गगन-भेदी स्वर में प्रभु राम के जीवन का साक्षात्कार किया था।

सभी ग्रामवासियों ने आपसी स्नेह के साथ परस्पर सह-जीवन बिताने का निश्चय किया। अब आपसी झगड़े अपने-अपने गांव में ही निपटाकर कचहरियों से मुक्त जीवन बिताने का संकल्प किया। एक-दूसरे की सहायता से सभी का जीवन खुशहाल बनाने का निश्चय किया।

महात्मा गांधी तथा अंबेडकर का सपना साकार करने में सब लोग जुट गए। अपने-अपने गांवों के सभी निवासियों को खुशहाल बनाकर अन्नपूर्णा के रूप में साकार बनाने का निर्णय किया। इस यात्रा के समारोह के रूप में चित्रकूट के सभी नागरिकों तथा साधु-संतों ने अभूतपूर्व शोभा यात्रा निकालकर मां कनकेश्वरी देवी का आशीर्वाद प्राप्त किया। आपकी इस अभिनव स्वावलंबन पदयात्रा से मुझे बहुत खुशी हो रही है।

75 चित्रकूट के स्वावलंबन पदयात्रा में साझीदार यात्रियों का अभिनंदन।

प्रिय श्री हरीशजी,

अंग्रेजों ने अपने सुदीर्घ शासनकाल में भारतीय समाज की स्वावलंबन की भावना जान-बूझकर नष्ट की थी। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद गांधी जी ने स्वावलंबन की स्थापना पुनर्जाग्रत करने का आग्रह किया, किंतु देश के राजनेताओं ने उनके आग्रह की अवमानना की। यह धारणा लोगों के मन में भी बैठ गई कि देश के विकास का दायित्व मात्र सरकार का है। देश के जनमानस में देश के विकास में सहभागी होने का विचार ही नहीं रहा। पंचवर्षीय योजनाएं बनाकर देश के विकास की जिम्मेदारी सरकार ने ले ली, फलस्वरूप समाज में बची-खुची स्वावलंबन की भावना भी समाप्त हो गई। इस प्रकार जनता सरकार के भरोसे दिन काट रही है। राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना जैसी गरीबी उन्मूलन की योजनाएं देशवासियों को स्वावलंबी बनाने की बजाय उन्हें सरकार पर अधिकाधिक निर्भर बना रही हैं। ऐसी योजनाएं वोट तो दिला सकती हैं, किंतु समाज में स्वावलंबन की भावना को समूल नष्ट कर देती हैं।

वोट की राजनीति के कारण पार्टियां विभिन्न वर्गों व जातियों को आपस में लड़ा रही हैं और नेतागण महत्त्व के पदों के लिए आपस में लड़ रहे हैं। देश के विकास, उसकी एकता एवं अखंडता की किसी को तनिक भी परवाह नहीं है।

प्रारंभ से ही सभी सरकारें देश की गरीबी हटाने का वादा करती रही हैं। लाल बहादुर शास्त्री के निधन के बाद श्रीमती इंदिरा गांधी ने तो देश की बागडोर संभालते ही बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर 'गरीबी हटाओ' का नारा लगाया। इन सबके बावजूद आज 63 साल के उपरांत भी गरीबी अधिकाधिक विकराल रूप धारण कर रही है। केवल शासन के द्वारा देश की उन्नति नहीं हो सकती, यह अपने आपमें सिद्ध हुआ है। देश की उन्नति तथा विकास तभी संभव है, जब नागरिकों में स्वावलंबन एवं परस्पर पूरकता की भावना प्रचलित हो।

दीनदयाल शोध संस्थान ने चित्रकूट के पास-पड़ोस के 500 गांवों में ग्रामविकास का काम शुरू किया। अल्पकाल में ही 500 गांवों का जीवन बदल रहा है। ये लोग स्वावलंबन एवं परस्पर पूरकता की भावना से काम कर रहे हैं। वर्षों से लंबित पड़े मुकदमे भी समाप्त हो रहे हैं। सभी लोग खुशहाली का जीवन अनुभव कर रहे हैं।

यह आमूल-चूल परिवर्तन गांववासियों की स्वयं की स्फूर्ति के बूते ही संभव हो पाया है। इस परिवर्तन ने दिखाया है कि भारतीय समाज बड़ा भावुक और संवेदनशील है। महात्मा गांधी,

76 बनारस के श्री हरीश चन्द्र श्रीवास्तव नानाजी की प्रेरणा से ही संघ प्रचारक बने। बाद में राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश किया। उनके लिए एक विचारोत्तेजक पत्र।



विराट् पुरुष

पं. दीनदयाल उपाध्याय और लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने जैसे भारत का सपना देखा था, वैसे ही नवभारत के निर्माण का कार्य प्रारंभ हुआ है। देश के छह लाख गांवों में इस कार्य को फैलाना है। प्रत्येक नागरिक अपने-अपने क्षेत्र में अपने-अपने ढंग से इस पुनीत दायित्व को निभाए, तभी वास्तविक रूप में भारत स्वतंत्र और महान् बनेगा।

□□□